साँझ-सकारे

भारतीय पारिवारिक जीवन का सांस्कृतिक
उपन्यास

साँझ-सकारे

सुधाकर पाण्डेय

"रथ का सारथी स्वयं बन बैठा
पढ़ता हूँ, गति—गीता,
जब तक अन्त न हो जीवन का
कहे कौन ? "किसने जीता"।

× × ×

"जीता कौन, हार है किसकी
कैसे कहूँ ? समर बाकी है।
अभी चला बस एक दृश्य ही
शेष अभी अनगिन झाँकी है।"

विगत दस बारह वर्षों से ६४।४४, गोलादीनानाथ, बनारस में एक महिला रहती हैं, जिनका नियमित दर्शन काशी रहने पर रात में हो जाता है, और उनसे कुछ बातें भी हो जाती हैं।

यदि उन बातों को रेकर्ड कर लिया जाय तो सुन कर लोगों को कहना पड़ेगा 'सब उपमा कवि रहहिं जुठारी'। लेकिन प्रसन्नता और विषाद दोनों की बात यह है कि उन्होंने अपना सब कुछ मुझे कब का अर्पित कर दिया, पर मैं ऐसा कि उनका नाम भी विधानत: नहीं ले सकता।

फिर उन्हें दूँगा क्या? और आज तक उन्होंने कुछ माँगा भी तो नहीं, केवल दिया है।

पसंद आये या न आये संसार की उसी सर्वोत्तम महिला को मनसा-वाचा-कर्मणा अपनी मर्जी से सप्रेम, जिसे कोई बाहरी आदमी न तो देख सकता है, और न जिसकी आवाज ही सुन सकता है।

पढ़ने के लिए........

काशी पत्रकार संघ की ओर से गंगा घाट सुधार-समिति के कार्यालय में, गत दिसम्बर मास, श्री मोहनलाल भट्ट, मंत्री राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा तथा श्री जेठालाल जोशी, मंत्री, गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद का स्वागत किया गया था। उपस्थित व्यक्तियों में मैं भी था। उन्होंने 'सम्मेलन' के सम्बन्ध में अनेक बातें कीं। साथ ही इस आशय की बात भी परस्पर चली कि यदि कोई यह पूछ देता है कि हिन्दी में प्रेमचन्दजी के अतिरिक्त और कौन से उपन्यास ऐसे हैं, जिनकी मर्यादा अत्यधिक उच्चस्तर की है, तो हमें अहिंदी भाषियों के सम्मुख सर नीचा कर लेना पड़ता है।

ऐसी बातें अनेक जाने-माने लोगों के श्री मुख से भी अनेक बार सुनने का दुर्भाग्य या सौभाग्य मुझे प्राप्त हो चुका है। दुःख के प्रति व्यक्त स्वानुभूत शोक यदि सुख के उपादान प्रस्तुत नहीं कर सकता तो वह भी घृणा की छाया ही है। इस बात के लिए तभी से मैं प्रयत्नशील था कि ऐसे लोगों के संतोष की व्यवस्था की जाय। यह कार्य मेरे सिर-दर्द का कारण बना।

प्रेमचन्द जी की ही नहीं शरत्चन्द जी की भी सभी कृतियाँ पुनः पढ़ गया और रमणलाल बसन्तलाल देसाई तथा कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी की कृतियों का भी परायण करना न भूला। मुल्कराज आनन्द की कृतियों को भी फिर से उलट डाला। मुझे कुछ ऐसा लगा कि ऐसी बातें करने वालों के मस्तिष्क में कोई ग्रन्थि है। जहाँ तक मैं समझ पाया, नई पीढ़ी के साहित्यकारों की रचनाएँ पढ़कर ऐसी बातें नहीं कही

जातीं। कुछ जाने-माने लोग कहते हैं, इसलिए वे बातें दुहरा दी जाती हैं। जो कुछ भी हो मेरा कार्य अत्यधिक सरल हो गया। इसका कारण पूर्वअर्जित एक अज्ञात व्यक्ति की थाती थी।

जब मैं इंटर की कक्षा में पढ़ता था, उसी समय मेरे यहाँ किरायेदार के रूप में एकाकी एक व्यक्ति आया और वह मेरे बी० ए० पास होते-होते घर का प्राणी बन गया। उसका नाम तो मालूम था, असली ठौर-ठिकाना कोई भी न जान पाया। उसी बीच मैं बीमार पड़ा और डाक्टरों की सलाह से स्वास्थ्यलाभ के निमित्त चार महीने के लिए बाहर चला गया। वहाँ से लौटने पर ज्ञात हुआ कि घर का वह आत्मीय अतिथि बिना कुछ कहे-सुने, बेगानों की तरह प्रस्थान कर गया। घर के लोगों ने यह सोचा और समझा कि सम्भवतः वह अपना कोई आवश्यक कार्य पूरा कर कभी न कभी लौटेगा, पर उसे गये कई वर्ष हो रहे हैं, वह वापस नहीं आया। उसका एक बक्स मेरे घर पर छूट गया था। यद्यपि घरवाले उस बक्स को सुरक्षित रख उसके आने की चिरंतन प्रतीक्षा में थे, तो भी मुझसे न रहा गया और एक दिन उस बक्स का ताला तोड़ डाला। उस बक्स से मुझे कुछ अमूल्य चीजें प्राप्त हुई हैं।

उन अमूल्य वस्तुओं को क्रम से लगाने पर मुझे कविवर अलोपी के १६ ग्रन्थों की पांडुलिपि मिली, जिनमें तेरह तो पूर्ण हैं और छः अधूरे। उनका प्रकाशन सांस्कृतिक-संसद कर रही है। दूसरा ग्रन्थ उस अतिथि द्वारा रचित अधूरा प्रबन्ध-काव्य है, जिसका नामकरण उसने नहीं किया है।

तीसरी पुस्तक आपके सम्मुख प्रस्तुत है। चाहता तो था कि इस उपन्यास की विस्तृत भूमिका लिखूँ किन्तु मन ने ऐसा करने से रोक दिया, संभवतः इसलिए कि इसका लेखक इसे प्रकाशित देख मुझ से सम्पर्क स्थापित करे और स्वयं भूमिका लिखे।

अपनी ओर से मैंने केवल अध्यायों के शीर्षक लगाये हैं तथा उपन्यास का नामकरण मात्र किया है। इतना कह देना बुरा न होगा कि

कर्ता ने साहित्य के राजपथ पर लकीरें नहीं पीटी हैं, अपितु शायर, सिंह और सपूत की भांति पथ पर चला है।

मुझे बड़ा संतोष है कि इस पुस्तक का प्रकाशन इतने अल्प समय में संभव हो सका। साथ ही यदि प्रेमचन्दजी के उपन्यासों के अतिरिक्त अन्य किसी उपन्यास के नाम लेने की नौबत आयेगी तो लोग अब संकोच का अनुभव न करेंगे और इस उपन्यास का नाम बताकर मेरा, अपना तथा हिन्दी-पाठकों का भला करेंगे।

भोलादीनानाथ, बनारस।
बसंतपंचमी, २०१२ वि०

—सुधाकर पाण्डेय

द्वितीय संस्करण के संबंध में

इस उपन्यास ने जनप्रियता की दृष्टि से अपना अप्रतिम स्थान बनाया है। दो महीने में ही इसका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया। इसका संस्कारित, परिवर्द्धित संस्करण आप के सम्मुख है। यद्यपि पहले संस्करण में इस पुस्तक की 'राशनिंग' करनी पड़ी तो भी ऐसा आश्वासन अब दे सकने की स्थिति में हूँ कि भविष्य में प्रेमी-पाठक मेरी सेवा से वंचित न रहेंगे।

इस संस्करण के संबंध में कुछ निवेदन इसलिए करना चाहता हूँ कि अनेक शुभेच्छु विद्वानों एवं मित्रों का आग्रह है।

साहित्य के सभी अंगों में उपन्यास की संस्थिति अपने स्थान पर अनुपम है। सामान्यतः गंभीर विद्वान से लेकर अर्द्धशिक्षित तक में उसका मान-सम्मान है किन्तु महत्वपूर्ण उपन्यास मेरी दृष्टि में वह है जो दोनों के लिए समान महत्व का हो।

जहाँ तक जन-सामान्य का प्रश्न है, वह उपन्यास सर दर्द बढ़ाने के लिए नहीं, अपितु आत्म-तोष के लिए पढ़ता है। वहाँ आत्मीयता के पथ पर तुष्टि की सवारी ममता की मूर्ति के रूप में प्रकट होती है। इस ममता के मूल में नैसर्गिक विश्वास प्राप्ति लेखक की साधनामयी सिद्धि है। इस क्षेत्र में जो जितना ही अधिक विश्वास प्राप्त कर सकता है, उसे उतनी ही अधिक सिद्धि प्राप्त होती है। आत्मीयता और ममता के साथ स्वार्थ-सिद्धि की गंगामुखी जितनी अधिक विस्तृत भूमि को रसवन्ती कर सकेंगी, उतनी ही अधिक सहृदयता प्रतिदान में कृति को मिलेगी। विस्तृत भाव-भूमि की ममतामयी आत्मीय

आभिसिंचना के साथ ही भविष्य के लिए ज्योति-समारोह का जितना विस्तृत मंगल-मेला उपन्यासकार लगा सकेगा उतने ही विस्तार के साथ कृति-संगम पर स्नेह का पर्व भी सफल होगा। जन-सामान्य की इन कसौटियों पर यह उपन्यास निःसंकोच कसा जा सकता है। विश्वास है, खरा उतरेगा।

समीक्षकों की बात भी कुछ कह दी जाय। काल की कसौटी पर जो किसी कृति को परखना चाहते हैं, उनके लिए समय की प्रतीक्षा अनिवार्य है। पर साहित्य के अन्य मानदण्ड वाले व्यक्तियों से कुछ कहना है।

जीवन में 'जय' का आराधक हूँ, मृत्यु का पूजक नहीं, अतः जीवन की जय बोलता हूँ। संन्यासी नहीं, गृहस्थ हूँ। इसलिए पुरुष की क्षमता के साथ नारी की शक्ति-पूजा का उपासक हूँ। अतीत की समृद्धि से संतोष नहीं, इसलिए नवीन उपलब्धियों के लिए प्रयोग भी करता हूँ, अतीत की संपत्ति को स्वाहा कर नहीं, श्रेयुक्त कर। प्रकृति का पूजक हूँ, अन्धभक्त नहीं, इसलिए उसकी आँखों देखी गरिमा तक ही गौरव के गीत गाता हूँ। प्रेमसृष्टि की मूल-चेतना ही प्रगति का प्राण है, प्रयोग की मेधा है किन्तु वह सुफल होनी चाहिए। समाज गति देता है उसकी विभूति मुझे प्रिय है।

आशा नहीं विश्वास है कि स्वभाव सिद्ध इन तथ्यों का एकान्वय साँझ-सकारे में विद्वानों को सुसंस्कृत सुदृढ़ हिन्दू गठित परिवार की भाँति मिलेगा।

काशी, ३१ दिसम्बर, ५६

— सुधाकर पाण्डेय

* * *

सावन-भादों मोरे दो नयना
बरसें साँझ सकारे

सिनेमा हाल में रजत पट पर 'सहगल' का यह करुणार्द्र स्वर 'सावन-भादों, मोरे दो नयना, बरसें सांझ सकारें' जिस समय पहली बार मुझे सुन पड़ा, उस समय मैं इतना अधिक मर्माहत हुआ कि यह भी न पता चला कि फ़िल्म में आगे क्या हुआ ? यहाँ तक कि सिनेमा समाप्त हो गया और गेटकीपर को आकर मुझसे पूछना पड़ा—'क्या दूसरे शो का टिकट आपके पास है ?'

तब कहीं जाकर मैं संज्ञाधारी बना। सिनेमा-हाल में मैं बेकार नहीं बैठा था, एक नाटक ही देख रहा था। वह नाटक एक बार नहीं, अनेक बार देख चुका हूँ, और एकांत में बराबर देखा करता हूँ। करुण स्वर की झंकार मेरे मानस से प्रायः परदा उठा देती है और तत्काल वही मार्मिक नाटक आरम्भ हो जाता है। यद्यपि इसके पात्र, उनकी वेशभूषा, उनकी अभिनय कला, नाटक का विषय वस्तु सर्वथा वही और चिरपरिचित है तो भी वह मुझे इतना अधिक प्रिय है कि बार-बार उसे और अधिक लगन से देखता जाता हूँ। जब कोई स्वर पुनः मानस से टकरा कर दृश्य पर परदा डाल देता है, तो लाचार हो इस धरती का प्राणी बन जाता हूँ। यह नाटक किसी क्रम से आरंभ नहीं होता अपितु विशृङ्खल होने पर भी अपना नया क्रम स्वयं हर बार बना लेता है।

× × ×

"सुनती हो चंदर फर्स्ट पास हुआ है। देखो अखबार लाया हूँ। उसमें उसका नाम सबसे ऊपर छपा है। मैं कहता था न......"

साँझ सकारे

एक दो मंजिले मकान की छत पर एक छोटा-सा कमरा, जिसके दरवाजे टिन के हैं, कमरे में चटाई बिछी है, एक दो पुराने बक्स भी पड़े हैं। उन्हीं बक्सों में से एक पर बैठते हुए एक पचपन वर्ष का बूढ़ा जिसकी कमर झुक गयी है, पर जिसके चेहरे पर आज वसन्त की बहार है; एक पचास वर्ष की बुढ़िया से गद्‌गद कंठ कह रहा है।

"......चंदर घर का नाम रोशन करेगा। वह कुल का दीपक है। कहता न था; मंगल उसके दसवें स्थान पर है।"

"बाबा विश्वनाथ कऽ कृपा बनल रहे; हम कहत रहली न, भगवान भगतन कऽ सब अरमान पूरा करैलन।"

बुढ़िया के बदन पर उस समय उल्लास की ऐसी आभा फिसल रही थी जैसी आभा विगत बीस वर्षों से कभी उसके जीवन में बसंत ने भी नहीं देखी थी।

वह अपनी धुन में कहती जा रही है—"मनऊती मनले हइ। बाबा विश्वनाथ के सवा मन दूध चढ़ावे कऽ; अउर सतनरायन भगवान कऽ कथा सुनै कऽ। बाम्हँन भी खिआइब। काऽ बताई, भगवान से बिनती कईलै रहली कि चन्दर के फस्ट पास भइले पर तब तक अन्न कऽ दाना मुँह में न डालब जब तक पास-पड़ोस में, महल्ला-टोला में भगवान विश्वनाथ कऽ चरनामृत और सतनरायन प्रभु का प्रसाद न बाँट लेब। भगवान कितना कृपाल हऊन। भक्तन क सब बात सुनै लँन।"

बुड्ढे के चेहरे की हरियाली पर बुढ़िया के स्वर पाला बन कर पड़े, पर वह अपनी ओर से यही प्रयत्न करता रहा कि किसी प्रकार की शिकन उसके चेहरे पर आकर मर्म का उद्‌घाटन न कर पाये। और उधर बुढ़िया कहती ही जा रही है 'भगवान जइसै हमार अरमान पूरा कइलन ऽ वइसै सात पुस्त बैरी कऽ भी करै।"

"मनौती मानी, यह तो अच्छा किया, लेकिन मनौती पूरी किये बिना अन्न न खाने का व्रत लेना कहां की बुद्धिमानी थी?"

"भगवान के साचे दरबार में आपन बुद्धी लगावै कऽ का जरूरत हौ। ऊ सब कुछ जानैलन। ऊ हमार इज्जत सदा रखले हौउन आगे भी रखिहैं।"

बुड्ढा एक क्षण मौन रहा, फिर जबान दबाकर उसने कहा, "जो कुछ तुमने किया, वह अच्छा ही किया। लेकिन अब उसका प्रबन्ध भी तो करना चाहिए।"

"ई हमके मालूम हौ कि आपके पास आजकल पैसा नाहीं हवऽ, लेकिन भगवान भी त ई बात जानै लन। कौनों विधि पूरा करबै करिहैं।"

"यह तो तुम ठीक कहती हो। लेकिन तुम्हें मालूम है कि मेरे पास कुल नौ रुपये साढ़े सात आने वेतन में से बचे हैं और अभी सात दिन के बाद वेतन मिलेगी।"

"ई हमें मालूम हव। हम सोचले रहली, कि हर महीने दस-बारह रुपया आपसे मांग लेब। एतरे इकट्ठा कर मनौती पूरा कर लेब।"

बुड्ढे ने सोच की मुद्रा में कहा—'तो माँग क्यों नहीं लिया?'

"मांगित कैसे? हर महीने त यही देखीला कि महीना पूरा होत होत आपके पास दाढ़ी बनवावे तक कऽ पइसा नाहीं रह जात।"

"तो अब पैसे कैसे आ जायेंगे?"

"आप त झूठै नाराज होत हईं। जवने बकसा पर आप बइठल हईं वही में मिट्टी कऽ एक गोलक हव। ओमन आप देखातऽ साइद, काम चल जाई।"

बुड्ढा उठा, बक्स से गोलक निकाला। गोलक निकालते समय उसके चेहरे पर संतोष की स्वाँस थी और वह तब तक बनी रही जब कि उसने गोलक पटक नहीं दिया। मिट्टी का गोलक बिखर गया, पैसे झनझना उठे। बुड्ढा जमीन पर ही बैठ गया और उसके पास सट कर बुढ़िया।

बुढ़िया केवल सोलह तक गिनना जानती थी। सोलह-सोलह पैसों की गड्डी लगा कर चार-चार एक तरफ करने लगी और बुड्ढा पैसों से रुपयों की गड्डी बना कर जमीन पर लगाने लगा। बुढ़िया गिनती ही रही,

बुड्ढे ने अपना काम कर लिया। वह गड्डियों को गिनने लगा, तब तक बुढ़िया भी पैसों को गिन चुकी और बुड्ढे के हिसाब से सब सत्रह रुपया सात आने हुए। इस प्रकार उनके पास लगभग सत्ताईस रुपये की पूँजी हुई। बुढ़िया ने यह सोच रखा था कि उसके गोलक में बहुत बड़ी रकम है। वह दो साल से पैसे जुरवार कर जमा जो कर रही थी, वक्त-जरूरत पर काम के लिए। बुढ़िया ने मुस्कराते हुए कहा, "अब तऽ काम पूरा हो जाई न।"

बुड्ढे ने लम्बी सांस खींचते हुए कहा—"हाँ दूध तो भगवान पर चढ़ जायेगा किन्तु सत्यनारायण की कथा और ब्राह्मण भोजन शेष रह जायगा। उसकी व्यवस्था भी तो करनी है ?"

"अरे इतना पैसा हौव फिर भी कम पड़ जाई !'

बुड्ढे ने कहा—"पगली कहीं की।"

एकाएक नीचे से आवाज आयी—'पंडित जी, पंडित जी।' बुड्ढा बाहर आया। छत से गली की ओर देखकर बोला—'सोनपुर के पंडित जी आये हैं। बहुत दिनों पर आये। नीचे जा रहा हूँ।'

बुढ़िया फिर से पैसे गिनने लगी और सोलह-सोलह पैसों का दुबारा थाक जमाने लगी। नीचे बैठक का दरवाजा खुला। सोनपुर के पंडितजी के साथ कमरे में तीन व्यक्ति प्रविष्ट हुए।

बुड्ढे ने पूछा—"बहुत दिन के बाद आगमन हुआ, रुष्ट हैं क्या ?"

"नहीं, पंडित जी, इधर आने का मौका ही नहीं मिला। उनतीस जून को लड़की की शादी है, सामान खरीदने सबेरे वाली गाड़ी से चला आया और सीधे बाजार चला गया। शादी में आपको आना है।"

सोनपुर के पंडित जी ने यह कहते हुए बुड्ढे को हाथ में निमन्त्रण-पत्र अर्पित कर दिया और फिर कहने लगे—"यही एक लड़की बाकी बची है। अब विवाह-शादी का सब झंझट साफ हो जायेगा। हम अपने पहरे भर जागे, अब बाद वालों की देखी जायेगी। आज के जमाने में किसी तरह इज्जत बच जाय, इतना काफी है।"

बुड्ढे ने कहा—"आपने बड़ा अच्छा किया। आपके सिर का बोझ उतरा, भगवान करे आपका यज्ञ मंगलमय हो। कहाँ शादी ठीक की है आपने?"

"रामपुर के रामन्योछावर द्विवेदी को आप जानते ही होंगे। उन्हीं का सबसे छोटा लड़का है। यहीं एफ. ए. में पढ़ता है, खानदानी आदमी हैं, लड़का होनहार है। ऐसे तो लोग उन्हें दस हजार दे रहे थे किन्तु पुराना संबंध होने के कारण पाँच हजार में ही मेरी इज्जत उन्होंने रख ली।"

"बड़ा अच्छा किया आपने। द्विवेदी जी का घर-बार जाना पहचाना और परिचित था। आप तो आसानी से उबर गये। मेरे ऊपर भी दो बोझ हैं। आपको एक खुश खबरी सुनाऊँ, चंदर फर्स्ट पास हुआ है। लोग रोज उसकी शादी करने आते हैं। लेकिन अभी उसकी शादी नहीं करनी है। लड़की का बोझ है न, पहले उसे निपटाना है।"

"सब भगवान निपटायेगा और आपका क्या पूछना? आप अट्ठाइस को ही आ जाइएगा ताकि जो त्रुटि हो उसे देख-सम्हाल लें अब मैं तुरंत चला जाऊँगा, क्योंकि गाड़ी में टाइम आध घंटा ही रह गया है।"

"लेकिन बिना पानी पिये आप जा कैसे सकते हैं? सवेरे के आये हैं, अभी भोजन भी तो नहीं किया होगा।"

"भोजन-पानी सब बाजार में ही कर लिया गया है। सड़क पर रिक्शा खड़ा है। दो आदमी रिक्शे पर हैं और हम लोग आपका दर्शन करने चले आये। एक बात है, कुछ रुपये कम पड़ गये हैं, टिकट में। अगर आप दे सकें तो उन्हें शादी में लौटा दूँगा।"

"हाँ, हाँ, कितने रुपये चाहिए"—बुड्ढे ने कहा।

"अगर पन्द्रह रुपये मिल जायँ, तो काम चल जायगा।"

"अभी लाता हूँ"—कह कर बुड्ढा ऊपर गया। बुढ़िया पैसे गिन रही थी। बुड्ढे ने भरे हुए स्वर में कहा—'अब क्या करूँ। इन्हें भी पन्द्रह रुपया चाहिए। लोग समझते हैं मेरे पास कारू का खजाना गड़ा है और चले आते हैं?"

बुढ़िया ने ढाढ़स के स्वर में कहा–"अतिथि भगवान होलन। आपके अइसन न कहे के चाही। आप ई रुपया उन्हें दे आवऽ आउर दूसरी मंजिल में बहू जलपान कऽ सारा प्रबंध कइले हइन। उन्हें जलपान कराके तब आये दऽ। हम लोटा आउर गिलास कऽ पानी नीचे आङ तक पहुँचा देत हई। आप चारो तश्तरी नीचे लेत चलऽ।"

वैसा ही हुआ। जलपान अतिथियों के सम्मुख रख दिया गया।

सोनपुर के पंडित जी ने कहा—"आपसे अतिथि सत्कार लोगों को सीखना होगा। आप शहर में चले आये लेकिन भाव वही। यहाँ लोग ऊपर से कहला देते हैं कि नहीं हैं। लेकिन आपके यहां रोज ही दस-पाँच आदमी देहात से आते हैं और सब आपकी जय-जयकार मनाते जाते हैं।"

बुड्ढे ने मुस्कराते हुए कहा—"पंडित जी यह आप लोगों का आशीर्वाद है।"

इसी बीच सिकड़ी खटकने की आवाज हुई। पंडित जी भीतर गये। पन्द्रह रुपयें के पैसे कुरुई में लेकर चले आये।

वे बोले,—"मेरे पास सौ का नोट है, बाकी ये फुटकर पैसे थे, कोई दिक्कत तो न होगी।"

एक ने कहा—'नोट रहता तो अच्छा होता।'

दूसरे साथी ने कहा—"लेकर चलिए नहीं तो नोट भुनाने में गाड़ी छूट जाएगी।

बुड्ढे ने टेंट की ओर हाथ बढ़ा, नोट सामने रखते हुए बोला–"नव रुपये के नोट भी मेरे पास हैं। टिकट देने में बाबू झमेला करेगा। बाकी पैसे गिन लीजिए।"

एक आदमी ने गिन लिया। लोग जाने लगे।

सोनपुर के पंडित जी कहने लगे—"उनतीस जून को है आज से ठीक छः दिन बाद। अट्ठाईस को ही आ जाइएगा। स्टेशन पर घोड़ी भिजवा दूँगा।"

नमस्कार और दंडवत हुआ। बुड्ढे ने दरवाजा बन्द किया। कमरे में अँधेरा छा गया तो भी बुड्ढे के चेहरे पर पड़ी विषाद की रेखायें स्पष्ट झलक रहीं थीं। कुरुई उठा वह श्लथ मन बीच की मंजिल पर आया।

बहू ने कहा—"अम्मा जी ऊपर हैं, बाबूजी। नीचे अगर कोई न हो तो तश्तरियां उठा लाऊँ। मजदूरनी आती होगी।"

"हाँ बेटी देख लेना बैठक की सिकड़ी बन्द है कि नहीं।"—कहते हुए बुड्ढा ऊपर चला गया।

× × ×

एकाएक एक बच्चे की चीख सुन पड़ी। बहू घर में चली गयी। पलने पर उसका बच्चा रो रहा था। उसे उसने उठा लिया और गुनगुनाने लगी, "तारों के पलना पर सोया मेरा ललना ······।"

वह इस लोरी को गत सवा वर्षों से प्रायः नित्य बार-बार गुनगुनाती है। वह इतना अभ्यस्त हो गयी है कि इस लोरी को गुनगुनाते-गुनगुनाते सहज ही दूसरा कार्य भी करती रहती। वैसी ही बात आज भी हुई। बच्चे को गोद में ले वह गुनगुनाती हुई पैर हिलाने लगी और उसके सामने 'न्यूज-रील' की भांति चिर परिचित प्रिय चित्र घूमने लगे।

लगभग दो वर्ष पहले—एक छरहरा, गोल मुँहवाला युवक एकाएक अनुराधा के सम्मुख आकर खड़ा होता है। यद्यपि वह उसे विगत छः वर्षों से रोज बराबर देख रही थी, तो भी उस दिन उसकी आँखों में करुणा की बरसाती वरुणा छलक आयीं थीं। बार-बार उस चित्र को वह देखती पर आज उससे न जाने क्यों नहीं रहा गया? यद्यपि वह आज कुछ बोल न पायी तो भी कुछ, इसी तरह की बात मन ही मन उसने नियति के प्रहार से की:

न खलु न खलु बाणः सान्निपात्योऽयमस्मिन।
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः॥
क्व ब्रत हरिणकानां जीवितञ्चातिलोलं।
क्व च निशित निपाता वज्रसाराः शरास्ते॥

[कालीदास कृत अभिज्ञान शांकुतल से]

अनुराधा के जीवन पर विष-बाण चलानेवाला पुरुष पहली बार विदा की उस बेला में औरतों की तरह धीरे-धीरे भरे कण्ठ से बोल रहा था—'जा रहा हूँ, शायद सोई किस्मत जग जाय। आऊँगा, दो वर्ष मेरे लिए और कष्ट सहो।······तुम पत्र भेजती रहना, यदि मुझे कुछ लिखना ही होगा तो चन्दर के नाम लिख दिया करूँगा। लाचारी······तुम्हारे नाम पत्र भी न भेज सकूँगा। घर का वातावरण ही ऐसा है, क्षमा करना पता नहीं लोग क्या-क्या अर्थ लगाने लगेंगे। ऐसा अवसर क्यों किसी को दिया जाय।'

अनुराधा उस समय बहुत कुछ कहना चाहती थी! विगत छः वर्षों से वह इस घर में है पर कभी उसने जब कुछ कहा ही नहीं तो जानेवाले से कहे भी तो क्या? उसके अधर फड़के भी। वह यह देख और समझ अचल मौन हो गयी कि बोझ से दबे हुए इस युवक के सर पर मेरी बातें कहीं ऐसा बोझ न बन जायँ कि वह रास्ते पर ही बैठ जाय, उसकी कमर टूट जाय और बेचारा कभी उठ न पाये। जीवन-जय का यात्री कहीं हार न मान लें।

आँसू के सागर में गर्दन तक डूबी वह तैरने का अभिनय बराबर करती रही। इसलिए कि कहीं बाहर जानेवाले के मन पर दुःख की छाया न पड़ जाय। वह प्रफुल्ल रहे, मुस्कराता रहे, यही तो उसके जीवन की सबसे बड़ी साध है।

उसका भयातुर मन उसे डरा रहा है, देख सम्हल? लोग यह न समझने पावें कि बहू बेटे की मति पर छा गयी है। वह कोई ऐसी वस्तु भी तो उसे न दे पायी जिसकी स्मृति युवक को अनुराधा की याद दिलाती रहे। हाँ, उसने बड़े श्रम से एक रेशम की गंजी बुन रखी थी।

पर दुर्भाग्य·········उसे देखते ही एक दिन चंदर ने कहा कि भाभी तुमने यह गंजी मेरे लिए बुनी है न? अनुराधा उस समय कुछ कह न पायी। प्रसन्नता-पूर्वक उसने अपने हाथ से गंजी चंदर के हाथ में सौंप दी।

कहीं थोड़ी देर बाद बोली—'हां, बबुआजी आपसे अधिक प्रिय और कौन हो सकता है ?'

पति परदेश जा रहा है पर गंजी क्या अनेकों बार सोची-समझी बात भी वह नहीं कह पा रही है।

"युवक जा रहा है, मां रोली लगा रही है। पिताजी मंगल-मंत्र पढ़ रहे हैं, चंदर होलडाल उठाये है। केशर माता और पिता का चरण छू रहा है किन्तु उसकी आँखें उनके चरणों पर नहीं घर की खिड़की पर है, जहां उसके चन्द्रमा पर आज भी घूंघट का अव्यवस्थित बादल है। वह गली में उतरा। खिड़की से अनुराधा ने गली की ओर देखा। उसकी कामना थी कि छोटी-सी यह गली इतनी लम्बी हो जाय कि वे सीधे कलकत्ता पहुँच जायँ फिर भी यह समाप्त न हो और उसकी आँखों में इतनी ज्योति आ जाय कि वह पथिक उसकी आखों से ओझल न होने पाये।

"आज वे घर घों, घर घों, कर रहे होंगे, नहीं, नहीं, उनको कुछ लोग सलामी मार रहे होंगे। वे अपनी नयी पोशाक में कितने भले लगते होंगे, मुझे देख लें तो शरमा जायँ। इतने लोग उनसे मिलते होंगे कि नमस्कार करते-करते उनका हाथ दुखने लगता होगा। ऐसा ही वह बार-बार परदेशी के विषय में सोचा करती।

× × ×

एकाएक उसके ध्यान से यह आवाज छेड़खानी कर बैठी—'घों, घर घों।' यह ध्वनि धीरे-धीरे उसके समीप आती गयी, और उसके कल्पना-चक्र पर ये स्वर परिधाकार घेरा डाल खड़े हो गये।—यह चंदर की चिर-परिचित स्नेह-श्रद्धा-रंजिता अनुराग भरी वाणी थी।

"बबुआ जी, मिठाई खिलाइए"।

"मिठाई आपको खिलानी चाहिए, भाभी, आपकी इज्जत बढ़ी है न, आपका देवर जो फर्स्ट पास हुआ है।"

"बनारस के लोग केवल बात भर करना जानते हैं, और वह भी हवाई। कहाँ अभी कल तक तो कहते थे कि पास हो जाने पर भाभी तुम्हें सिनेमा दिखाऊँगा, और क्या-क्या करूँगा। सिनेमा तो दूर की बात है,

छोटी-सी मिठाई की बात भी कैसी चालाकी से कतर गये। आदमी ऐसे होते ही हैं—कतरव्योंत वाले।"

"और भाभी औरतें···क्यहावं,क्योंहावं···तारों के पलना पर सोया मेरा ललना···घरघां, घरघां,···रोटी-दाल-सब्जी···और फिर टांय टांय फिस"—मुँह बनाते हुए चंदर ने कहा।

"और आदमी बायं-बायं फिस"—मुँह बनाती हुई अनुराधा कह ही रही थी कि चंदर ने झपट कर उसकी गोद से लड़के को ले लिया और उछालने लगा।

अनुराधा बोली—"अभी सोया है बबुआ जी, उठ जायेगा, बड़ा परेशान करेगा।"

"तो मैं खिला लूँगा, तुमसे नहीं कहूँगा भाभी, मेरा लड़का है न।"

"तब बबुआ जी मुझसे क्यों कहियेगा, पलने पर पटक कर फिर यारों के साथ नौ बजे रात तक के लिए लापता, सड़क पर चक्कर काटियेगा। खैर—पास हुए हो, अम्मा जी और बाबू जी का कम से कम चरण जाकर तो छूलो। बाप बनना आसान नहीं।"

"चरण कैसे छूऊँ, भाभी, लज्जा जो लगती है और जब कभी भी चरण नहीं छूआ तो क्या आज परम्परा बदलूँ ?···साथ ही कोई बहुत बड़ा काम भी तो नहीं किया।"

"अच्छा मत छूओ, पर एक काम मेरा तो कर दो। लड़का मुझे दे दो और दया कर बैठक में चले जाओ। वहाँ तश्तरी वगैरह रखी है, उठा ले आओ, मजदूरनी आती होगी।"

"तुम तो भाभी मुझे निरा मजदूरा समझती हो। खैर यह भी भाग्य ही है कि तुम्हारी जैसी औरत की मजदूरी करता हूँ।"—कहते हुए चंदर लड़का थमाता है।

अनुराधा पुचकार कर कहने लगी—"मजदूर नहीं मालिक हैं, बबुआ जी आप जाइए, ला दीजिए न।"

चंदर जाते हुए बोला—"भाभी तुम तो ऐसी बातें बोलती हो जैसे लगता है, फिल्म की कोई अभिनेत्री डाइलाग बोल रही हो।"

"अच्छा अभिनेता जी, जाइए भी तो। देखिये कहीं जाने के विरह में मजनू न हो जाइयेगा।"

सीढ़ी पर उतरते हुए चंदर बोला—"लेकिन तुम लैला जो नहीं हो सकी भाभी, यही खैरियत है।"

वह तश्तरी और गिलास बैठक से एक साथ लेकर सीढ़ी से चढ़ने लगा कि गिलास हाथ से सरक गयी और झनझनाती हुई बारह सीढ़ी नीचे पहुँच गयी। तश्तरी आदि रखकर वह दौड़ा हुआ पुनः नीचे गया और एक सांस में ही उसे ऊपर लेकर चला आया। अनुराधा सकपका गयी और बोली—"बबुआ जी, चोट तो नहीं लगी।"

"वह तो कब की लग चुकी है, भाभी।" कहकर मुस्कराते हुए वह ऊपर जाने के लिए सीढ़ी पर चढ़ने लगा। एकाएक उसे पिता जी का स्वर सुन पड़ा।

"दूधवालों से उधार लेना ठीक न होगा, घर की इज्जत है। ढक कर जितने दिन चल जाय, उतना ही अच्छा।" उसे पत्थर मार गया। वह सीढ़ी पर खड़ा हो उनकी बात ध्यानावस्थित सुनने लगा।

"जवन टूटल-फूटल बरतन पड़ल हौ ओसे भी तऽ काम चल जाई।"—बूढ़ी मां का यह स्वर तत्काल उसे सुनाई पड़ा—"लेकिन घर कऽ लक्ष्मी बाहर गइले पर फिर वापस नाहीं अवतिन।"

"तो घर की लक्ष्मी को घर में ही अन्न और जल के बिना मार डाला जाय, क्यों?"

"आप नाराज मत होआ, जवन जी में आवे तवन करा। वही में हमार खुशी हौ। लेकिन एक बात हौ, बहू के न मालूम होवे पावे। आउर चन्दर भी न जानै पावै नाहीं तो ओकर मन छोट हो जाई।"

चन्दर अपने को वहाँ और न रोक पाया। धीरे से वह सीढ़ी से नीचे उतरा और बैठक में चला गया। उसकी भाभी तक को यह ज्ञात न हो पाया कि कोई ऊपर से नीचे जा रहा है।

कृष्णकांत खखारते हुए सीढ़ी से नीचे उतरे। उन्होंने धीरे से कहा—'बहू कहाँ हो?'

तब तक चन्दर की मां भी उतर आई और कहने लगी,—'बहू, बहुत-सा टूटल-फूटल बरतन घर में पड़ल हौ। अइसे घर में आइल लक्ष्मी भी वापस चल जालिन। सब इकट्ठा कर डालऽ आउर बड़के बकसा में बेकार मुसलमानी ढंग कऽ जवन गडुवा ओडुवा पड़ल हौव ओके भी इकट्ठा कै डालऽ, नया बरतन बदलवा के मंगा लेहीं।"

अनुराधा से कुछ कहे बिना ही कृष्णकांत नीचे चले आये। उन्होंने बैठक का दरवाजा खोला। देखा चन्दर मसनद के सहारे दूसरी ओर मुँह किये हुए लेटा है। जिस चौकी पर वह लेटा है उसके ठीक ऊपर एक अढ़ाई फुट का चित्र टंगा है। वह अतीत की शुभ्र कल्पना में वर्तमान भूल गये। लेटा देख यद्यपि वह चन्दर से पूछना चाहते थे "क्यों, कैसे लेटे हो चन्दर।"

यह चित्र महामहोपाध्याय पं० रविकर चतुर्वेदी का था जो अपने समय के प्रतिष्ठित गणितज्ञ थे। गवर्नमेंट संस्कृत कालेज में अपने विभाग के प्रधान थे तथा उनकी प्रतिष्ठा के कारण ही कृष्णकांत जी को नौकरी मिल सकी थी। इस धरती से कभी के वे चले गये थे। जब कृष्णकांत आचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण हुए थे, और उनका स्थान प्रथम आया था तो उनके पिता चतुर्वेदी जी ने ब्राह्मणों की सभा बुलाई थी। वस्त्र से विभूषित कर पंडितों को विदाई पाँच-पाँच रुपया दक्षिणा देकर दी थी। कृष्णकांत सोचने लगे, एक पिता मैं हूँ लड़के के फर्स्ट पास होने पर भी अपनी पत्नी तक के अरमान पूरे नहीं कर सकता। चन्दर सोया है पर उसे जगा कर यह नहीं कह सकता कि आज जो तुम चाहो मांग लो।

वे कुर्सी पर बैठे बैठे धँसे जा रहे थे कि एकाएक उन्हें अपने बड़े पुत्र का स्मरण आया जो कलकत्ते की जूट मिल में इंजिनियरिंग का कार्य सीख रहा था। वह सोचने लगे विगत दो वर्षों से वहाँ शिक्षा ग्रहण कर रहा है। ब्राह्मण मिस्त्री हुआ, पढ़ने-पढ़ाने की परम्परा समाप्त कर परिस्थितिवश लड़के को दूसरे रास्ते पर भेजना पड़ा। पता नहीं वह किस स्थिति में है। सेठ जी ने तो कहा था कि डेढ़ साल में ही कामलायक हो जायगा लेकिन पता नहीं क्या बात है कि दो साल होने को आये, उसकी

शिक्षा-दीक्षा सब पूरी हो गई होगी पर विगत एक महीने से उसका कोई पत्र भी तो नहीं आया। शायद नाराज हो गया हो। वह यह सब सोचते ही रहे कि एकाएक उनका ध्यान पुनः चन्दर की ओर गया।

वह बोले—"चन्दर, उठो! सोये क्यों हो?"

यद्यपि चन्दर जगा था तो भी उसने सोने का सच्चा अभिनय कर लिया, जगकर ही वह क्या कर लेता? उसके भाग्य की दुनियाँ ही जो सोयी पैदा हुई थी।

और भी तो, उसके चेहरे पर पड़ी क्लान्ति की रेखायें मर्म का उद्-घाटन जो कर देतीं। अब वह यह कभी भी न चाहेगा। उसके आँसू तो उसके पिता जी बराबर पोंछते आये हैं, पर आज वह बारबार सोच रहा था कि पिता जी के आँसू कौन पोंछेगा। वे तो अपनी दरिद्रता का आख्यान अपने पुत्र तक से भी इसलिए नहीं कर सकते कि वह लड़का है, उसका मन छोटा हो जायेगा।

कृष्णकांत जी ने सोचा, सोया है सोया रहने दिया जाय। इसी समय चंदर के कुछ दोस्त आ गये जिन्होंने कृष्णकांत को प्रणाम किया और पूछा—'चंदर कहाँ है?'

'वह सामने सोया है, शायद थका हुआ है।'—यह कहते हुए वे भीतर चले आये।

चंदर का सोने का अभिनय पूर्ववत् जारी रहा। उसके एक साथी ने उसे झकझोर कर जगा दिया और कहा—"अच्छे दोस्त हो, तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते जब पौने छः बजे हैं तब 'अमानत' के लिए आया हूँ। अभी-अभी बात करके खयानत करते हो बच्चू!"

यह बात कृष्णकांत के कानों तक भी पहुँच गयी। वह ऊपर गये। सीढ़ी पर उन्हें उसी प्रकार रुक जाना पड़ा जिस प्रकार चंदर को थोड़ी देर पहले सीढ़ी से वापस लौटना पड़ा था, माता और पिता का बिना चरण छुए ही क्योंकि उन्हें भी कुछ सुन पड़ा।

"अम्मा जी, मैं कई बार आपसे कह चुकी कि आपने हमारे लिए जो सिकड़ी बनवाई थी, वह वजनी है। तीन तोले की सिकड़ी पहन कर गला

भर जाता है। रोज के लिए हल्की सिकड़ी बनवाने के लिए आपसे कई बार कहा था। आज बबुआ जी पास हुए हैं, इसी खुशी में यह काम बाबू जी से कह कर पूरा करवा दीजिए। मुझे बस एक तोले की सिकड़ी चाहिए। बबुई जी का कान छूछा है उनके लिए इसी में से एक इयरिंग भी बनवा दीजिए।"

बुढ़िया ने कहा—'गहना बार-बार नहीं बनता और यह चढ़ावे का गहना है, इसे नहीं उतरवाऊँगी।'

चंदर अपने दोस्तों को बैठक में छोड़ ऊपर आने लगा। सीढ़ी पर बाबू जी को खड़ा देख बोल उठा—'बाबू जी, आप यहाँ क्यों खड़े हैं ?'

उन्होंने कहा—'हाँ, हाँ, चलो ऊपर, आज तुम फर्स्ट पास हुए हो अपने दोस्तों को सिनेमा तो दिखा दो। चलो मेरे साथ अभी ऊपर चलो।' मन के आकाश में झंझा के झोंके सहते कृष्णकांत सीढ़ी पर आगे-आगे और उनके भविष्य की आशा का दीपक चंदर उनके पीछे-पीछे महामौन।

ऊपर जाते हुए कृष्णकांत ने कहा—'बहू जरा ऊपर आना कुछ काम है।'

ऊपर जाकर कृष्णकांत चंदर से बोले कि तुम कोठरी में कुरुई में नौ रुपये का पैसा रखा है उसे लेलो और चौक में बट्टे वालों से भुना कर उनसे नोट ले लेना तथा अपने दोस्तों को सिनेमा दिखाकर जलपान करा देना।

चंदर ने अत्यन्त धीमें स्वर में कहा—'बाबू जी, फिर कभी दिखा देंगे।'

'पास तो आज हुए हो और दिखाओगे फिर कभी, अच्छे तुम हो और तुम्हारे दोस्त भी'—मुस्कराते हुए कृष्णकांत ने कहा।

चंदर थोड़ी देर खड़ा रहा। वह कृष्णकांत से कुछ कहना चाहता था किंतु पता नहीं क्यों वह रुक गया और भीतर जा, कुरुई के पैसों को वहीं पड़े अखबार में लपेट उसने उठा लिया।

पुनः वह बड़ी तेजी से नीचे आया और दोस्तों से बोला "बाहर निकलो दरवाजा बन्द करके आया, 'अमानत' दिखाने।"

वे बाहर निकले, उनमें से एक बोला "कहीं फिर न सो जाना।'

उधर अनुराधा ऊपर आ चुकी थी। उसने कहा, "कहिये बाबू जी।"

उन्होंने कहा—"बेटी, मैं तुम्हारे लिए सिकड़ी ला देता हूँ। नई ला देता हूँ, पुरानी बदलने की आवश्यकता नहीं।"

'बाबू जी, यह सिकड़ी क्या होगी, इसे ही न बदलवा दीजिए। एक बबुई जी के लिए कर्णफूल और मेरे लिए हल्की सिकड़ी ला दीजिए ताकि रोज काम आ सके।'—यह कहकर अनुराधा उस कमरे में गयी जिस कमरे में अभी थोड़ी देर पहले कृष्णकांत और उनकी पत्नी थीं। वहाँ से वापस आकर उसने तत्काल कृष्णकांत के काँपते हाथों पर सिकड़ी रख दी। और नीचे चली आयी।

नीचे जाते समय कृष्णकांत ने उससे कहा—'बहू अपनी अम्मा जी को ऊपर भेज देना।' इधर बुढ़िया ऊपर आई। उधर तबतक मजदूरिनी भी आ गयी।

अनुराधा उसे देख लाल-पीली हो गयी और कहने लगी—"तुम रोज देर करके आती हो। यदि तुम्हारा मन नहीं लगता तो क्यों नहीं चौका-बरतन छोड़ देती, मैं दूसरे से काम करा लूँगी।'

"वाह रे शान, तनख्वाह देते समय तो ऐसी बातें इस घर में नहीं की जातीं। दो-दो महीने से तनख्वाह रुकी पड़ी है उसकी सुधि नहीं है और जरा-सा देर हो गयी तो सर पर आसमान उठा लिया। वाह रे आज-कल की बहुएँ! हमारी तनख्वाह दे दो, कल से नहीं आऊँगी।"

"कितना हुआ कुल।"

"जोड़ लीजिए, दो महीना चार दिन की तनख्वाह बाकी है।"

अनुराधा ने कहा—"आज से चौका-बरतन नहीं करना है। अभी एक मिनट में तनख्वाह मिल जाती है।"

बहू अपने कमरे में गई। उसने अपना बक्स खोला, धोतियों की तह से उसने एक पाँच तथा सात एक एक रुपये के नोट और फुटकर

रेजकी निकाली। आकर बारह रुपये दस आने उसके हाथों में रखते हुए बोली कि गिन लो, अब यहाँ मत आना।

मजदूरिनी अवाक् रह गयी। उसने पैसे गिनकर कहा—"अम्मा जी कहाँ हैं?"

अनुराधा ने कहा—"किसी दूसरे दिन आकर उनसे मिल लीजिएगा। अब मेरे रहते इस घर में प्रवेश की आशा छोड़ दीजिए।"

"भगवान बचाये ऐसे घर से"—झन्नाते पैर उतर कर वह जाने लगी। वहू ने रसोई घर से सारे बरतन बाहर निकाले और तत्काल उनको माँजने का उपक्रम करने लगी।

इधर छत पर कृष्णकांत और उनकी पत्नी समस्या के समाधान के लिए परस्पर तर्क-वितर्क कर रहे थे कि बहू का गहना बदलवाकर सत्यनारायण की कथा सुनी जाय, ब्राह्मण भोजन कराया जाय या पुराने बरतन बेचकर। उनकी पत्नी यह चाहती थी कि बरतन बेच दिया जाय। बहू का गहना बेचना शोभा नहीं देता और सब गहने तो बन्धक से बुरे ही हो चुके हैं। इस एक को तो बचा कर रखा जाय। घर की इज्जत है, चार औरतें आती जाती हैं और उधर कृष्णकांत का ऐसा विचार था कि अतिथि बहुत आते हैं बरतन बिक जाने पर बड़ी बेइज्जती होगी।

उधर नीचे शांति भी आ गयी। शांति चंदर की छोटी बहन है, उससे डेढ़ साल ही छोटी। कृष्णकान्त के सिद्धांत के अनुसार उसकी शादी डेढ़ साल और पहले ही हो जानी चाहिए थी किन्तु जीवन के सत्य ने सिद्धांत को अपदस्थ कर दिया था। वह लोगों से कहते थे कि लड़की की शादी करनी है यह भी समस्या ही है। आजकल के युवक जहाँ ए, बी, सी, डी पढ़े तहाँ अपने बाप दादों की परम्परा ही भुला देते हैं और जो परि-स्थिति वश वातावरण के अनुकूल रह भी पाते हैं उनका घर-बार ऐसा होता है कि उन्हें लड़की देना उसकी जिन्दगी बरबाद करना है। अपनी बात के समर्थन में वे तुलसीदास और भर्तृहरि का हवाला भी देने से न चूकते थे और प्रायः कहते थे—

'प्रीति विरोध समान तें, करी नीति अस आय'

उनके कहने का मतलब यह कि शांति के लिए उनके सम्मुख वैसी ही स्थिति उत्पन्न हो गयी थी, जैसी स्थिति जनक की धनुष-यज्ञ के समय हुई थी और उन्हें कहना पड़ा था—

सुकृत जाई जो प्रण परिहरऊँ,
कुँवरि कुवाँरि रहै का करऊँ।
जो जनितेउँ बिनु भट महि भाई,
तौ प्रण कर हौं त्यों न हसाई।

यह चौपाई सुनाते—सुनाते कभी-कभी वे कह उठते कि संसार में सबसे बड़ा पाप लड़की का पिता होना है। जनक की कथनी में तो शक्ति की साधना का अनन्त स्रोत था और कृष्णकांत की कथनी में घर की प्रतिष्ठा पर किये गये समाजिक आक्रमणों से लाज बचाने के लिए बात का उपयोग ढाल के रूप में किया जाता था। लोग कृष्णकांत की बात को सच भी मान लेते थे इसलिए कि इस घर ने अपनी प्रतिष्ठा की दीप-शिखा ज्योतिर्मय रखने के लिए सदैव से ही स्नेहपूर्ण आहुति दी है और कभी-कभी भूखों रहकर भी इस दीप की रखवाली घोर दुर्दिन में रात-रात भर जाग-जाग कर की है।

अनुराधा ने मुस्कराते हुए शांति से कहा—"बबुई जी, पास-पड़ोस में बहुत घूमती हो, किसी दिन कोई उठा ले जायगा तो न जाने कौन बेचारा घुट-घुट कर जीवन भर पथ पर आसरा देखता कुँवारा ही मर जाएगा।"

"च च भाभी, बड़ी सहानुभूति है, बेचारे से। भैया उधर कलकत्ते में हैं, इधर बेचारे को बेचारी ने घेर लिया।..................अरे रे रे यह क्या हो रहा है ? मजदूरिनी नहीं आई क्या ?"

"आई तो थी, उसकी तबीयत ठीक नहीं थी, इसलिए मैंने उसे एक महीने की छुट्टी दे दी।"

"माँ से पूछा ?"

"इसमें अम्मा जी से पूछने की क्या जरूरत ? तुम ही तो असली मालकिन हो। तुम्हें जब मालूम हो गया तो फिर डर काहे का।"

एकाएक शांति बैठ गयी और वह भी अपनी भाभी का हाथ बँटाने लगी। बीच-बीच में बोलती जाती, 'भाभी घबड़ाना मत। भैया नहीं हैं तो मैं हूँ और यारी तुमसे लग गयी है, तुम्हारे लिए जान भी हाजिर है।'

अनुराधा भी मुस्करा-मुस्करा कर कहती रहती 'मुझे गड़ासा नहीं चलवाना है। राम जाने, कितनों की जाने रोज दिन-दहाड़े लूटती फिरती हो, डाकू कहीं की।'

दोनों ने बातचीत ही में इतनी जल्दी बरतन मल लिया कि ऊपर बैठे लोगों को यह पता भी नहीं चला कि मजदूरिनी आई या नहीं।

ऊपर वाद-विवाद शांत हो गया और अन्ततोगत्वा नारी को पुरुष के सम्मुख हार स्वीकार करनी पड़ी। कृष्णकांत नीचे उतर रहे हैं और इधर घर में खिड़की से अनुराधा छिपकर उनकी ओर देख रही और उधर दूर कोने से शांति कहती जा रही है, "नजर मिलाकर मुँह क्यों फेर लिया।"

अनुराधा ने झट कहा—'चुप, बाबूजी।' कृष्णकांत तो बहरे हो गये थे। उन्हें तो रघुनाथ सेठ की दुकान दिखाई पड़ रही थी। वही रघुनाथ सेठ जिन्होंने आधे मूल्य पर बंधक रख घर के सभी गहनों को बुरा कर दिया था। फिर भी वे बहुत अच्छे और नेक इसलिए थे कि वे किसी से यह बात नहीं कहते थे कि पं० कृष्णकांत का गहना उनके यहाँ बराबर बुरा हो जाता है।

× × ×

सूर्योदय के साथ ही कृष्णकांत के चौक की आभा मंगल गायन के साथ प्रभामय हो गयी। कलश पर बना स्वस्तिक चिह्न अजन्ता के चित्रों की भाँति घर के अतीत को प्रदीप्त कर रहा है। लोग आँगन में जमे हैं। छत पर हलवाई घी की सुगन्ध से बैठक में बैठे ब्राह्मणों के मन में मोदक की भाँति मोद भर रहा है। एकदा नारदो जोगी से आरम्भ होकर साधो बनिया के भाग्य जैसे लौटे वैसे सबके लौटे, वाली बात उस कोलाहल में शंख ध्वनि के सहारे नर्क में स्वर्ग की सीढ़ी बना रही थी।

अनुराधा आज बहुत व्यस्त है! शांति उसका हाथ बटा रही है। कृष्णकान्त की पत्नी पूजा से उठकर मुहल्ले टोले की औरतों का स्वागत कर रही है और सबसे कह रही है कि बिना खाये मत जाइएगा। प्रसाद तो पहले ही बट चुका था।

उस समय केवल घर के प्राणियों में एक चंदर ऐसा था जो महामौन था यद्यपि उसे आज प्रसन्न रहना चाहिये था। इस मौन का कारण क्या था यह तो कोई नहीं जानता लेकिन अनुराधा ने एक दो बार एकांत में बुलाकर उससे अवश्य पूछा था "बबुआ जी, तबीयत तो ठीक है, न?"

ब्राह्मण पेट पर हाथ फेरते, मस्तक पर अक्षत रोली लगवाते, टेंट में दक्षिणा खोसते जय जयकार मनाते चले जा रहे थे। एकाएक एक्सप्रेस डिलेविरी से उसी समय एक पत्र प्राप्त हुआ। यह पत्र कृष्ण-कांत को बैठक में ही मिला और उन्होंने तत्काल पत्र खोल लिया क्योंकि उसपर लिखी लिपि से उनका परिचय बड़ा पुराना था, और गत दो वर्षों से तो इस लिपि को देखने के लिए वे बराबर लालायित रहते थे।

कलकत्ता
२४ जून

आदरणीय बाबू जी,

प्रणाम

मैं सकुशल हूँ। चंदर के नतीजे से परिचित कराइएगा। आपको कष्ट तो नहीं देना चाहता था लेकिन अब आप से छिपाना भी ठीक नहीं होगा। सेठ दमड़ी मल जी के आग्रह पर आपने मुझे ट्रेनिंग के लिए यहाँ भेजा था। विगत तीन महीनों से उनका रूख ही परिवर्तित हो गया है। बात ऐसी है कि उनको मैकेनिक डिपार्टमेण्ट में तीन फोरमैनों की आवश्यकता थी। मेरे पहले से तीन चार आदमी मेरी ही तरह ट्रेनिंग ले रहे थे लेकिन आज तक उनकी ट्रेनिंग पूरी नहीं हुई और अभी छः महीने पहले उन्होंने तीन-चार सहजातियों को, जिनमें से कोई उनके मौसा के मामा

का लड़का है, कोई उनके फूफा के बहनोई के फूफा का पोता है, और कोई उनकी स्त्री के भांजी का चाचा है, बिना पूरी ट्रेनिंग किये ही उस डिपार्टमेंट की सुपरवाइजरी मिल गयी। सेठ जी की यह आदत बड़ी पुरानी है।

भलीभाँति जान लेने के पश्चात् तीन दिन मिलने का प्रयत्न किया। चौथे दिन बड़े सौभाग्य से सीढ़ी से उतरते हुए मिले और बोले 'देखिये पंडित जी, मशीन का काम सत्यनारायण की कथा नहीं है। साल डेढ़ साल और सीख लीजिए, आपको काम मिल ही जायेगा। ऐसे तो रहने की जगह लेबर क्वार्टर में दे ही दी है और पचास रुपये ट्रेनिंग पीरियड भर आपको बराबर मिलता ही रहेगा। आपका खर्च तो निकल ही जायगा। किसी पर दया कर उसे गुन भी सिखाये और वह बराबर सर पर चढ़ा रहे।'

आपके संकोच से मैंने उन्हें कुछ भी नहीं कहा। आप स्वयं सोचिए यहाँ कोयला झोंकने वाले भी डेढ़ सौ रुपया महीना पैदा कर लेते हैं और हम ट्रेनिंग के नाम पर इनका पूरा काम करते रहें और पचास रुपये पर इनकी नौकरी बजाते रहे।

गत १५ तारीख को ही मैं वहाँ से चला आया और आपके आशीर्वाद से मैंने गोरखपुर के पंडित नन्हकू दूबे की कृपा से यहीं ट्रांसपोर्ट एजेंसी में क्लर्क का काम कर लिया है, एक सौ दस रुपये महीने पर। अब चिंता की जरूरत नहीं। अगले महीने से सब ठीक हो जायगा।

मैं जानता हूँ कि आप मुझसे छिपाते हैं, भगवान करें कि गृहस्थी संबंधी रहस्य की बातें छिपी ही रह जायँ, यही अच्छा है। यदि सेठ के चक्कर में न आते तो संभवतः कहीं पहले ही यह क्लर्की मिल गयी होती। शांति की शादी के संबंध में प्रयत्नशील रहियेगा। माता जी को प्रणाम, शांति और चंदर को आशीर्वाद।

आशीर्वादाकांक्षी
केशव

पत्र पढ़कर कृष्णकांत को काठ मार गया। कृष्णकांत सोचा करते और सेठ जी ने भी तो कहा था कि केशर को अपनी सबसे बड़ी जूट मिल का तीन वर्ष में चीफ इंजीनियर बनवा दूँगा। एक हजार तनख्वाह, हजारों पर अफसरी।

अधिकार के विश्वास की सुखदा कल्पना-परी चुड़ैल बन गयी। जीवन का आधार एक माल ढोने वाली कम्पनी में क्लर्क के रूप में। उस घर का लड़का क्लर्क जिसके पिता के घर पर कभी आकर राजाओं के लड़कों को भी पढ़ना पड़ता था। यदि इस समय उसका चलता तो वह इस जीवन से निवृत्त हो जाता किंतु उसके सामने शांति, चंदर, उसकी पत्नी और अनुराधा बार-बार आकर खड़ी हो जातीं और वह अपने दुःखदर्द की कहानी अधरों तक भी न आने देता। इसलिए और भी, कि बच्चों का मन कहीं छोटा न हो जाय और भारत में यह परम्परा जो रही है कि पुरुष सिंह की भाँति सब कुछ सहता है लेकिन किसी से, न कुछ कहता है, न सुनता है और कह सुन कर ही क्या करेगा, हँसी उड़वायेगा ?

वह मन ही मन गुनगुना उठे—

रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोय।
सुन इठलैहैं लोग सब, बाटि न लैहैं कोय॥

पत्र उन्होंने मोड़कर जेब में रख लिया। उदास मन ऊपर आये। उनकी पत्नी सामने खड़ी थीं, उन्होंने पूछा 'किसकी चिट्ठी आई थी।' यद्यपि कृष्णकांत के चेहरे पर मुर्दनी थी तो भी खिले हुए कागज के फूल की भाँति मुस्करा कर उन्होंने कहा कि जानती हो केशर एक बहुत बड़ी ट्रान्सपोर्ट कम्पनी में मैनेजर हो गया है, बहुत बड़ा आफिसर। उसी की चिट्ठी आयी है। अनुराधा ने भी कृष्णकांत की बात सुन ली।

कृष्णकांत की पत्नी ने पूछा—'महीना का मिली।'

कृष्णकांत ने कहा—"यह तो उसने नहीं लिखा लेकिन बहुत तनख्वाह मिलेगी।"

बुढ़िया ने कहा—"भगवान हमार फिर सुन लेहलन।"

"भगवान बहरा थोड़े ही है।" कहते हुए वह ऊपर चले गये और उनकी पत्नी पड़ोसिनों के बीच स्वागत-सत्कार के लिए। अनुराधा के सामने एक चित्र खड़ा हो गया। वह चित्र था एक लम्बे गोल चेहरे वाले छरहरे युवक का, जो तीन मंजिले विशाल आफिस में प्रवेश कर रहा है और रास्ते में जो भी मिल रहे हैं, सब उसे झुक कर सलाम कर रहे हैं।

जाउँ कहाँ,

तजि चरण तिहारे

बनारस
५ जुलाई

नाथ,

सादर प्रणाम

दो साल से अधिक हुए, आँखें आपका दर्शन न कर सकीं। ऐसा कठोर दण्ड मुझे भगवान क्यों दे रहा है, मालूम नहीं, कुछ खता हुई होगी। यह पत्र भी न भेजती, किन्तु न जाने क्यों अब अपने को रोक नहीं पा रही हूँ। धैर्य का बाँध टूट गया है। खफा न होइयेगा।

बाबूजी ने आपको जो पत्र लिखा था, उसमें उन्होंने यह बता ही दिया था कि बबुआ जी पास हुए, सत्यनारायण की कथा हुई। ब्राह्मण भोजन हुआ, और सोनपुर के पंडित जी की लड़की की शादी भी हो गयी। यह सब कैसे हुआ, यह बताकर आपको कष्ट नहीं देना चाहती। हाँ इतना जरूर बता देना चाहती हूँ कि यदि कल आपका रुपया न आया होता तो बबुआ जी का नाम यूनिवर्सिटी में न लिखा जाता। यद्यपि बाबू जी घर भर से यह छिपाये हुए हैं कि आप क्या काम कर रहे हैं तो भी मैं सब जानती हूँ।

आपके पत्र चोरी से पढ़ लिया करती हूँ बुरा मत मानिएगा। मैं जान-बूझकर यह चोरी नहीं करती। पापी मन मानता, नहीं इस चोरी से अपने को बड़ा संतोष मिलता है। इसके लिए क्षमा करियेगा।

आप अपने स्वाथ्य का ध्यान रखिये नहीं तो गिर जायगा। बड़ी आफत आ जायेगी, कम से कम मुझपर। आप यह जानते ही हैं कि बाबू जी अगस्त से रिटायर हो जायँगे। फिर बहुत बड़ी समस्या उठ खड़ी होगी। पेंन्सन से गुजर नहीं होगा।

एक दिन यह भी सुना--बाबूजी अम्माजी से कह रहे थे कि शांति की शादी के लिए आधी पेन्सन बेच दूँगा और इस साल जरूर शादी कर दूँगा।

ऐसे तो घर का खर्च कोई बड़ा नहीं है, चल सकता है। लेकिन मुकदमेबाज और पाहुन हमारे घर को क्षेत्र और धर्मशाला समझते हैं और रोज चले ही आते हैं। यदि उनका आना-जाना बन्द हो जाय तो किसी बात की चिन्ता न रहे। लेकिन यह कैसे हो सकता है? दस बजे रात भी गाड़ी से कोई आया तो बाबू जी अम्माँ जी को जगा कर कहते हैं कि तीन आदमी आये हैं और अम्मा जी स्वयं चूल्हा जलाने उठती हैं। घर की इज्जत जो ठहरी।

बबुआ जी का नाम तो लिख लिया गया है। कुछ किताबें बाबू जी अपनी लाइब्रेरी से ले आये हैं, लेकिन अगस्त में उन्हें जमा कर देना होगा। फिर बबुआ जी की पढ़ाई का हर्ज होगा। किसी भी तरह उनके किताबों की व्यवस्था करनी होगी।

आप यह तो जानते ही हैं कि जीजी की शादी इस वर्ष आवश्यक है। मैं यह जानती हूँ कि आपके पास क्या बचेगा जो शादी में दे सकेंगे। यदि बाबूजी ने पेन्शन बेचकर या मकान गिरवी रखकर शांति जीजी की शादी की तो बड़ा संकट आ जाएगा।

दो साल हो गये। कम से कम दो दिन के लिए ही चले आइए। अब मुन्ना बड़ा हो गया है। जब बबुआ जी मजाक में उससे यह कहते हैं कि तुम्हारा बाप कौन है, तो वह घूर-घूर कर रह जाता है। मैं यह दिखा भी नहीं सकती कि तुम्हारे बाबू जी यह रहे।

सुना है बङ्गाल में औरतें परदेसियों पर जादू कर देती हैं। अगर कहीं आप पर भी जादू का असर हो गया हो तो अपनी जिंदगी तो आपका नाम लेकर कट जायगी, पर लड़के के लिए तो कम से कम चले आइये। यदि कोई परिचित आदमी मिल जाय और यहाँ आ रहा हो तो मुन्ने के लिए कुर्ते का कपड़ा भेज दीजिएगा। ऐसे तो बाबू जी हर दूसरे महीने उसके लिए कुर्ता सिला ही देते हैं। मुन्ना का प्रणाम। और सब सानन्द हैं।

दासी
अनुराधा

७ जुलाई

यह है मेरी धर्म संगिनी का पहला पत्र। महात्मा लोग भी क्या जीव होते हैं। आज ही यह पत्र प्राप्त हुआ है और नीचे डायरी के इसी पृष्ठ पर स्वामी रामतीर्थ का वचनामृत भी छपा है और क्या खूब लिखा है स्वामी जी ने, वैवाहिक सम्बन्ध को उच्चतर बनाने की बात। वाह रे जिन्दगी, वाह री दुनियाँ ! भाई के पास किताबें नहीं। पिता की नौकरी समाप्त होनेवाली है। लड़के के लिए वस्त्र नहीं। फिर भी उस घर में दस पाँच अतिथियों को भोजन कराना पड़ता है। अतिथि भगवान जो ठहरे।

जब पढ़ता था, तो सोचता था कि संसार में मेरे टक्कर का कोई पुरुष हो ही नहीं सकता। मैं राम, कृष्ण और गांधी बनूँगा किन्तु आज एक मामूली क्लर्क, यंत्र से भी बदतर जीवन। नियत नटी की यह लीला अब तो नहीं देखी जाती। अंधा भी नहीं बन सकता, बहरा भी नहीं हो सकता।

कितनों की आशा मुझ पर है, कितनों का विश्वास मुझ पर है, क्या उन्हें धोखा दे दूँ? आज तो इस भांति जकड़ दिया गया हूँ कि अपनी स्त्री को पत्र भी नहीं भेज सकता। करूँ तो क्या करूँ? कुछ समझ नहीं पड़ता। डायरी उलटने पर एक जगह यह भी तो लिखा हुआ है शांति के समान कोई बन्धु नहीं है। मुनि शनक जी ने यह बात सनकीपन में तो नहीं कह डाली। शांति की शादी......।

पति का उद्देश्य होना चाहिए अपने वैवाहिक सम्बन्ध को उच्चतर और सात्विक बनावे—स्वामी रामतीर्थ।

बनारस
८ अगस्त

नाथ,

सादर प्रणाम

आपका पत्र बाबूजी के नाम पाँच-सात दिन पहले ही आया था। रुपये भी आपने भेजे थे, वह मिल गये। कल कलकत्ते से रामकिशोर चौबे का लड़का आया था, उसने अम्मा जी और बबुई के लिए दो-दो धोतियाँ दी तथा मुन्ने के लिए दो कुर्ते का कपड़ा भी।

वह बाबू जी को बता रहा था कि आपकी तबीयत उधर कुछ खराब हो गयी थी, अब ठीक है। मैं यहाँ तड़प कर रह जाती हूँ। यह भी नहीं मालूम होता कि आपकी तबीयत खराब है। खैर कर ही क्या सकती हूँ, औरत जो हूँ।

बाबूजी घर बैठ गये हैं और पेंसन गिरों रखने या मकान गिरवी रखने की बात सोच रहे हैं। कहते हैं कि चंदर की शादी में जो तिलक मिलेगा उससे मकान छुड़वा लूँगा। बेचारे कर ही क्या सकते हैं? बबुई जी की शादी करना भी तो जरूरी है। बबुई जी की तबीयत भी रहते-रहते खराब हो जाती है। अम्मा जी को गठिया ने पकड़ लिया है। सबेरे गङ्गा नहाना तब भी नहीं छोड़ रही हैं।

बबुआ जी बता रहे थे कि फर्स्ट आने के कारण उनकी फीस इस महीने से माफ हो जायगी और सरकार की ओर से दो साल तक बीस रुपये महीना वजीफा मिलेगा। लेकिन बबुआ जी यह बोलते थे कि यह वजीफा दिसम्बर के बाद इकट्ठा मिलेगा और कहते थे कि सब बाबूजी को दे दूंगा। रोज उनको चार मील चलकर यूनिवर्सिटी जाना पड़ता है। बेचारे, पैदल ही आते-जाते हैं। मैंने उनसे कहा कि बबुआ जी साइकिल खरीद लीजिए तो मेरे ऊपर बिगड़ गये। उनका स्वास्थ्य गिर रहा है। आप उनको लिख दीजिएगा—बिना मेरा हवाला दिये हुए कि वजीफा मिलने पर वह साइकिल जरूर खरीद लें। हाँ एक बात फिर दुहरानी है कि आप कब आइएगा। मुन्ना का प्रणाम।

देखिये बङ्गाल के जादू से बचियेगा।

दासी
अनुराधा

१० अगस्त

यह अनुराधा का दूसरा पत्र है। इतना तो मान ही लूँ कि मरने पर अनुराधा को स्वर्ग मिलेगा। क्योंकि हमारे मनु भगवान ने ऐसा कहा है। वह भी तो सेवा कर रही है।

इतने लम्बे-लम्बे पत्र उसने लिखे। पर उसने अपने बारे में कुछ नहीं लिखा। वह दूसरों का उपकार जो करती रहती है, व्यास का बचन पालन कर रही है, पुण्य संचित कर रही है, नर्क में जीवन बिताकर, वह भी औरों के लिए ही।

हाँ, अगर उसे भय है तो यही कि बङ्गाल कहीं मुझ पर जादू न कर दे। यह जादू मुझ पर कैसे होगा, यह उसे नहीं मालूम। पगली जो ठहरी। गौने के बाद से आज तक बेचारी यह भी नहीं जान पायी कि तीस फुट के बाहर भी कोई संसार है।

उसके घर वाले भी यह सोचते रहे होंगे कि मुझसे शादी की जा रही है, अनुराधा क्या गुलछर्रे उड़ायेगी। पर बेचारी नर्क में जीवन व्यतीत कर रही है और मैं, उसका पति यह भी नहीं कर सकता कि उसके निकट रह कर उसे सान्त्वना ही दे दूँ और भरोसा दिये रहूँ कि रात के बाद सवेरा आयेगा, घबड़ाओ मत। या उससे यह कह दूँ कि तुम्हें पाकर मैं धन्य हुआ।

कब तक यह सब सहना होगा? अब तो नहीं सहा जाता, लेकिन चुप रहने के सिवाय और चारा ही क्या है। यहाँ तक तो अपने को जलील कर दिया कि शाम को एक मारवाड़ी के छोकरे के लिए स्याही और किताब बाजार से खरीद कर ले जाना पड़ता है और अपने अध्यापक से वह कहता है कि मास्टर साहब 'स्वान' नहीं 'पारकर' लाया कीजिए।

वाह री दुनिया, वाह रे जमाना।

केवल सेवा के कारण ही नारी को स्वर्ग में भी महती-प्रतिष्ठा प्राप्त होती है—मनु।

बनारस
१५ सितम्बर

नाथ,

सादर प्रणाम

बाबूजी के नाम आपका दो पत्र और बबुआ जी के नाम आपका एक पत्र आया था। दोनों ने आपको उत्तर लिख दिया। मैं यह बताने के लिए पत्र लिख रही हूँ कि यह बात गलत है कि मेरी तबीयत इधर खराब रहती है। बबुआ जी ने इसलिए वैसा लिख दिया कि शायद पत्र पढ़ कर आप जल्दी आने का प्रयत्न करें। जब बबुई जी की शादी तीन-चार महीने बाद हो ही रही है तो उसमें ही लम्बी छुट्टी लेकर आइयेगा ताकि आपको देख कर आँखें अघा सकें।

बाबूजी बहुत घबड़ा रहे हैं, बबुई जी की शादी के लिए। उनको कोई रास्ता नहीं दीख पड़ रहा है। जहाँ कहीं भी जाते हैं सब मिला कर शादी के लिए लोग दस-बारह हजार रुपया माँगने लगते हैं। लोग यह समझते हैं कि हमारे घर का क्या पूछना? लोग ठीक ही तो समझते हैं। घर की बनी बनायी इज्जत जो है।

बाबूजी हम लोगों से सारी बातें छिपाते हैं। परसों मामाजी आए थे, उनसे अम्माजी ने कहा कि इस शादी में तुम लोगों को मदद करनी पड़ेगी।

वे बोले इधर हमारा हाथ खाली है। हजार पाँच सौ से अधिक न बन पड़ेगा। एक हजार रुपया मैं अपने नैहर से ले आऊँगी आप चिन्तित न होइएगा।

मुन्ना का प्रणाम। घर पर सभी सानन्द हैं।

दासी
अनुराधा

१७ सितम्बर

आज उसका तीसरा पत्र मिला। वह कितनी भोली है। मुझे धोखा दे रही है कि वह बीमार नहीं है। पर मैं तो यही कहूँगा कि तुम बीमार हो या नहीं पर तुम नारी नहीं, देवी हो और तुम्हारा स्थान मेरा घर होना ही नहीं चाहिए था लेकिन किया ही क्या जा सकता है। विधि का विधान भी कितना अटल है।

जिस घर के लोग सदैव अपने सम्बन्धियों को देते आये हैं आज उसी घर की लक्ष्मियाँ दूसरों के सामने हाथ पसार रही है, कुल-गोत की लाज-रक्षा के लिए।

उस घर का प्रधान पुरुष मैं उनसे कैसे कह दूँ कि ऐसा कर मुझे लज्जित न करो। माँ सोचेगी मामाजी को पराया समझता है और वह सोचेगी मेरे घर को बेगाना समझते हैं। कष्ट तो उन्हें है ही, यह कष्ट और क्यों दूँ। पर उन्हें रोक भी कैसे सकता हूँ? एक सौ साठ सत्तर कमाने वाला बारह हजार पाऊँ भी तो कहाँ से? तो रुपयों के अभाव में अपनी बहन को फाँसी पर चढ़ा दूँ? यह कैसे हो सकता है।

अगर इस डायरी के पृष्ठ पर लिखे अज्ञात व्यक्ति का उपदेश मान लूँ तो जीवन भर मेरी बहन रोती भींखती रहेगी। उसे नर्क में झोंकूँ, अपने हाथ से, नहीं-नहीं मैं कंस नहीं बनूँगा। भगवान मुझे शक्ति दे।

ताते पैर पसारिये जाते लांबी सौर—अज्ञात

बनारस
१५ नवम्बर

नाथ,

सादर प्रणाम

इस समाचार से आप परिचित ही होंगे कि ३१ दिसम्बर को बबुईजी का तिलक जायेगा और सात जनवरी को उनकी शादी होगी। घर बार सभी सम्पन्न है। लड़के के पिता नहीं हैं। उसके चाचा जी उसे बहुत मानते हैं। इलाहाबाद में एम० ए० में पढ़ रहा है। घर में अकेला लड़का है। दो तीन किता मकान मिर्जापुर में है। पचास-साठ बीघा खेत भी है। उनके चाचा जी को वकालत चलती है। खानदानी आदमी हैं।

दो हजार रुपया तिलक चढ़ाना है। तीन हजार ऊपर के लिए चाहिए। पाँच हजार में काम चल जायेगा। यद्यपि बाबू जी ने आप को लिखा है कि रुपये कि व्यवस्था हो गई है तो भी रघुनाथ सेठ का यह कहना है कि डेढ़ रुपये सैकड़े माहवार पर मकान गिरवी रख कर रुपया दूँगा। पहले तो वे बताये नहीं। अब बोलते हैं कि बबुआ जी और आप को भी कागज लिखना पड़ेगा। बाबूजी नहीं चाहते कि वे आप पर यह प्रकट करें। मैंने भैया को चोरी से पत्र लिख दिया है, वे मुझे ले जाने के लिए एकाध दिन में आते ही होंगे।

आप कोई ऐसी व्यवस्था करें कि बाबूजी कि हिचक मिट जाय। मुन्ना का प्रणाम। सब आनन्द हैं।

दासी
अनुराधा

१७ नवम्बर

कर्ज लेकर साँप के बिल में हाथ डालना ही पड़ेगा। बचा कैसे जा सकता है?

चारा ही क्या है? चाहता तो हूँ अनुराधा को लिख दूँ कि जिस घर ने धनी-मानी और पूज्य समझ कर हमें कन्या तक का दान किया है उस घर में जाकर अपनी लघुता की कथरी के तागे मत उधेड़ो। पर उसे रोकूँ कैसे?

मेरी रक्षा के लिए ही तो वैसा कर रही है। आज उसका ऊँचा मस्तक अपने घर में ही हमारे कारण जमीन में मुर्दे की भांति गड़ने जा रहा है।

रोकने का अधिकार भी मुझे कहाँ है? मैंने उसके लिए किया ही क्या है जो उसे तार दे दूँ कि मत जाओ और जाओ भी तो हाथ मत पसारो। और तार भी दूँ तो कैसे? लोग जान जायेंगे कि अनुराधा मुझे पत्र भेजती थी। घर का राई-रत्ती चोरी-चोरी बताती थी? क्या समझेगी वह मुझे...।

उसकी इज्जत चली जायगी। और मैंने तो व्रत लिया है न, अग्नि को साक्षी दे कर उसकी इजत जीवन भर अपनी समझूँगा।

भगवान, इस संकट से उबारे, बस यही लिख सकता हूँ और......।

आदमी के लिए कर्ज ऐसा ही है
जैसा चिड़िया के अंडों के लिये साँप—अज्ञात

जौनपुर

नाथ, ...।

सादर प्रणाम,

ससुराल से नैहर चली आई, यह सूचना मैं आपको दे चुकी हूँ तथा आपकी प्यारी और मेरी ननद ने भी यह सूचना आपको भेज दी है। आई तो दिल में बड़ी उमंग लेकर, किन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, त्यों-त्यों उमंग की आग राख होती गयी।

सब मुझसे यही पूछते हैं कि आप कितना महीना कमाते हैं, उसमें से चोरी से मुझको कितना देते हैं, और कितना घर पर भेजते हैं। मेरी भाभी ने यह उपदेश भी दे दिया कि देखो जवानी की कमाई बचा कर रख लोगी तो बुढ़ापे में काम आयेगा। बचाया पैसा हारे-गाढ़े गृहस्थी में पारस बन जाता है।

यद्यपि मैं पहले से मोटी हो गयी हूँ तो भी माता जी की आँखें न जाने कैसी हैं, वह यही पूँछती हैं कि बिटिया तुम पीली क्यों पड़ गयी हो। बताइए भला, मुझे कोई कष्ट हो तो उनसे कहूँ। वे रह रह कर पूंछती हैं कि तुम्हारी सास तुम्हें तकलीफ तो नहीं देती। तुम्हारे ससुर तुम्हारे साथ बुरा सलूक तो नहीं करते ?

ये सब सवाल एक दो बार नहीं किए जाते, जहां एकान्त हुआ, घर का जो मिला, वही ऐसे निरर्थक प्रश्नों की झड़ी लगा देता है। पहले तो मैं शरमा जाती थी पर अब बेहया हो गयी हूँ और एक ही उत्तर बार-बार देती चली जाती हूँ।

मुहल्ले-टोले के लोग, पास-पड़ोस के लोग मिलने आते हैं। उनसे माता जी कहती हैं कि मेरी बिटिया रानी का सुख भोग रही है। बात तो वह बिलकुल ठीक ही कहती हैं। एक दिन माताजी से हमारे पट्टीदारी की मनका भाभी ने पूछा कि गौने के समय जब अनुराधा यहां से गयी थी तो उसका शरीर गहनों से छिला जा रहा था किन्तु अब गहने क्यों नहीं पहनती। माता जी ने तुरंत उत्तर दिया कि जिनको दिखाना होता है, वे

गहने पहनेते हैं। बाबू जी का नाम लेकर उन्होंने कहा कि वे लोग खान-दानी आदमी हैं। जैसे गहने तुम लोग प्रयोजनों पर पहनती हो वैसे तो उन्होंने शादी में यहाँ परजुनियों में बँटवा दिये थे। लेकिन पता नहीं क्यों बार-बार मुझसे अब एकांत में कहती हैं कि तुम गहने पहन कर क्यों नहीं आई। मुझे उत्तर देना तो उन्होंने ही सिखा दिया है। माँ का पाठ माँ को सहज ही पढ़ा देती हूँ।

ऐसी स्थिति में मुझमें यह साहस नहीं हो रहा है कि अपने भाई और पिता से यह कह दूँ कि मेरा पति गरीब है, मेरा श्वसुर निर्धन है, यदि आप लोग सहायता नहीं करेंगे तो मेरे ननद की शादी न हो सकेगी। कई बार मैंने साहस भी किया पर पता नहीं क्यों, कहते-कहते जबान रुक जाती है और मैं बात काट जाती हूँ। बायदा बाबूजी ने भेज दिया है। एक सप्ताह में ही बनारस चली जाऊँगी।

ऐसी स्थिति में जिस काम के लिए आई, वह न कर सकी। इसका मुझे बड़ा भारी खेद है किन्तु ऐसा लक्षण दीख रहा है कि विदाई में लगभग पाँच सात सौ का सामान और तीन चार सौ नगद रुपये और एक दो अंगूठी मिल जायेगी। इससे कुछ काम तो सरक जायेगा लेकिन जो चाहती थी वह न कर पाई।

हाँ, एक बात बता दूँ, वह यह कि सखी-सहेलियाँ जब मजाक में भी यह कहती हैं, कि राजा बङ्गाल गये हैं, देखो कहीं धोखा न हो जाय, तब सचमुच मेरा छोटा-सा कलेजा धक-धक कर उठता है। आप कुशल से हैं या नहीं, इधर जब से आई तब से यह भी पता न चल पाया। घर पर भेजी गई आपकी चिट्ठी चोरी से पढ़ने में जो मजा मिलता था, वह भी जाता रहा।

घर चलूँगी तो अपने आप सब पता चल जायेगा।

मुन्ना का प्रणाम।

दासी
अनुराधा

२२ दिसम्बर

केशव कहि न जाइ का कहिये ?
देखत तव रचना विचित्र अति, समुझि मनहिं मन रहिये ॥
सून्य भीति पर चित्र रङ्ग बहु, तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटै न, भरै भीति-दुख पाइय यहि तनु हेरे ॥
रविकर-नीर बसै अति दारुन, मकर रूप तेहि माहीं ।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगुल प्रबल करि मानै ।
'तुलसिदास' परिहरै तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥

० ० ०

रहिमन असुवा नयन ढरि,
जिय दुख प्रकट करेय ।
जाहि निसारो गेह ते,
कस न भेद कहि देय ॥

० ० ०

रहिमन वे नर मर चुके,
जो कहिं मांगन जाहिं ।
उनते पहिले वे मुए,
जिन मुख निकसत नाहिं ॥

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पद तल में—प्रसाद

"तीन लोक
मम पुरी सुहावन"

यह कलकत्ता है—एशिया की सबसे बड़ी नगरी। यह भारत-भूमि पर इन्द्रासन है और उन अभागों की जीवन-स्थली भी, जिनके लिए नर्क में भी जगह नहीं। यहाँ ऐसी-ऐसी सड़कें हैं, ऐसे-ऐसे उद्यान हैं, ऐसे ऐसे प्रासाद हैं, जिन्हें देख कर वही बात आगन्तुक को कहनी पड़ेगी जो कविवर नरोत्तमदास ने सुदामा-चरित में मथुरा के विषय में कही है—

दीठि चकचौंधि गई, देखत सुबर्न मई,
एकते सरस एक द्वारिका के भौन हैं।
पूछें बिन कोउ कहूँ काहू सो न करै बात,
देवता से बैठे सब साधि साधि मौन हैं।

अन्तर केवल इतना ही है कि वहाँ के जन नागर थे, यहाँ के आधुनिक सभ्य। उन राजप्रासादों की तरह यहाँ भवनों में कृष्ण नहीं रहते, लक्ष्मी के वाहन बसते हैं। सुदामा की ओर तो देखना दूर की बात है यदि उनके सगे-सम्बन्धी भी सुदामा की गति में आये तो इन घरों में रहने वाले, कल तक उनको कृष्ण कन्हैया कहने वाले देख कर भी अनदेखी कर देते हैं।

पर जो कुछ भी हो। इन महलों में बड़े आदमी रहते हैं। वे लोग इन्हें देवता समझते हैं जिन्हें एक वक्त भी भरपेट भोजन नहीं मिलता, पहनने के लिए वस्त्र नहीं मिलता, रहने के लिए आवास नहीं मिलता। ये सरकार, बाबूजी और भैया जी बोले जाते हैं। सेठ जी इनका प्रसिद्ध नाम है।

रंगीनी के लिए, ऐसी रंगीनी के लिए जो पैसे पर बिकती है, वे दिन भर अपना तन बेचते हैं, अपना मन बेचते हैं। धर्म तथा ईमान ऐसे शब्द हैं जिनका उपयोग ये कछुवे की पीठ की भाँति सदा करते रहते हैं। वे समय पड़ने पर खर को भी पिता जी बोल देते हैं और अपने पिता जी को भी खुमचा लगाने का नुसखा स्वप्न में बताना नहीं भूलते।

साँझ सकारे

उस नगरी का बड़ा नाम है। भारत की कुबेरपुरी जो ठहरी। हजारों मील चल कर गाँव-गाँव से लोग यहाँ आते हैं, अपनी गरीबी मिटाने के लिए। पर बेचारे न तो धनी हो पाते हैं न धनी होने की आशा को ही तिलाञ्जलि दे पाते हैं, न विप्र सुदामा की तरह अपने ग्राम में सतत वास करने की सुखद कामना रख पाते हैं।

पर इस नर्कमयी स्वर्गपुरी ने बहुत बड़ा हृदय पाया है। यह ऐसे लोगों को शरण दे, मृगजल के बन्धन में जीवन भर आश्रय देती है जिन्हें देख कर नर्क भी अपना दरवाजा बन्द कर लेता है। लोग समझते हैं यहाँ सोना बरसता है। पर ऐसा समझने वालों का रोना यहाँ दिन-रात चलता रहता है।

ऐसे ही समझदार पंडित कृष्णकान्त जी भी थे। उन्होंने केशर को कलकत्ते इसलिए भेजा था कि वह जूट मिल का चीफ मैकेनिक हो जायगा। बंगला, मोटर सभी कुछ उसके संकेत पर चलेंगे। कुछ दिनों के बाद वह इतना समर्थ हो जायगा कि उसकी स्वयं की मिल होगी। उस मिल में एक छोटा-सा मन्दिर होगा। उस मन्दिर के चारों ओर एक बड़ा-सा बागीचा होगा। जिसमें संसार के सर्वोत्तम पुष्प ऊषा की प्रथम मुस्कान के साथ ही सुरभि की भैरवी गायेंगे और वहाँ एक कुटिया होगी, छोटी सी, किन्तु उतनी ही दिव्य, उतनी ही पवित्र जितनी भरत ने अयोध्या में राम के वनवास के समय बनाई थी। वहाँ कृष्ण-कान्त अपनी पत्नी के साथ वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करेंगे। वे कर्ण की भाँति दान करेंगे। इस लोक से उनका केवल दान का ही सम्बन्ध नहीं रहेगा, एक और भी, वह यह कि अपने पुत्रों के सपूतों को वे गोद में बिठायेंगे। उन्हें पूजा और देवार्चन सिखायेंगे। उनमें संस्कार-प्रतिष्ठा करेंगे। यह कल्पना ऐसे लोगों की बात पर की गयी थी जो कृतित्व में सत्य और झूठ का अन्तर नहीं समझते। इस कल्पना का आधार जब इस नगरी में हावड़ा स्टेशन पर उतरा तो उसे अनुभव हुआ कि वास्तव में वह किसी ऐसे स्थान पर पहुँच गया जो उसे उसी प्रकार सभी आप-

दाओं से मुक्त कर देगा जिस प्रकार तुलसी को रामनाम का चिंतामणि बन्धन-मुक्त कर दिया करता था।

उसे रास्ते में भी तो नींद नहीं आई थी। वह सेठ जी के कर्मचारियों के साथ नहीं था। सेठ जी के बगल के डिब्बे में सेकेण्ड क्लास में बैठाया गया था। इतनी लम्बी यात्रा उसने जीवन में पहली बार की, यद्यपि इंटर की परीक्षा में उसने इस नगरी का वर्णन करते हुए इसका ही नहीं अपितु संसार का मानचित्र कापी पर हाथ से खींच दिया था। वह रास्ते भर, जहाँ कहीं भी मौका मिला, यही सोचता आ रहा था कि प्रत्येक युग का अगला प्रभात नयी रिद्धि-सिद्धि लेकर मेरे घर आयेगा। हावड़ा स्टेशन से बाहर निकलकर जब उसने हावड़ा के पुल की ऊँचाई देखी तो उसके मन ने चकाचौंध भरी वाणी में स्पष्ट कहा कि सेठ जी की जय हो, जिनकी कृपा के प्रसाद से ऐसी नगरी देखने का सौभाग्य मिल रहा है। स्टेशन से बाहर निकलते ही सेठ जी ब्यूक में बैठ गये और एक गाड़ी जो पुरानी तो नहीं थी किन्तु उसे नवीन भी नहीं कह सकते, उसपर केशर तथा अन्य लोग। रास्ते में उसने देखा ट्राम और आदमियों का रेला-पेला, मोटरों की जमवट, व्यस्तता का पलक गिरते उठते अभिनय, मोटर पर भी केवल व्यवसाय की बात, केवल काम की बात।

इस नयी दुनियाँ में अपनी कल्पनाओं को लिए मचलता-फिसलता केशर उसी प्रकार की एक गली में पहुँचा, जैसे बनारस की कोई सड़क हो। दरवाजे पर सेठ जी की मोटर खड़ी हो गयी।

दरवान ने दरवाजा खोला। सेठ जी उतरे। उतरते ही उन्होंने कहा—पंडित जी की व्यवस्था गद्दी में कर दो। केशर के पास एक टीन का बक्स था, जिसकी रँगाई तीन बार हो चुकी थी और अभी उसे रंगे गये ६, ७ महीने ही हुए थे। उस पर कुछ फूल बने थे, कुछ पंक्तियां। सुंदर समझकर केशर अपने साथ उसे ले आया था। उस बक्स में चिवड़ा था, ढुंढा था, तिलवा था, और केशर के दो कुर्त्ते, दो धोतियाँ, दो अंगोछियाँ; एक कोट और टोपी। एक बिस्तर उसके पास था जो काफी लम्बा चौड़ा था पर रज्जु-बंधन से सिमटा हुआ था।

मकान देखकर अपने बिस्तर की ही भाँति अपने में केशर सिमट गया और मोटर से बिस्तर और बक्स उठाने चला पर एकाएक नौकर ने उसे झपट कर उठा लिया। सेठ आगे-आगे केशर उनके पीछे पीछे। मकान के रंगीन आंगन में चलते समय मुज्जैक पर सीपी की चमक देख वह मन में सहमा किंतु रह रह कर प्रफुल्ल भी हुआ कि कितने बड़े मेरे भाग्य हैं!

गद्दी में दो मुनीम बैठे थे। एक दो वृद्ध भृत्त भी। उसके आधे हिस्से में अलग गद्दा लगा हुआ था। जहाँ केशर को रहने के लिए कहा गया। उस कमरे के बगल में ही लगभग दो फुट का एक जाली लगा बरामद था जिसमें कल, पाखाना, स्नान गृह था। सर्वत्र सफाई थी। वातावरण भी अत्यन्त शान्त था। केशर ने यह समझा था कि इस घर में सैकड़ों नौकर ऊपर नीचे दौड़ते होंगे किंतु उस कल्पना को वह साकार न देखकर जिज्ञासु बन गया किन्तु अपनी जिज्ञासा को वह प्रकट न कर पाया इसलिए कि उस कमरे में सभी अपरिचित थे।

जिस नौकर ने उसका सामना रखा था वह निश्चय ही कह गया था कि बाबूजी बाहर हम दरबान की बगलवाली कोठरी में बराबर रहेंगे किसी चीज की जरूरत हो तो बुला लीजिएगा। दोनों मुनीम अपने कार्यों में इस प्रकार व्यस्त थे कि उन्होंने केवल इतना ही पूछा—बाबू आ गये? उसके बाद उसी प्रकार अपने काम में लग गये जैसे कोल्हू के बैल।

केशर को पानी चाहिए था, कुल्ला करने के लिए, उसे स्नान करना और निपटना भी था क्योंकि जिस डिब्बे में वह बैठा था उस डिब्बे में ऐसा शौचालय था जिसमें कभी वह गया ही नहीं, यह समझ कर कि बड़े आदमियों के लिए विशेष प्रकार का ऐसा आराम देह शौचालय होता है जिसे मैं ठीक ढंग से प्रयोग में नहीं ला सकता। संभवतः किसी यंत्र के बल पर यह चलता है पर वहाँ जितनी भी कील काँटी वह ऐंठ सकता था उसे ऐंठने का प्रयत्न कर वह हार मान बैठा था।

वह तो यह सोचता था कि जब मैं यहाँ आया हूँ तो सेठ जी मेरे साथ रहेंगे। 'किसी चीज की आवश्यकता तो नहीं है', हर दो-दो मिनट पर सेठ जी उससे पूछते रहेंगे। उसे दो घंटे बीत गये पर उससे कोई यह

भी पूछने नहीं आया कि पानी पीओगे। लेकिन फिर भी वह अपने मन में सहमता ही रहा कि शायद यहाँ के बड़े लोगों के यहाँ यही तरीका ही हो, क्योंकि पढ़ते-लिखते समय उसने जिन लोगों से साथ सोहबत किया था भले ही वह उनसे अच्छा वस्त्र न पहनता रहा हो किन्तु उसका घर-द्वार सबसे अच्छा था और बिना बुलाये वह किसी के घर भी तो नहीं जाता था। उसकी इस स्थिति का वर्णन यदि तुलसीदास करते तो कुछ इसी प्रकार की बात कहते "जिमि दशनन महँ जीभ बिचारी"।

उसने थोड़ा साहस बटोरा और मुनीमजी से पूछा कि चाचाजी कहाँ हैं ? मुनीमजी ने बही से बिना ध्यान हटाये ही जाँचा, 'कौन! चाचा जी ? उसने सेठजी का नाम लेकर–चाचाजी के विशेषण के साथ रोबपूर्वक कहा।

मुनीमजी का तत्काल उत्तर था 'शेयर मार्केट।' पुनः मुनीमजी मौन। साहस कर वह बाहर आया, दरवाजे पर गया। नौकर बीड़ी दगा कर पी रहा था। नौकर ने देखते ही कहा—भैयाजी कोई काम। बाबूजी आफिस गये। बोलते गये कि आपकी सब व्यवस्था कर दूँ। पंडित से बोल दिया है "वह आपके लिए चाय ला रहा है।" केशर ने कहा "मैं पहले निपटना-नहाना चाहता हूँ। हमें स्थान बता दो और किसी अलग कमरे में मेरी व्यवस्था कर दो।"

नौकर ने उत्तर दिया––"अलग कमरा तो कोई है नहीं, बाबूजी। बरामदे में सब व्यवस्था है, चलिए दिखा दूँ।" केशर को राहत मिली। वह सोचने लगा, इतने बड़े मकान में अलग कमरा नहीं। चार मंजिल का मकान, सेठ जी के घर चार ही आदमी तो हैं, क्या करते हैं ?

विधिवत् स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर केशर गद्दी में आकर बैठा था कि नौकर केशर को भोजन करने के लिये दूसरी मंजिल पर ले गया। यद्यपि उसे खान-पान का वहाँ किसी प्रकार कष्ट न हुआ पर दो दिनों तक उसकी सेठ जी से भेंट न हुई। वहाँ और उसका था ही कौन।

केशर की कल्पना लगातार मर्म के ठेस से घायल होती जिसे वह विश्वास की तरी से रह रह कर चेतन बनाता। इतनी बड़ी नगरी जहाँ

पचासों लाख व्यक्ति रहते हैं एक व्यक्ति का मन भी नहीं बहला सकती, यह उसके लिए दुख की बात थी। यद्यपि जीवन भर बराबर पोथियों में वह पढ़ता रहा कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है किन्तु जीवन में पहली बार इसका अनुभव उसे कलकत्ते में हुआ।

कभी वह सोचता सेठ जी इतने अधिक कामों में व्यस्त हैं कि उन्हें एक क्षण का भी अवसर नहीं मिल पा रहा है कि वे मुझसे मिलें। लेकिन उसका मन बार-बार यह कहता कि उन्हें तो उससे अवश्य मिलना चाहिए था, रात में ११ बजे ही सही। उसी घर में तो वह भी रहता है, क्योंकि सेठ जी की बातों ने उसके मन पर ऐसा विश्वास जमा दिया था कि वह उनका एक अविच्छेद अंग है।

और भी तो है, जिसे उसने देखा नहीं था, किन्तु सुना था और वह भी बाबू जी के मुख से, जो बहुत संकट पड़ने पर ही झूठ बोलते हैं। रह रह कर पं० कृष्णकांत उसके सामने खड़े हो जाते और कहते कि सेठ जी पर हमारा बहुत बड़ा एहसान है। वे उसके बोझ से इतने अधिक दबे रहते हैं कि उनका सिर कभी ऊपर उठता ही नहीं। पिता का कथन चलचित्र की भाँति उसके मानस पट पर नाचने लगता।

लगभग तीस वर्ष पहले की सुनी बात—"उसके हृदय के रंग मंच पर अभिनेता के रूप में आज के सेठ जी आ जाते हैं। लम्बी कोट, काम की हुई ऊनी टोपी, मरसराईज्ड धोती, स्वेट लेदर की चप्पल पहने हुए एक गोले मुंह वाला क्लीन सेव का ४५ वर्षीय मोटा चौड़ा व्यक्ति जिसकी दोनों कनपटियों के पास के बाल खिजाबी रंग के लगते हैं, काशी में एक मकान में तीसरे मंजिल पर रसोई घर में बैठा है। उसके सामने चांदी की थाली है, दो तीन कटोरियाँ है; चूल्हे की आग जल रही है। एक बीस वर्षीय विधवा ब्राह्मणी परौंठा बना कर दे रही है। सेठ जी परौंठा की तारीफ करते करते परौंठा बनाने वाली की तारीफ करने लगते हैं।

नमक और मिर्च पूरी तरह सेठ जी मिला भी न पाये थे कि एक औरत जो भारत की विधवा है—कपिला गाय से भी निरीह और वज्र से भी कठोर–हाथ में बेलन उठाती है। उसके हाथ काँप रहे हैं, उसके अधर

फड़क रहे हैं; उसके पीले चेहरे पर रक्त दौड़ रहा है और दूसरे क्षण हवा के झोंके की भाँति उसके हाथ सेठ जी की खोपड़ी को चूमते हैं। सेठ जी 'यह क्या ?' कह भी न पाये कि वह बिजली की तरह एक, दो तीन। पर ऐसा दाग उनके माथे पर लगा''' जिसकी निशानी जीवन भर के लिये है। जिसे लोग यह समझते हैं कि बचपन की चोट है जो खेलते समय सेठ जी को लग गयी होगी क्योंकि ऐसा ही सेठ जी की ओर से प्रचारित और प्रसारित भी है।

पाप की प्रतिक्रिया कभी कभी सर पर पिशाच की भाँति सवार हो जाती है। सेठ जी चोट खाकर भी अधमरे साँप से हैं लेकिन उनकी प्रतिहिंसा की भावना लोक लाज की धार पर बराबर मुड़ रही है। सेठ जी ने अपनी ओर से ऐसा कोई भी प्रयत्न नहीं उठा रखे जो उस विधवा युवती को बदनाम न करने वाले हों, उसकी रोटी और रोजी चली गयी, उसका घर से बाहर निकलना बन्द। पर सेठ जी मोटे न हो सके। उनके मन का सर्प रह रहकर उन्हीं को डस रहा था। स्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि वे बीमार हुए। डाक्टरों की चिकित्सा आरम्भ हुई। एकाएक सीढ़ी से उनके पाँव फिसल पड़े। वे चौबीस सीढ़ी नीचे चौक में गिरे। तलवार की धार की तरह काशी की खड़ी सीढ़ियों ने अपनी प्यास बुझाई। आँगन का मुख रक्त की धारा पी लाल हुआ। धरती ने धर्म के लिए बदला लिया। सेठजी अस्पताल में पड़े। उन्हें खून चाहिये। सीढ़ी से फिसले हुए व्यक्ति के लिए अस्पताल में बीसों आदमियों की व्यवस्था थी, उसकी देख-भाल के लिए। किन्तु केशर के पिता वहाँ दिनरात जमे रहते। इसलिये नहीं कि सेठ जी करोड़पति के लड़के हैं अपितु इसलिये कि वह उनके बालसखा थे। साथ ही सेठ जी के पिता केशर के पितामह के अनन्य भक्त भी।

मानसिक बिमारी में औषधि का प्रयोग बिमार के मन को और उद्विग्न भर देता है क्योंकि एकांत मस्तिष्क अशांति के घन का गर्जन-तर्जन दिनोत्तर बढ़ता जाता है। सेठ जी का रोग तभी दूर हो सकता जब उस निरीह से अपमान का बदला ले लें। वे स्वयं तो कुछ कर नहीं सकते थे

लेकिन पैसा जो कुछ करा सकता है, वे वह सब कराने से आज नहीं आये।

द्रौपदी के बाल खींचे गए, चीर खींचा गया पर उसे भीम की गदा पर अर्जुन के बाण पर भीष्म के सत्य-संधान पर तथा नकुल-सहदेव के अभिमान पर विश्वास था, पर इधर कोई भी नहीं। निर्बल के बल राम भी सो गए। वह इतनी बदनाम कर दी गयी कि लोगों के सम्मुख मुख दिखाना उसके लिए असंभव हो गया, काम-धंधा उसका जाता रहा। वह बेकार और लाचार थी पर सेठ जी को इससे संतोष नहीं हुआ।

एक दिन उसके हाथ की कानी अंगुली भी किसी नर पिचाश के प्रहार से आत्म-रक्षा के बहाने उसका संग-साथ छोड़ मिट्टी में मिल गयी। आततायी पकड़ा गया। सेठ जी का नाम उसके साथ ही संयुक्त होनेवाला था। जब बाबू जी को यह मालूम हुआ तो सेठ जी रोने लगे, गिड़गिड़ाने लगे, किसी तरह मुझे बचाइए। यह दुष्कांड पूर्ण षड्यंत्र बाबू जी से छिपाकर किया गया था। अन्ततोगत्वा सेठ की रक्षा बाबू जी के गिड़-गिड़ाने, रिरियाने पर उस विधवा द्वारा बाबू जी के अवैध प्रयत्न से हुई। सेठ जी को केवल उ 'मां' कह कर संबोधित करना पड़ा। सेठ जी उसे रुपया देना चाहते थे पर उसने उसे ठुकरा दिया और उसके आगे उसका क्या हुआ होगा, राम जानें।"

लेकिन उस ऋण से उऋण होना तो सेठ जी के लिए दूर की बात थी, केशर को अपने घर लाकर भी वह उससे नहीं मिल रहे हैं। क्यों? यह केशर की समझ में न आता था। वह सेठ जी की लाचारी समझ नहीं पाता था।

बार-बार उससे उनका मन यह भी कहता कि सेठ जी लाचार हैं तो क्या हुआ? सेठानी तो मेरी चाची हैं। उनको तो मुझ से अवश्य मिलना चाहिए तथा मेरे घर का हाल-चाल पूछना चाहिए। मैं यहां क्यों आया हूँ, उन्हें सोचना, समझना और जानना चाहिए। और यदि चाची जी भी व्यस्त हैं, तो उनकी दोनों कन्याएँ जो उसकी बहनों के समान हैं, उनके सर पर कार्य का क्या बोझ है, जो वे भी उससे नहीं मिल पा रहीं है, यह वह नहीं समझ पाता था।

इस उधेड़ बुन में वह व्यस्त था ही कि एकाएक पाँच बजे के लगभग सेठ जी ने ऊपर से उसे बुला भेजा और जाने पर उससे पूछा कि भाई इधर हम लोग बहुत काम में फँस गये, इसलिए मिल न सके। बुरा मत मानना। मैंने तुम्हारे ट्रेनिंग की व्यवस्था मिल में कर दी है। वहीं एक क्वार्टर भी दिला दिया है। बासे में तुम्हारे भोजन के लिए प्रबन्ध कर दिया है, हाथ खर्च का भी।

केशर ने सेठ जी से अपनी मूक कृतज्ञता प्रकट की और सेठ जी ने उससे कहा, "केशर, तुम तैयार हो जाओ, मेरे साथ चलो, तुम्हें आज कलकत्ता घुमा कर दिखा दूँ।"

केशर नीचे आकर तैयार हुआ। सेठ जी ने उसे मोटर से तीस-पैंतीस मील घुमा दि... और घर लौट आये। केशर ने सदा दीपावली मनाने वाली इस नगरी को देख पुनः ऐसे सपने बसाये जैसे उसने ट्रेन में बसाये थे।

उस रात उसे बड़ी सुन्दर नींद आई और दूसरे दिन ग्यारह बजे सेठ जी के साथ ही वह भी मिल चला गया। सेठ जी ने ससम्मान उसकी व्यवस्था कर दी। तब से वह यंत्रों की गड़गड़ाहट में एकलव्य की भाँति शिक्षा ग्रहण करने लगा। बासे से भोजन और पचीस रुपया माहवार उसे मिलने लगा। वह सेठ जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए कई बार उनके घर गया पर भेंट न हो सकने पर उसने अपना यही नियम बना लिया था कि हफ्ते में एक बार उनसे कार्यालय में मिल लेता और सेठ जी उससे केवल यही पूछते कोई तकलीफ तो नहीं है। वह एक ही उत्तर भी दे देता, बिलकुल नहीं।

× × × ×

आज उन्हीं सेठ जी के यहाँ उसे पुनः जाना है जिनके यहाँ वह बराबर कहता था कि कोई तकलीफ नहीं। पर रह न सका और उसे वहाँ काम छोड़ देना पड़ा। जाना इसलिए नहीं था कि वह वहाँ जाना चाहता था अपितु पिता जी की आज्ञा थी कि सेठ जी को अवश्य नमंत्रत करे

क्योंकि सेठ जी का उनका सम्बन्ध बड़ा पुराना है। केशर रविवार के दिन समय निकाल तड़के ही सेठ जी के घर पहुँचा।

सेठ जी उसे ऊपर बुलवा कर कहने लगे, "केशर तुमने बड़ा गलत काम किया। यदि तुम्हें मेरे यहाँ तकलीफ थी तो मुझसे कहना चाहिये था। बिना मुझसे कहे तुम चले क्यों गये? कृष्णकांत क्या समझेंगे। तुमने तो हमारा सिर नीचा कर दिया। घर की बात थी मैं तो चाहता था कि तुमको ऐसा बना दूँ कि चपरासी से लेकर मालिक तक का काम करो। लेकिन कर ही क्या सकता हूं। हाँ, यह पता जरूर चला था कि तुम्हें कहीं अच्छी नौकरी मिल गयी है। वहाँ अच्छी तरह तो हो न।"

"बहुत अच्छी तरह, चाचा जी।"

'कभी-कभी तो घर आना ही चाहिये। तुम तो गूलर के फूल हो गये।'

"ऐसी बात तो नहीं, चाचा जी। कई बार आना चाहता था किन्तु सोचा, आप के काम में हर्ज होगा।"

"तुम्हारी मति मारी गयी है। तुम्हारे आने से मेरे काम का हर्ज हो सकता है? क्या लड़कपन की बात करते हो। हाँ तो बताओ आज कैसे चले?"

जेब से निकाल कर केशर ने अपने पिता का पत्र अपने चाचा के हाथ में रख दिया। सेठ जी उसे पढ़ कर बोले:—

"भाई, बड़े खुशी की बात है। किशन की अन्तिम लड़की है। मैंने बहुत दिनों से सोच रखा था कि शादी में जरूर चलेंगे किन्तु उसी दिन तो बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स की मीटिंग है और बहुत से झमेले की चीजें एजेण्डे पर हैं। चाह कर भी न आ सकूँगा। लेकिन तुम यहीं ठहरो, अभी आता हूँ"—सेठ जी वहाँ से चले गये।

उस कमरे में गद्दे पर एक कोने में केशर बैठा था तथा दूसरी ओर दो जूट के दलाल। दो मिनट भी नहीं लगे कि सेठ जी लौट आये। उन्होंने सौ का एक नोट केशर की ओर बढ़ाया और कहा "बेटा; मेरी

ओर से तुम क्षमा माँग लेना, मैं न आ सकूँगा; मेरी ओर से शान्ति को यह दे देना।"

"रुपये की क्या जरूरत, चाचा जी?"

"बेवकूफ कहीं के, यह मैं कोई तुम्हें दे रहा हूँ? तुम घर जाओगे ही, शान्ति मेरी बेटी है, उसे दे देना।"

यद्यपि केशर रुपया नहीं लेना चाहता था तो भी न जाने क्यों उसके हाथ सेठ जी की ओर बढ़ गये। उसने रुपया ले लिया। उठ कर चलने लगा और बोला, 'चाचा जी प्रणाम'।

सेठ जी ने कहा'—देखो संभाल कर रखना, कहीं गिर न जाय।' पर वह कुछ न बोला। उस एकान्त-शान्त भवन से वह धीरे से चला आया।

वह सड़क पर जा तो अकेले रहा था पर साथ में भावों के विशृंखल अतीत की प्रिय कल्पना भी चल रही थी।

काशी के वातावरण में वह पल-पोस कर बड़ा हुआ, परन्तु परीस्थिति से उसका सुख न देखा गया। बचपन की नगरी जवानी में उसे छोड़नी पड़ी पर कल्पना उस लोक से उसका नाता जोड़ उसके हृदय को शांति प्रदान करने लगी। काटन स्ट्रीट से कलाकार स्ट्रीट की ओर वह बढ़ रहा था। वहाँ के सत्यनारायण मंदिर से उसे घण्टों की ध्वनि सुन पड़ी। उसके सामने काशी के सत्यनारायण का मंदिर खड़ा हो गया।

"यह वही सड़क है न—जिस पर कभी भारतेन्दु, कभी प्रसाद, कभी प्रेमचन्द न जाने कितने दाता और दरिद्र आये और गये। मैं भी कितनी बार आया और गया पर वहाँ कोई न रह गया। आज भी उस मंदिर में भाँग छानकर अलमस्तों की अल्हड़ मंडली उसी प्रकार श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेवा, रघुपति राघव राजा राम; अरी मैं तो प्रेम दीवानी, गाता हुआ इस लोक की नश्वरता की खिल्ली उड़ाता होगा और ब्रह्मानन्द को धरती पर उतार कर इस लोक को स्वर्ग में बदल देता होगा। पर एक अभागा मैं जो इन भीड़ भरी कलकत्ते की सड़कों पर भी एकान्त हूँ। यदि कोई मोटर मुझे रौंद दे तो संभवतः पह-

चानने वाला कोई न मिले और एक काशी जहाँ शाम को चौक में सबके नेह-नाते मूर्तरूप में एक दूसरे को गले लगाते हैं।"

कल्पना अपना काम कर रही थी और चरण पथ पर थे। उस दिन उसका मन न माना, वह चलता ही रहा। वह कहाँ-कहाँ गया, उसे स्मरण नहीं, किन्तु दोपहर में विक्टोरिया मेमोरियल के सामने जाकर एक चौतरे पर बैठ गया। उसने देखा, पत्थर की महिमा धरती पर अपना शृंगार कर किसी मिट्टी में मिल जानेवाली की कीर्ति-गाथा आकाश तक पहुँचा रही है। उसकी कीर्तिपताका कितनी ऊँची है जिसके राज्य में करोड़ों की हत्या की गयी और जिसके राज का आज तक फास न हो सका। पर मेरे जैसों का बोझ धरती; को भी भारी लगता है। उसका हृदय मान बैठा था कि गरीबी संसार के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है गरीबों के लिए न तो कोई धर्म है न तो कोई ईमान है और न कोई कर्म ही।

उसके सामने इसी चिंता में शांति आकर खड़ी हो गयी। शांति को वह कन्यादान देने जा रहा है, भगनी के भाग्य का निपटारा होने वाला है। उसका दाय वह चुकाना चाहता है, चुकाने के लिए हाथ बढ़ाता है। बंधी हुई मुट्ठी सिर पर जाकर खाली खुल जाती है और शांति कहती है कि भैया कलकत्ते से आओगे तो मेरे लिए क्या लाओगे। आज, उसके लिए सदा के लिए बन कर केशर को भकभोरता है और रह रह कर कहता है कि गरीब के लिए बहनों का विधान कर विधाता उसी प्रकार क्रीड़ा करता है जिस प्रकार लोग अंधाहत जुगुनू को पकड़ कर क्रीड़ा किया करते हैं।

वह सोचता, जुगनू तो एकांत में चमक कर चिर शांत हो जाता है, भले ही विपत्ति का पहाड़ उसके पंखों पर रख दिया जाय। पर आदमी जिसका निर्माण ही योग से होता है, एकांत-क्लान्त हो मृत्यु की गोद में यदि सिर धरकर शीतलता प्राप्त करना भी चाहें तो क्या वह वैसा कर सकता है? जुगनुओं की चमक की समाप्ति क्रीड़ा के विनोद की चरम सीमा है और आदमी के लिए वही विषाद की, अधर्म और पाप की अग्नि-रेखा है। सम्बन्ध के बन्धन की मर्यादा का भंग करना और उनके सम्बन्ध सूत्रों को तोड़ना जो इस धरती पर व्यक्ति के निर्माता और विधाता रहे हैं, भले

ही कच्चा धागा हो, पर प्रयोग में वज्र भी उसकी कठोरता देख एकबार अवश्य अपनी शक्ति की सीमा पहचान लेता है। केशर ऐसे ही कच्चे धागों में बंधा मर-मर कर जी रहा था।

इस उधेड़-बुन में उसका मूल्यवान समय सोये व्यक्ति की चालू घड़ी बन गया। इस अवड़ी में कर्त्तव्य की चेतना उसे हाँक लगाकर झकझोरने लगी। थके को जगाना भले ही पाप कर्म हो, पर चेतना का यह स्वर उसे उतना ही प्रिय एवं मधुर लगा जितना श्रीओंकार नाथ ठाकुर द्वारा गायी गयी भैरवी किसी भारतीय रसिक को लग सकती है। उसको कम्पनी के मैनेजर ने उसे बुलाया था। समय हो गया था, वह भूल ही गया था कि उसे वहाँ जाना भी है।

जाना इसलिए नहीं है कि वह वहाँ जाना चाहता था अपितु उस जाने में मन की आशा का सुहाग था। उसने मैनेजर साहब से अग्रिम के लिए प्रार्थना कर रखी थी। उसके सामने कार्यालय में कुर्सी पर बैठा मैनेजर पुनः सत्य की भांति स्पष्ट दीखने लगा :—

"वह न किसी से कुछ बोल रहा है, न किसी की ओर देख रहा है। जो उसके पास जा भी रहे हैं, उनसे वह बिना उनकी ओर देखे केवल काम की बात कह देता है और वही सुन भी लेता है। एक दो वाक्य से अधिक का प्रयोग वह न तो स्वयं करता, न तो कार्यालय में किसी को साहस ही है कि उससे अधिक वाक्यों का प्रयोग कर सके। घड़ी ४॥ बजा चुकी है। एक कर्मचारी जाता है, उदास मन, खड़ा, साहस बटोर कर प्रार्थना पत्र रखते हुए कहता है, पच्चीस रुपया अग्रिम। वह कैलेण्डर की ओर देखता है और बोलता है आज १५ नहीं है। आप भूल कर गए, १५ को आइएगा।

केशर के पाँव भी उसकी ओर बढ़ते हैं पर साहस उसे पीछे ढकेल देता है। फिर भी स्वार्थ उसे चुम्बक की भाँति खींचकर मैनेजर के टेबुल के सामने ला खड़ा करता है। केशर के अन्तर से स्वर फूटता है पर कंठ पर आकर रुक जाता है। वहाँ से वह हटना ही चाहता है...

'काम ?—'

"बहन की शादी है, एडवान्स..."

वातावरण मौन, केशर की आँखें नम।

मैनेजर केशर की ओर देख कर कहता है - "रविवार को दो बजे घर पर मिलिये"।

घड़ी पाँच बजाती है, वह उठ कर चलने लगता है। केशर वहीं खड़ा।

और आज रविवार है, १॥ बज चुके हैं, वहाँ से सर आशुतोष रोड आध घंटे का रास्ता। केशर चल पड़ा। जब मैनेजर के मकान पर पहुँचा तो घड़ी ठीक दो बजा रही थी। अपनी बैठक में वह केशर की प्रतीक्षा कर रहा था। जाते ही वह उठ कर खड़ा हो गया और केशर से बोला -- "बैठ जाओ।'

केशर को साहस न हुआ। उसने पुनः कहा, "संकोच की बात नहीं, यह आफिस नहीं है, केशर, मेरा घर है। यहाँ मैं मैनेजर नहीं, तुम्हारा मित्र हूँ।''

केशर सामने की कुर्सी पर सहमता हुआ बैठ गया। उसका मन भीतर ही भीतर भावनाओं के घात-प्रतिघात का अखाड़ा बन चुका था। फिर भी उस अन्तर्दृश्य को अदृश्य कर वह कहने लगा—"आप से मैंने जो प्रार्थना की थी, उसी के लिए आप ने घर पर बुलाया था।"

'कितने रुपये तुम्हें चाहिए।'

'एक महीने की तनख्वाह।'

'बस, काम चल जायेगा ?'

"जी, काम नहीं चल सकता, पर इससे अधिक माँग भी कैसे सकता हूँ, नयी नौकरी है और छुट्टी भी तो चाहिये।"

'कितने से काम चल सकता है ?

"जी, तिलक तो घर वालों नें चढ़ा दिया है, अब शादी का सब खर्च मुझ पर है।"

"कितना तिलक चढ़ाया घर वालों ने।''

"जी, दो हजार रुपये।"

'फिर शादी में भी एक हजार तो खर्च होगा ही, कहाँ से पाओगे।''

"जी, ५००) अगर कलकत्ते से ले जाऊँ तो बाकी प्रबन्ध हो जायेगा।"

"बैठो, अभी आता हूँ।' कहकर मैनेजर साहब भीतर गए। वहाँ लगभग आध घण्टा उन्हें लग गया। इस बीच एक आदमी आकर एक तश्तरी में नाश्ता, तथा एक केटली में चाय और चायपात्र रख गया।

केशर रह-रहकर सोचता कि मैनेजर ने मेरे किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, वह एडवान्स देगा या नहीं? या योंही मुझे बुलाकर परेशान तो नहीं कर रहा है। यद्यपि उसे भूख लगी थी तो भी जब जलपान पर उसकी दृष्टि जाती, उसे साहस नहीं होता था कि नाश्ते से पेट की आग को वह सान्त्वना दे सके। उसी समय एक आवाज उसे भीतर के कमरे में सुन पड़ी, देववाणी की तरह;

"बड़ा ईमानदार और कुल-शील वाला आदमी है, बेचारा ऐसा गरीब है जिसे दुनियाँ धनी समझती है, जात-बिरादरी में सम्मान है, मेरे पास होता तो इसकी शादी का पूरा खर्च दे देता।" इसके पश्चात् ही एकाएक कुछ धड़धड़ाहट की आवाज सुनायी पड़ी और तत्काल मैनेजर साहब आकर अपने स्थान पर आसीन हुए।

'केशर, तुमने जलपान क्यों नहीं किया?'

'जी, आप···।'

'चाय ठण्ढी कर दी, बड़े मूर्ख हो। जलपान करो।'

'जी, चाय नहीं पीता।'

'पानी, आजायेगा।'

केशर जलपान करने लगा पर इस जलपान से प्रिय उसे प्रतीक्षा थी, मैनेजर साहब के निर्णय की।

"केशर, तुम्हारे घर पर शादी है, और तुमने मुझे निमन्त्रण नहीं दिया।"

केशर थोड़ी देर चुप रहा। पुनः—"मैनेजर साहब, आप चलेंगे मेरे घर, मेरा बड़ा भाग्य होगा। भय के मारे···।"

मुस्कुराते हुए मैनेजर ने कहा "मूर्ख कहीं के।"

तब तक चमड़े की एक पेटी लेकर नौकर आया। उस पेटी में ताली लगी थी। मैनेजर ने पेटी खोली।

"देखो केशर, इसमें एक श्रृङ्गार दान है, एक साड़ी तुम्हारी बहन के लिये।" थोड़ी देर वह चुप रहा, फिर उसने अपनी अँगूठी उतारी और कहने लगा—"इस पर बाजार में पालिश करा लेना और कन्यादान के समय मेरी ओर से।" फिर थोड़ी देर वह मौन रहा। बनियाइन की जेब में उसने हाथ डाला, और हाथ बाहर निकालते हुए कहा—"ये पाँच सौ रुपये हैं। कम्पनी अग्रिम नहीं देती, नियम है। हाँ देखो, कल आफिस में अर्जी दे देना, छुट्टी मंजूर हो जायेगी।"

यह कहते हुए सब कुछ पेटी में उसने बन्द कर दिया और ताली केशर की और बढ़ाने लगा। उस समय मैनेजर की पलकें भीगी थी और उसके स्वर में कम्पन था।

"जी, यह आप क्या कर रहे हैं?" केशर ने काँपते हुए कहा। तब तक पण्डित नन्हकू तिवारी भी अयाचित कमरे में आ गए। दोनों ने उन्हें नमस्कार किया। मैनेजर के हाथ से ताली जमीन पर लड़खड़ाकर गिर पड़ी।

"तिवारी जी, बैठिए अभी आया"—कहते हुए मैनेजर साहब भीतर चले गए।

"क्यों केशर, अच्छी तरह हो न। कृष्णकान्त का निमन्त्रण मिल चुका है। भाई, मैं न जा सकूँगा। अपने बाबूजी से क्षमा माँग लेना। काम-धाम ठीक से चल रहा है, न।"

—"जी, आप लोगों का आशीर्वाद है। परसों घर जा रहा हूँ। मैनेजर साहब बड़े अच्छे आदमी हैं।"

—"लोग तो इन्हें पत्थर समझते हैं।"—मुसकराते हुए तिवारी जी बोले।

—"समझते होंगे पर मेरे लिए तो ये···।" वाक्य केशर पूरा भी न कर पाया था कि तिवारी जी बीच ही में बोल उठे:—

"तुम इनको नहीं जानते। ये भी गोरखपुर के ही हैं। तुम्हारे पिताजी को अच्छी तरह जानते हैं।"

"यह तो मुझे नहीं मालूम था, चाचाजी।"

"तुम्हारे पिता जी की शादी पहले इनके यहाँ ही ठीक हुई थी। बरक्षा भी चढ़ गया था। दो महीने बाद तिलक की तिथि थी। बीच में ही इनकी बहन ने सदा के लिए इनका साथ छोड़ दिया। गाँव में ताऊन आया था। ये बनारस में पढ़ते थे। एक मात्र बहन थी। इन्होंने ही शादी ठीक की थी। इन्हें बड़ा दुख हुआ। इसके पश्चात् घर इन्हें काटने दौड़ता और ये कलकत्ते चले आये। लगभग तीस वर्ष हो गए, कोई काम-धन्धा पड़ता है तो मुश्किल से एक दो रोज के लिए घर जाते हैं। बेटा, वह चोट, इनको इतनी गहरी लगी कि आज भी उसकी चर्चा करके रो पड़ते हैं। देखो, सामने जो चित्र टँगा है, उनकी बहन का ही है और उसी के लिए बनवायी हुई उस समय की एक मात्र अँगूठी आज भी पहनते हैं।"

एक टक केशर उस सौम्य-पवित्र चित्र की ओर देखने लगा। उसी बीच मैनेजर साहब भी कमरे में आ गए।

उन्होंने आते ही कहा—"केशर, ताली उठाओ।"

केशर ने ताली उठा ली।

"सम्हाल कर जेब में रखो।"

केशर सकुचाया।

"देखो, सम्हाल कर ले जाना। कहीं खोए नहीं। जहाँ के लिए दिया है, वहाँ पहुँच जाना चाहिए, अब तुम जा सकते हो।"—

वह थोड़ी देर रुका, "अंगूठी..."

बीच में ही-"हाँ, हाँ, जाओ, पालिस करा लेना।"

मैनेजर के कथन में ममता की दृढ़ता और कर्त्तव्य का रूखापन था। केशर को साहस न हुआ कि आगे एक शब्द बोल सके। यहाँ तक कि वह मैनेजर साहब और तिवारी जी को नमस्कार करना भी भूल गया।

बाहर निकला। वह सब कुछ समझ कर भी कुछ समझ न पाता था। एकाएक उसने सोचा, साथ खतरा है, पैदल जाना ठीक नहीं।

टैक्सीवाले को इशारा किया, बैठ कर मुहल्ले का नाम बताया। पहली बार अपने पैसे से वह कलकत्ते में टैक्सी पर बैठा।

× × ×

आस्था और विश्वासपूर्वक ईश्वर की महिमा सराहता केशर कार्यालय से छुट्टी ले बाजार में आया। आया तो था वह अपनी विदा होने वाली बहन के लिए सामान खरीदने, अपने मुन्ने की माँ की चिर अभिलषित वस्तुओं का सौदा करने, और घर के प्रत्येक प्राणी की इज्जत ढकने के लिए वस्त्र आदि की व्यवस्था करने पर रह रह कर सोचता, शायद घर पर लोगों ने खरीद लिया हो, शादी का घर है, पैसा रहेगा तो काम आ जायेगा। वह साहस कर कपड़े की एक दूकान में घुसा।

वहाँ और कुछ तो वह न खरीद सका केवल अपने अनुज, मुन्ने तथा स्त्री के लिए एक-एक वस्त्र खरीदा, वह भी देखने में सुन्दर, दाम में कम। उसे आज अपने घर जाना था, वर्षों के स्नेह-सम्बन्ध की सूखी बेल को वह सावन की भाँति हरी देखने लगा था। वह स्मृतियों का सेतु-बन्ध बना रहा था। यदि कोई उसे ऐसा साधन मिलता कि आँख मुँदते ही वह उसे घर पहुँचा देता तो प्राण भी संकट में डाल कर वह उसे स्वीकार कर लेता पर पैसा नहीं लगना चाहिये था, उसकी बहन की शादी जो थी।

रेलगाड़ी से वह काशी चला। रास्ते भर स्मृति की डोर उसकी पलक को खींचे कल्पना के आकाश में भावना की पतंग उड़ा रही थी। नींद को साहस न हुआ कि उसे छेड़े।

भोर में गाड़ी मालवीय पुल पर पहुँची। तारोंवाली चाँदनी की बारीक बनारसी ओढ़नी ओढ़े काशी छाया-चित्र सी सो रही थी। धनुष के आकार में पड़े व्यूहमय घाट और गंगा की झलमलाती स्वर्णिम लहरियाँ वायु से उलझती हुई अंगड़ाई लेकर प्रभात को बुला रहीं थीं! घड़ी-घंटों की धुन में रेल भी भैरवी गा कर माँ की नींद को ममता के तारों से छेड़ रही थी। उसने हाथ उठा कर काशी को प्रणाम किया। जगतपिता की वंदना में उस खड़खड़ाहट में भी एकाएक उसके अधरों से शिवतांडव स्तोत उभर कर मुस्करा उठाः—

"जटाकटाहसंभ्रमभ्रमन्निलिंपनिर्झरीविलोलवीचिवल्लरीविराजमानमूर्धनि ।।
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्लाटपट्टपावके किशोरचंद्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम...

पूरा स्तोत्र गुनगुनाता गुनगुनाता वह स्टेशन के बाहर आया। घर के लिए रिक्सा किया।

उसने कल्पना की थी कि मेरी नगरी बदल गयी होगी पर उसे उसी रूप में मिली वह कह उठा:—

'तीन लोक ममपुरी सुहावन।'

अचल होंहि

अहिवात तुम्हारा

रिक्शे से उतर केशर उल्लासमुदित मन पर मर्म का बोझ रखे मंथर गति से घर पहुँचा। घर के द्वार पर उसके पाँव रुक गये। इस रुकने में ममता की हिचकी थी, विषाद की सिहरन थी, कर्तव्य की चेतना भरी पुकार थी। धीरे-धीरे घर के ऊपर से गायन के समवेत स्वर उसे उस मधुकुंज के सौरभ की भांति लगे, जिस कुंज में रस लदे नाना प्रकार के फूलों से सामूहिक सुरभि आ रही हो और यह पता लगाना असंभव हो जाय कि यह सुरभि किस एक पुष्प की है। पर उस सुरम्य स्वर सम्मेलन में भी "इहैं नवा कोहबर' का अनुराधा का स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ रहा था और यह स्वर भी तो उससे इतना अधिक परिचित था जितना संगीतकार के लिए सरगम। स्वर का सम्मोहन ब्रह्मानन्द की भाँति उसके हृदय पर छा चुका था। कोहबर गायन का सहगान सुन उसका मन उसी प्रकार अपने को भूल गया जिस प्रकार जेठ का प्यासा पंथी सरिता को देखकर। वह रसमग्न सुनता रहा—

मचियहि बैठीं पुरखिन रानीं पूछें बिटिया पतोहु,
तो इहै नवा कोहबर।
कहँवां लिखौं सासू पुरइनि रे कहँवां लिखौं बँसवार,
तो इहै नवा कोहबर॥
यक ओरी लिखौ बहुअरि पुरइन रे, यक ओरी लिखौं बंसवार,
तौ इहै० ॥
कहँवां लिखों सासू, हंसा रे हंसिनि, कहंवां लिखों बन मोर,
तौ इहै० ॥
कहँवां लिखौं सासू सुग्गा रे, मैना सरगा उड़ति छेमकारि।
तौ इहै० ॥
दनवां चुनत गवरैया लिखौं रे गैया लिखौं बछुवा लगाय,
तौ इहै० ॥
कलसा लिहे चेरिया लौंड़ी लिखौ रे बाह्मन पोथी लिहै हाथ,
तौ इहै० ॥

गैया दुहत अहिरा छौंड़ा लिखौ रे दहिया बेंचत अहिरिन छोरि,

तौ इहै० ॥

आरी आरी बेली के फूल लिखौं रे और लिखौं पनवारि,

तौ इहै० ।

झुपसन इमली फरत लिखौ रे अमवा धवधवन लाग,

तौ इहै० ॥

वह सोचने लगा, पता नहीं क्यों कवि लोग ऐसे गीत लिख देते हैं जो गरीबों के लिए अंगारों के समान होते हैं पर उन्हें ये मंगल पर्व के अवसरों पर चकोर के चारे की भाँति चूमते फिरते हैं। इतना बड़ा विधान; फूली हुई इमली से लेकर हंस और हंसिन को एक नन्हीं सी दीवाल के नन्हें से कोने पर अंकित कर ये चक्रवर्ती सम्राट् का आनन्द ले लेते हैं। वह यह सोच ही रहा था कि छत से उसके छोटे भाई चंदर ने उसे देख लिया।

'भैय्या आये, भैय्या आये' चिल्लाता-चिल्लाता एक सांस में वह गली में पहुँचा। गली में आते ही उसकी वाणी अवरुद्ध हो गई। उसके मुँह से एक शब्द भी न निकल पाया। केशर के पास जाकर उसने सामान उठा लिया, घर में रखने लगा। तब तक गीतों का स्वर मौन हो चुका था।

नीचे आंगन में देहात से आये अतिथि बैठे थे। केशर ने सबका यथायोग अभिवादन किया। प्रायः सबके पास एकाध मिनट बैठ कर हाल-चाल पूछा, फिर ऊपर गया। कोहबर के घर की ओर एकाएक उसका ध्यान चला गया और तब तक वह औरतों की भीड़ में घिर गया। यद्यपि कोहबर के घर में उसने केवल यही देखा; 'तन, मन, और वस्त्र सब कुछ हलदी के रंग में रंगे हुए शांति अंजलि में चावल लिए बैठी है, उत्कण्ठा और लज्जा से वह धँसी जा रही है और वहीं उसकी बगल में अनुराधा दो अँगुलियों से घूँघट उठाये परदेशी देवता को पलकों से प्रणाम कर रही है।'

केशर उस दृश्य-दर्शन में भूल ही गया था कि कर्तव्य की चेतना ने उसे अगले पल जगा दिया। उसने रस-रास रचित विभिन्न सम्बन्धधारिणी महिलाओं को यथाविधि प्रणाम किया र सबसे अन्त में माँ के चरण

उसने काँपते हाथों से पकड़ लिये। माँ की आँखों में आँसू थे, प्रसन्नता के या विषाद के, राम जानें, किन्तु वे पलकों से बाहर न आ पाये।

"मा, गाना क्यों बन्द हो गया? बाबू जी कहाँ गये।"

"बेटा, सामान कऽ व्यवस्था करै, परसों बरात आयी, न।"

"शान्ति अच्छी तरह है, न!"

उन्होंने कहा,—'हाँ, बेटा!"

उसी बीच स्वर सुनाई पड़ा कि पण्डित जी कितने भाग्यवान हैं कि उन्हें राम जैसा पुत्र और सीता जैसी बहु मिली और उस भीड़ में एक कोने केशर का नन्हा पुत्र मौन अचंभित यह दृश्य देख रहा था। केशर को उसे पहचानने में विलम्ब न लगा। किन्तु संकोच के मारे वह उसे उठा भी न सका और वह थोड़ी देर देखता रह कर अपनी माँ के कमरे में चला गया। उसने जाकर अपनी माँ से कहा,—"पापू जी हमसे नहीं बोलते।"

उस कोलाहल में भी यह स्वर केशर के कानों ने सुना किन्तु मन मौन ही रहा। वह चाहता था कि माँ से सारी व्यवस्था के सम्बन्ध में तत्काल बातें कर ले, किन्तु वैसा कर सकना उस भीड़ में संभव न दिखा और उसने जेब से निकाल कर माँ को ताली आदि सौंप दी। वह यह भी चाहता था कि अनुराधा से ही बात कर व्यवस्था के संबन्ध में कुछ पता चला ले किन्तु उसके लिए वैसा भी संभव न हुआ।

माँ ने कहा 'बेटा, छत पर थोड़ा आराम कर ले।"

केशर छत पर गया। उसके थोड़ी देर बाद ही सामान आदि रखकर उसका छोटा भाई भी वहाँ पहुँच गया। छत के एकान्त कमरे में चारपाई पर लेटा भावनाओं के वह चित्र बना रहा था कि एकाएक किसी के आने की उसे आहट सुन पड़ी। उसने आँख मूँद कर सोने का अभिनय कर लिया। इधर उसके अनुज ने पहुँच कर पैर दबाना प्रारंभ किया।

केशर की आँखें ममता के स्पर्श से खुल गईं, कल्पना के भावचित्र हवा के झोंकों में उड़ गये। और वह स्वयं बोल उठा, "क्या-क्या प्रबन्ध हुआ है, चन्दर!"

उसने कहा, "सारा प्रबन्ध हो चुका है। बाबू जी हलवाई के लिए सब सामान खरीदने गये हैं। शाम से भट्टी गड़ जायगी। वहाँ से खबर आई थी कि बारात में अढ़ाई सौ आदमी आ रहे हैं। बाबूजी ने कहला दिया कि कोई चिन्ता नहीं है। अपने किसी संबंधी और मित्र को शादी में निमंत्रित करना न भूलें। जो कुछ भी हो सकेगा स्वागत-सत्कार किया जायगा।"

"तिलक के रुपये कहाँ से आये।"

"यह तो मुझे बाबू जी ने नहीं बताया।"

"तिलक पर उन लोगों ने अतिथियों के लिए अच्छी व्यवस्था की थी, न ?"

"भैया, बनस्पति में कचौड़ी-तरकारी खिला दी। खाते समय मिठाई भी न दी। लेकिन सब कुछ सम्पन्न हो गया। सुबह बाबू जी ने चोरी से अपने पैसों से अतिथियों को जलपान कराया।"

"वर-वर तो ठीक है, न !"

"बाबू जी को पसन्द है। मुझे पसन्द नहीं आया।"

"तुम्हें क्यों नहीं पसन्द आया ?"

"लोगों के दिमाग में जरूरत से ज्यादा हेकड़ी है, मुँह बड़ा भारी है, करतब वैसा नहीं दीखता।"

"ऐसी बात पाहुनों के सम्बन्ध में नहीं कहनी चाहिये। अब तो वे हमारे रिश्तेदार हो गये हैं। जैसे भी हैं, अच्छे हैं। जरा नीचे जाकर देख आओ कि नहाने-धोने की व्यवस्था ठीक है, या नहीं। और मेरा कपड़ा वगैरह कल के पास रख देना।"

निवृत्त होते ही वह काम पर फिरहरी की भाँति नाचने लगा। माँ और पिता की आज्ञानुसार वह जो कुछ भी कर सकता था तूफान की गति से करता गया। सारा अव्यवस्थित कार्य उसने सँभाल लिया। साथ ही अतिथियों से शिष्ट व्यवहार करने में भी वह न चूकता। रात को लगभग दो बजे वह सोता, चार बजे उठ जाता। कहाँ सोता, क्या खाता इसका भी अंदाज लगा पाना असंभव था। यद्यपि वह निरन्तर मुस्कराने

का प्रयत्न करता तो भी न जाने क्यों उसके चेहरे पर विषाद आसन मार कर बैठ गया था।

इस कार्य व्यस्तता में दो दिन इस प्रकार बीते जैसे दो घंटे।

आज उसके यहाँ बारात आनेवाली है। उसका द्वार फूलों के बन्दनवार से सजा है। गली में तोरन लगे हैं, फाटक बने हैं। चौतरे पर और गली में संभ्रान्त लोग कतार में खड़े हैं। महिलाएँ ऊपर बरामदे में दो खंडों में बैठी हैं। उधर गान चल रहा है। इधर माइक सिनेमा के रंगीन गीतों से आकाश पर अनुराग के कुंकुम बिखेर रहा है। शहनाई की ध्वनि भी इन स्वरों से रह रह कर टकरा रही है। दरवाजे से बाहर पूरे हुए चौक पर अक्षत से परिपूर्ण चाँदी का कलश स्नेह-वर्तिका से मंगल-दीप्त है। एँड़ी भरवाये पण्डित कृष्णकान्त भीतर-बाहर एक किये हुए हैं। केशर बार-बार भीतर जाकर इस व्यवस्था में लगा है कि जितने भी अतिथि आयें, उनमें से एक भी बिना जलपान के न जाने पाये।

बाहर सड़क पर बाजों की धुन सुनाई पड़ी। अगवानी के लिए लोग यहाँ से भी चल पड़े। कृष्णकान्त जी द्वार पर ही रुक गये। कुछ ही क्षणों में गली बाजों से गूँज उठी, गैस के हण्डे रात को दिन बनाने लगे। गुलाब जल और इत्र की वर्षा की जाने लगी। गली भर के मकानों में लोग जलपान करने लगे। वर द्वार पर पहुँचा। बारात उसके पीछे रुक गई।

द्वार-पूजा आरंभ हुई। द्वार-पूजा पर कृष्णकांत जी ने उधर के ब्राह्मणों को एक्यावन रुपये वितरित किये। नियमतः लड़के वालों को कम-से-कम उसका दूना ब्राह्मणों को देना चाहिये था। किन्तु उन्होंने कन्या पक्षवाले ब्राह्मणों को इक्कीस रुपये भी न दिये। पर कृष्णकान्त के स्वभाव के कारण कलयुगी ब्राह्मण सतयुगी ब्राह्मणों से मौन रह गये।

द्वार-पूजा समाप्त होने के बाद बारात जनवासे में गई। वहाँ आयस लेकर केशर ही भेजा गया। क्योंकि कृष्णकान्त जी को—ब्राह्मणों को रुपया नहीं मिला, इससे बहुत दुःख था। उनके यहाँ कर्मकाण्डी आजतक कभी दुखी भी तो नहीं हुए थे। यह उनके लिए विषाद की बात थी।

वह यह चाहते थे कि बारात को खिलाकर तब विवाह बैठाया जाय। प्रायः सभी अतिथि घर से सजधज कर जनवासे में पहुँचे। वहाँ नर्तकी अपनी भाव भंगिमा प्रदर्शित करती हुई और फुदकती कोयल-सी कूकती हुई, स्वर का जादू महफिल पर बिखेर रही थी। लोगों ने एक पूरा गाना उसी की भाँति फुदकते हुए सुना। वह गा रही थी:—

मैं बेला तरे ठाढ़ि रहिउँ; कै जदुवा डारा।
हमरे बलम की बड़ी-बड़ी अँखियाँ;
सुरमा सराई ऐनक लिहे ठाढ़ि रहिउँ, कै जदुवा डारा॥
हमरे बलम की बड़ी-बड़ी जुलफें,
तेला फुलेला कंगन लिहें ठाढ़ि रहिउँ, कै जदुवा डारा॥
हमरे बलम के झीने-झीने दँतवा,
खैरा सुपारी बिरवा लिहे ठाढ़ि रहिउँ, कै जदुवा डारा॥

आयस-संबंधी विधि-विधान विधिवत संपन्न हुआ। घराती उठकर चलने लगे। उधर गायन आरम्भ हुआ। केशर ने वर के पिता से निवेदन किया कि एक घंटे में भोजन तैयार हो जायेगा। गरम खाना लोग खा लें, तो शादी बैठे। आप की क्या आज्ञा है?

वे उसे इशारे से महफिल के बाहर ले गए और बोलने लगे, "मेरे साथ जितने लोग आये हैं उनमें २५–३० को छोड़कर सभी बहुत बड़े-बड़े लोग हैं। उनमें से कोई भी रात में आप के दरवाजे तक न जायेगा, रईस लोग हैं, खाट पर ही भोजन करते हैं। इसलिए भाथी के साथ यहीं जनवासे में सबके लिए भोजन भेज दें।"

"बाबू जी, आप ठीक कह रहे हैं। पर ये लोग मेरे द्वार पर जूठन गिरा देते तो हमारी गृही पवित्र हो जाती।"

"सवेरे वे लोग तो आपके घर पर जाकर ही भोजन करेंगे। इस समय यहीं व्यवस्था कीजिए।"

बातचीत चल ही रही थी कि तब तक लड़के के मामा जी आ गए। ये सिकन्दर थे, सच्चे माने में।

"बाबू जी, बहुत कष्ट होगा, सारा सामान यहाँ लाना पड़ेगा। हमने सोचा था कि गरम पूड़ियाँ निकलती जायेंगी और लोग भोजन करते जायेंगे।"

मामा जी कथ के माननेवाले, बोल उठे—

"यदि आप को कठिनाई हो तो बाजार से हम व्यवस्था कर लें। हम पहले से ही जानते थे कि आपके यहाँ यही सब होगा। हम रोज गरम पूड़ी खाते हैं, एक दिन ठण्डी पूड़ी ही खा लेंगे तो क्या बिगड़ जायगा।"

"आप लोग बड़े हैं, जो आदेश देंगे सिर-माथे पर। पर स्वप्न में भी ऐसा विश्वास न करें कि हम अपने भरसक कुछ भी स्वागत-सत्कार में उठा रखेंगे। हो सकता है कि हम आपकी सेवा आपके सम्मान के अनुरूप न कर सकें, पर हमारी श्रद्धा आपके प्रति है, इसमें ही हमें संतोष है।"

"जाइए, शीघ्र व्यवस्था कीजिए।"—मामा जी ने कहा। दोनों को यथाविधि अभिवादन कर केशर वहाँ से चला। तब तक कुछ घराती उठ कर चले आये थे और कुछ निकट सम्बन्धी जनवासे के बाहर केशर की प्रतीक्षा में रुक गये थे। वे उसके साथ हो लिए। केशर गंभीर हो गया। उसकी गम्भीरता यद्यपि सकारण थी पर लोग जान न सकें, इसलिए कहने लगा कि बहुत थक गया हूँ। लोगों ने कहा—विवाह-शादी का घर है, भाई सम्हाल के काम करो, कहीं बीमार न पड़ जाओ।" उसका उत्तर था—"अब दुबारा कहाँ ऐसा पुण्य-कार्य करने का अवसर मिलेगा। और मैंने कौन सा पहाड़ उठा लिया है।"

इसी तरह की बातें करते-करते वह घर पहुँचा। अतिथि बाहर ही लोगों के बीच बैठ गए। केशर झपटा हुआ ऊपर गया। वहाँ लाल, हरी, पीली, धानी साड़ियाँ पहने चारों ओर औरतें ही औरतें। वह चारो तरफ दृष्टि दौड़ाता पर उसे अनुराधा न दिखी।

वह तीसरी मंजिल पर गया। एक ओर हलवाई भट्ठी पर बैठे थे, दूसरी ओर परदा पड़ा था, जिसमें ७-८ औरतें पूड़ी बेल रही थीं। इन्हीं के बीच अनुराधा भी थी।

हलवाई से केशर ने पूछा "भाई अढ़ाई सौ आदमियों को कितनी देर में एक साथ भोजन करा सकते हो।"

"तरकारी और चटनी तैयार है। एक-एक पाँत बैठे तो पूड़ी देता जाऊँ, लोग खाते जायँ।"

"अगर एक साथ खायँ तो कितनी देर लगेगी। कम से कम दो घंटे।"

"कै बजा होगा।"

"साढ़े नौ के करीब।"

"जहाँ तक हो सके, भाई, जल्दी करो।" कहते हुए वह उस ओर चला गया जहाँ अनुराधा थी।

आज पहली बार कुछ औरतों के बीच अनुराधा से वह मिला, यद्यपि वह मिलना नहीं चाहता था, पर घर की मर्यादा का प्रश्न था। आज घर की मर्यादा की रक्षा जो समाज में करनी थी।

"सुनो", कह कर केशर छत के एक एकांत कोने की ओर बढ़ा, अनुराधा उसके पीछे।

'घर में कितने चूल्हें हैं।'

"पाँच।"

"क्या यह संभव है कि पाँचों चूल्हों पर एक साथ पूड़ियाँ उतारी जाँय।"

"क्यों नहीं हो सकता। लेकिन हलवाई तो अच्छी पूड़ियाँ बनायेगा। बाहरी आदमियों को खिलाना है।"

"यह सब तो ठीक है। लेकिन वे लोग जनवासे में ही भोजन करने पर तुल गए हैं। भोजन करके ही शादी पर बैठेंगे? शाइत बारह बजे की है। देर होने पर ठीक न होगा। अब तो इज्जत डूबती दिखती है।"

"यह कैसे हो सकता है। औरत के रहते आदमी की इज्जत यदि चली गयी तो औरत का जीना ही अकारथ है। माता जी शादी की व्यवस्था में लगी हैं, उन्हें मत छेड़िएगा। शाइत नहीं टलेगी, बबुआ जी

को नीचे से भेज दीजिए और बाबू जी से कुछ मत कहियेगा, वे बहुत दुःखी हैं।"

केशर वहाँ से दबे पाँव चला आया।

नाक से सरक कर आधे माथ तक अनुराधा का घूँघट अपने आप चला आया। आज पहली बार जीवन में उसके आराध्य देवता ने उसे एक काम सौंपा था। यह काम उससे भी कठोर था जो कैकेयी ने रथ की धूरी बन कर दशरथ के लिए किया था। वहाँ तो स्वार्पण था और यहाँ सहयोगार्पण।

दो तीन दिन से लगातार दिन रात काम करनेवाली अनुराधा में आज बज्र की दृढ़ता, पृथ्वी की गतिमयता और सावित्री का बल आ गया था। पाँच चूल्हे नीचे, ऊपर हलवाई की भट्ठी, सब पर पूड़ियाँ उतर रहीं थीं। पचीस महिलाएँ काम पर पिल गईं। उधर अपने देवर को अनुराधा सरेख चुकी थी कि एक एक कर जनवासे में जाने के लिए सामान लगवाया जाय।

जब तक सामान ले जाने की सुव्यवस्थित व्यवस्था हुई तब तक पूड़ियाँ तैयार। लेकिन किसी को ज्ञात न हुआ कि यह जल्दी क्यों?

जब सामान जनवासे में जाने लगा तो नीचे कृष्णकान्त जी ने पूछा, "क्यों केशर, यह क्या?"

"बाबू जी, शाइत बारह बजे है। १० बज रहा है, उन लोगों ने कहा कि यहीं भोजन हो जाय तो अच्छा रहेगा। मैंने भी सोचा कि अगर जनवासे में ही भोजन की व्यवस्था कर दी जाय तो ठीक समय पर शादी बैठ जायगी।"

"यह क्यों नहीं सोचा कि बाराती घर पर खायेंगे तो घर की शोभा बढ़ेगी। मैंने आज तक कहीं नहीं देखा कि सारी बारात को जनवासे में खिलाया जाय।"

"बाबू जी, गलती हो गई।"

"खैर, अब जो काम कीजियेगा बड़े-बूढ़ों से पूछ कर, नयी-रीति

चलाना ठीक नहीं। हाँ देखना किसी भी वस्तु की कमी वहाँ न पड़ने पायें।"

जनवासे में खाना परोसा गया। सौ-सवा सौ आदमी वहाँ इस विचार के निकल गए कि वे लड़कीवाले के घर जाकर खायेंगे। क्योंकि उनकी दृष्टि में आज भोजन की शोभा वहीं थी। लड़के के पिता ने केशर से कहा, "साहब जो लोग यहाँ खायेंगे उनको यहाँ खिला दीजिए, बाकी लोग घर पर खायेंगे।"

केशर ने कहा—"जो आज्ञा।"

केशर ने अपने अनुज को बुलाकर धीरे से कान में कहा कि घर चले जाओ और वहाँ पर घरातियों को भोजन कराने से पहले सवा सौ और आदमियों के भोजन की व्यवस्था करवाओ। बाराती खा लेंगे, तब घराती खाएँगे। अनुज आज्ञा-पालन की व्यवस्था के लिए घर आया। आधी बारात ने विधिवत भोजन किया। सामान आधे से अधिक बच गया। बचा सामान घर वापस ले जाने की तैयारी होने लगी।

तब तक केशर के कान में कुछ बारातियों की यह परस्पर वार्त्ता आयी, "सब कैसे मक्खीचूस हैं, भाथी के साथ आया सामान वापस ले जा रहे हैं, कहीं ऐसा होता है?"

केशर इस बात पर दृढ़ था कि जैसे भी हो प्रतिष्ठा बचानी है। अब तो गला फँस गया है, छटपटाने से लोक हँसाई ही होगी। उसने सामान वहीं रोकवा दिया और लड़के के पिता के पास गया। धीरे से बोला, 'भाथी के साथ यह सब सामान आया था, जहाँ आज्ञा हो रखवा दूँ।'

"हाँ ठीक है। क्योंकि अभी कुछ लोग शहर में घूमने गए हैं और कुछ और लोग आनेवाले हैं। यहीं भोजन कर लेंगे। कम तो नहीं पड़ेगा।"

'दिखलवा लीजिए, आज्ञा हो तो और भेजवा दूँ।'

"माँमा जी को सामान सौंपवा दें।"

"जो आज्ञा, बाबू जी। हाँ एक निवेदन और वर का पानी भेजवाने की व्यवस्था।"

"वह भी मामाजी से कह दें, वही व्यवस्था करेंगे। सब काम आप

उन्हीं से पूछ कर करें। मेरे घर के मालिक वे ही हैं। मुझमें उनमें कोई अन्तर नहीं।"

वर का पानी आया। आँगन में शादी की व्यवस्था होने लगी। ऊपर लोगों के लिए भोजन तैयार होने लगा। लोगों को श्रद्धापूर्वक बुलाकर विधिवत् भोजन कराया गया। सभी बराती और घराती तृप्त हो गए और कुछ को छोड़कर प्रायः सभी ने भोजन की प्रशंसा की।

चढ़ावा का गहना आशा से कम तो था ही विश्वास से कम पुराना भी न था। औरतों का मन, विशेष कर शाँति की माँ का मन उसे देखकर बैठ गया। उन्होंने सबसे प्रशंसा कर रखी थी कि ऐसा घर है कि देखते ही बनता है। ऐसे घर से ऐसा सामान आये यह वज्र के आघात सा लगा। शाँति भी मन ही मन में अपने को कुछ हेय समझने लगी क्योंकि अनेक औरतों ने तो यहाँ तक कह दिया कि किस जगह शादी कर रहे हैं, पंडित जी। वह धन किस काम का जिसके रहते सोने-सी इज्जत कौड़ी के मोल बेपानी होकर बहे।

अनुराधा ने प्रारंभ में तो मौन व्रत साध लिया। उसे भी गहने का दुःख था पर लोगों की बात ज्यों-ज्यों गहने के संबंध में बढ़ने लगी त्यों-त्यों शांति का चेहरा छोटा होता देख, वह अपने को न रोक सकी। उसने कहना शुरू किया, "बबुई जी की शादी ऐसे घर में नहीं की जा रही है कि विवाह के लिए घर से गहना तक न निकल सके, बाजार से खरीदना पड़े। घर पर रखा था, उन लोगों ने भेज दिया। वे तो भले आदमी हैं, जो इतना भेज दिया। बाबूजी ने तो यह कहला दिया था कि हम तो केवल लड़के की शादी कर रहे हैं। नथुनी, पियरी काफी होगी। बहुतों को देखा है और जानती हूँ कि उनके ससुराल से क्या चढ़ावा आया था। मंगल-प्रयोजन के घर में पता नहीं क्यों लोग ऐसी बात सोचते और कहते हैं। और गहना नहीं ही आया तो क्या हो गया। हीरे सा हमें ननदोई मिला। गहने से नहीं ननदोई जी से बबुई जी की शादी हो रही है।"

अनुराधा की ये बातें वाचाल महिलाओं को उसी प्रकार लगीं जिस प्रकार सरकस में बिगड़े दिल जानवरों को प्रदर्शक का हण्टर। खुल कर

कोई भी कुछ न बोल पाया। एकाध महिलाओं ने आपस में फुसफुसा कर कुछ कहा, जिसका आशय यह था कि अभी कल की बहू हमारे सामने नागिन की तरह फुफकारती है, इसे शर्म भी नहीं आती। विवाह-शादी का घर है, लाज घोरकर पी गयी है।

अनुराधा तो घर की लाज के लिए ऐसी दीवानी गृहस्थिन बन गई थी जैसी मीरा प्रेम में। उसे लोक लाज की चिन्ता कहाँ? वह इस बात से भीतर ही भीतर प्रसन्न थी कि वह आज अपने घर की लाज कुलवन्त लक्ष्मी की तरह बचाने में समर्थ हो गई और इस बात का सारा श्रेय मन ही मन कुल देवताओं को दे रही थी। इसी बीच उसका देवर आया उसने भाभी को अलग बुला लिया और कहने लगा, "आज भैया को सबों ने जनवासे में बड़ा जलील किया है। वे बड़े कमीने हैं।"

अनुराधा का खिला चेहरा धूप में पड़े धान की भांति सूखकर पीला पड़ गया। उसने पूछा—"बबुआ जी क्या बात हुई।"

उसने क्रोध में कहा, "जीजा के मामा जी को खिलाना भाई साहब भूल गये। इस पर वे लाल पीले हो गए और गालियाँ तक बकने लगे, यहाँ तक कि कमीना, नीच, जलील, कल का छोकरा और न जाने क्या-क्या कह दिया। सब बड़े बदमाश हैं। मैं बाबू जी को मना कर रहा था। जीवन भर जलाने के लिए शांति को भट्ठी में झोंक आए।"

"तो उन्होंने क्या कहा"

"वे कहेंगे क्या उनका खून तो ठंडा हो गया है, सब कुछ सुन लिया और माफी ऊपर से माँग ली।"

"फिर"

"भुक्खड़ ने भोजन किया"

"भाई साहब कहाँ हैं।"

"नीचे ।"

"क्या कर रहे हैं।"

"बाबू जी को सब बात मालूम हो गई थी। उन्होंने भी भंडारेवाले कोठरी में उन्हें बुलाकर बहुत डाँटा है।"

"तुमने तो वहाँ कुछ नहीं कहा।"

"मैं कुछ बोलूँगा थोड़े ही मैं जस देवता तस पूजा कर दूँगा। मैं तो इसलिए चला आया कि भैया ने आँख गुरेरकर इस तरह मेरी ओर देखा जैसे सारा क्रोध मुझ पर ही उतार देंगे।"

"बड़ा अच्छा करोगे। इस घर में जो पांव पूजने के लिए बुलाए गये हैं, उनकी लात से पूजा करोगे।"

"तो यदि देवता की तरह वे पूजा करवाना चाहते हैं तो क्यों नहीं वैसा आचरण करते। बहन की शादी कर रहा हूँ इसका मतलब यह तो नहीं कि ये भरी सभा में हमारी इज्जत लूटें। टुकड़खोर और भीखमंगे कहीं के।"

"क्या उनके बकने से कुछ नुकसान हो गया। अगर इज्जत की बात है तो ऐसा करने पर दुनिया मुँह पर नहीं थूक देगी। ब्राह्मण के साथ चांडाल का काम अपने घर बुला कर आपने किया। कुत्ते भी अपने दरवाजे पर भूँक लेते हैं और बबुआ जी कान खोल कर सुन लीजिए कि यदि आप जरा भी किसी से कुछ भी बोले तो मैं जान दे दूँगी।"

"भाभी, अगर मैं कुत्ता हूँ तो तुम भी तो कुतिया हुई। अगर जान दे दोगी, तो भैया का नया विवाह होगा। मैं सोहबल्ला बनूँगा। नयी भाभी आयेगी। भैया को जवान बीबी मिलेगी।"

वह अपनी बात पूरी भी न कर पाया था कि क्रोध में झल्ला कर अनुराधा ने कहा "आप मेरी आँखों के सामने से दूर हो जाइए और उनको भेज दीजिए। मैं कुछ नहीं सुनना चाहती।"

भीतर से वह डर गया। ऊपर से मुसकराता हुआ पीछे की ओर मुड़ते हुए बोला "जै काली माई की। इनके दुल्हा की बेइज्जती हुई। जिसपर क्रोध उतारना चाहिए उनकी पूजा कर रही हैं और मुझको जीभ दिखा रही हैं।"

अनुराधा वहीं कोने में खड़ी कल्प-विकल्प में डूब उतरा रही थी। केशर वहाँ आया।

"क्या बात है?"

"कुछ तो नहीं; यों ही बुला लिया था। सब लोगों ने भोजन आदि तो कर लिया और घर बाहर सब काम सुव्यवस्थित संपन्न तो हो गया न ?"

"अभी तक तो ईश्वर की कृपा से सब कुछ मंगलपूर्वक हो गया आगे भगवान ही रक्षक हैं।"

"आप उदास क्यों हैं ?"

"तो प्रसन्न कैसे होऊँ ? सोचा था शान्ति की शादी ऐसे घर करूँगा, ऐसे वर से करूँगा कि लोग उनकी चर्चा करके अघा जायेंगे। किन्तु दरिद्रता के अभिशाप की सर्पिणी डँसने के लिये घर में फूल के साथ छिप कर चली ही आयी।"

"लेकिन अब जो हो गया, उस पर पछताने से काम न चलेगा। यदि प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये विष का ग्रास ग्रहण करना पड़े तो भी मान इसी में है कि देखने वाले अनुमान तक न लगा सकें कि हमने विष-पान किया है या अमृत। सुना है, आपको उन लोगों ने जनवासे में काफी जलील किया, गहने भी नाम लेने भर को ही हैं, वे भी पुराने। बाबू जी बहुत दुःखी हैं, बबुआ जी क्रोध से लाल हैं। अम्मा जी पीली पड़ गई हैं, और आप को देख रही हूँ कि आप भी सोंथ गये हैं। ऐसी स्थिति में मन की बात यदि जबान पर आ गई तो सब किए कराये पर पानी फिर जायेगा।"

"न तो मुझे किसी ने जलील किया है, न मेरे रहते घर की लाज डूब सकती है। माता जी के ऊपर बराबर ध्यान रखना उन्हें अकसर ऐसे अव-सरों पर दौरा आ जाता है, मुन्ना कहाँ है ?"

"कहीं सोया होगा, अब आप जाइये।"

रात में किसी प्रकार शादी संपन्न हुई। घटनाएँ सुख की एक भी नहीं घटीं, बहुआर की धोती क्वीन विक्टोरिया के समय की थी, लावा परछाने का दुपट्टा बंग-भंग के समय का था, ब्राह्मणों को जो वस्त्र अर्पित किये गए थे वे सय्या-दान के थे। दक्षिणा भी उन्हें दरिद्र नारायण की तरह मिली। यह सब तो था ही पास-पड़ोस और कुल-गोत में सबेरे ही वर की गुण गाथा बिजली की तरह प्रसारित हो गई। इसके मूल में रात की निम्न घटना थी।

कोहवर में दही-गुड़ की प्रथा मंगल कार्यों में अनिवार्य-सी है। शादी

के बाद कोहवर में जब शान्ति के साथ निर्गुण महोदय पहुँचे तो उन्हें आसन पर बैठाया गया औरतों ने यथायोग्य उनका अभिवादन किया, किसी ने उन्हें तुर्क का बेटा, किसी ने उन्हें उनके मामा का लड़का, और किसी ने उन्हें उनकी बहन का पति बताया। उनमी माँ और बहन को वहाँ गालियाँ बकी गईं, किन्तु वे गालियाँ उसी ढंग से दी गई थीं जिस मधुर, मनमोहक ढंग से जंगल में पूछने पर सीता सयन से अपने पति का परिचय देती थीं। उसमें केवल काव्य की मिठास ही नहीं थी अपितु लोक की परम्परा के अक्षुण्य संरक्षण की मंगल भावना भी थी। तुलसीदास जैसा सन्त सज्जन भी जनक जैसे विदेह के घर में इस परम्परा को न तोड़वा सका। पर निर्गुण जी को यह बात खली। खलने का कारण यह था कि वे बड़े बाप के बेटे थे और शान्ति के साथ शादी करके संभवतः वे उतना ही बड़ा उपकार कर रहे थे जितना बड़ा उपकार धनुषभंग करके राम ने सीता पर किया था। लेकिन औरतों के भय से इतना अधिक वे अक्रान्त थे कि कोहबर में मुँह से बोल न निकलती थी। एकाएक किसी औरत ने उनके मुँह पर उसी प्रकार दही का लेपन कर दिया जिस प्रकार मथुरा-वृन्दावन में गोपियाँ कृष्ण के मुख पर किया करती थीं। पर निर्गुण तो थे ऊधव सम्प्रदायी, यह बात उन्हें उसी प्रकार लगी जिस प्रकार गोपियों की बात ऊधव को लगी थी। उनसे आग्रह किया गया, वे दही-गुड़ करें।

ठनगन तो दूर की बात रही झट उन्होंने अँगुली दही में लगायी उसे अधर पर ले गये और दूसरे ही क्षण ठनठनाती दही की थाली आँगन में थी। उनके मुँह से निकला—"पितराया, सड़ा दही।"

सब औरतें उसी प्रकार चुप हो गईं जिस प्रकार बिजली फेल हो जाने पर रेडियो।

सुपाड़ी, पान की प्रथा पूरी न हुई कोहबर के और कर्मकाण्ड ज्यों के त्यों रह गए और वर महोदय छँलाग मारते हुए एक दो तीन हो गए।

असवारीवालों को उन्होंने सैनिक आदेश दिया—"चलो। वे जनवासे में पहुँचे।"

* * *

माँ की समस्त आशा पर पानी फिर गया। अभी तक तो उन्हें यह विश्वास था कि घर अच्छा नहीं मिला तो कोई बात नहीं। लेकिन वर तो लाखों में एक है। हृष्ट-पुष्ट और सौम्य। बी० ए० पास किया है, एम० ए० में पढ़ रहा है, शान्ति का बेड़ा अब पार लग जायेगा। लेकिन यह सब देख, वह मझधार में डूबने लगी। उन्हें ऐसा दिखायी पड़ा कि एक ओर नाव डूब रही है और दूसरी ओर उसका खेवनहार लहरों से आँख-मिचौनी का खेल खेल रहा है। वह स्वयं डूब गई। जहाँ बैठी थी वहाँ से उठ न सकी।

शान्ति उस समय चुनरी में लपटी गठरी के समान थी, जिसे भावों के सर्प रह-रह कर डंक मार रहे थे। उसके नये घर के बारे में लोग अनाप सनाप बक रहे थे। उसके पति के बारे में भी ऐसी बातें कही जा रही थी जिन्हें सुनना विष का घूँट पीना था।

यद्यपि वह जानती थी, जानती ही नहीं पाठ भी करती थी, अन्धा, बहरा, कोढ़ी और अतिदीन पति की निन्दा सुनने मात्र से नर्क में जाना पड़ता है और यमपुरी में नाना प्रकार की प्रतारणा सहनी पड़ती है तो भी वह कुछ बोल न पाती थी। एक ओर उसके सामने उस घर की प्रतिष्ठा नयी नवेली दुलहिन सी खड़ी थी, जहाँ सोलह वर्षों का जीवन खेलते खाते काटा था, जहाँ पर उसने सोलह बसंतों को देखा था और जहाँ पर उसके जीवन के यौवन की बारी को सुरभित करने के लिए मंगल-मेला लगा था। दूसरी ओर उस घर और वर की लाज थी जहाँ उसका अनन्त जीवन बीतने वाला था। दोनों करारों की ऊँचाई उसके मन की भावनाओं के ज्वार से सागर के तट की भाँति यौवन की पूर्णिमा के दिन डूबने लगी।

सूरज की पहली किरण के साथ घर-घर में घर-वर की गाथा गायी जाने लगी। केशर सो न सका था, ऊषा के साथ ही उठकर वह तैयारी करने लगा था, अतिथियों के जलपान आदि के सुव्यवस्था की। वह जनवासे में गया। सब लोग सोये थे, किन्तु मामा जी अकेले जाग कर सब की रक्षा कर रहे थे। केशर को देखते ही, उन्होंने मुँह फेर लिया। आदमियों

को इधर ही रोक कर केशर मामा जी के पास गया। वह रुख समझ गया था।

श्रद्धापूर्वक जाते ही उसने मामा जी का चरण स्पर्श किया। उनकी चरण धूलि को अंगुलियों के द्वारा पलकों पर लगाया। आशीर्वाद न देकर मामा जी प्रभाती बरबराने लगे !

"आप ही सामने आते हैं कल से; आप के बाप जान का पता नहीं चला।"

"बाबू जी की तबीयत कन्यादान के बाद से बहुत ज्यादा खराब हो गई है। वे आने लायक नहीं है और मैं तो हूँ ही सेवा में। आप जैसे सज्जन पुरुष के रहते बाबू जी की क्या जरूरत है, आप तो हई हैं।"

"बेटा, तुम्हारे जैसे कितने लड़कों को रास्ते पर लगा चुका हूँ, मुझे चालाकी से सख्त नफरत है। अपने घर पर तुम लोगों ने रात में लड़के को बेइज्जत कर दिया। शादी के बाद सोचते हो कोई क्या कर लेगा। लेकिन तुम मुझको नहीं जानते। मैं ठीक कर दूँगा। यहाँ आते हुए तुम्हें शर्म नहीं आई। रात को किसी ने लड़के को भड़ुवा कहा, किसी ने भगोड़ा कहा और फूहर-फूहर गालियाँ दीं। नेग नदारत, फिर भी कुत्तों की तरह घर पर भूकते हो, यहाँ हाथ जोड़कर बकुला भगत की तरह दाँत चियारते हो। तुम्हारे घर से सारा संबंध समाप्त।"

"मामा जी औरतों ने गाली गाते समय "भागा भड़ुवा भागा जाय" अगर कह दिया या हँसी मजाक कर दिया तो मेरा क्या अपराध है। ऐसी-ऐसी औरतें मेरे घर पर आयी हैं, जो मुझे ही गाली गाती हैं। ऐसी बातों को विशेष महत्व नहीं देना चाहिये। आप मेरे साथ चलिये मेरी माता जी को चाहे जो गाली दे लीजिये। जीजा जी को साथ भेज दीजिये मेरी पत्नी को चाहे वह जो गाली दे लें, हमें जरा भी नहीं बुरा लगेगा ! ऐसे मौके बड़े भाग्य से मिलते हैं, जब मीठी गाली सुनने का अवसर मिलता है। यदि फिर भी संतोष न हो तो आप जो चाहे मुझे दंड दे दें मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा। रही नेग की बात वह विश्वास रखिये कि जब मैंने अपनी बहन दे दी, तो देने में कुछ उठा न रखूँगा और जो संकल्प किया

जा चुका है उसका एक तिनका भी हमारे घर पर नहीं रहेगा। जलपान लाया हूँ और जो आज्ञा हो।"

"आप मुझे बातों से नहीं बहला सकते। मैंने जिन्दगी में अनेक घाटों का पानी पिया है, मुझसे सीधी बात कीजिये। मैं मीठे-बोलने वालों से बहुत घबड़ाता हूँ, वे दो मुँहे साँप होते हैं। आप हमसे स्पष्ट बताइये कि अब आप लोगों की क्या मन्सा है ?"

"मामा जी, हम लोगों ने आपका पाँव पूजा है। भक्त से भगवान पूछें कि आप की क्या मंसा है वही स्थिति आपने हमारी कर दी है। आप हमारे साथ चलिये, देख लीजिए कि हमें क्या देना है। हमने आपके घर पर यह वादा किया था कि पाँच सौ रुपया हम नगद देगें और एक हजार का सामान। इससे अधिक ही हम देंगे, आप विश्वास रखें।"

"जो बार-बार धोखा दे, उसका विश्वास कैसा। मेरी बारात में बड़े-बड़े लोग आये। उनके लिये सिगरेट का प्रबन्ध आप न कर सके। रात में हम लोगों ने आपकी इज्जत ढकने के लिये दस रुपये का सिगरेट मँगाया।"

"मामा जी, अपराध हो गया। अज्ञान बस ऐसी भूल हुई। अभी तक जिनसे हमारा संबंध रहा है, उनमें सिगरेट पीने वाले लोग नहीं रहे हैं। भूल क्षमा करें। भविष्य में ऐसी किसी चीज की जरूरत हो, जिसका हमें ज्ञान न हो तो आप तत्काल सूचित करें। यथाशक्ति आदेश का पालन होगा।"

बारात में सब रईस ही नहीं आये थे, अनेक ऐसे जन भी आए थे जो घर-द्वार वाले और बाल-बच्चे वाले भी थे तथा जिन्होंने विवाह शादियाँ भी की थीं। उनमें से एक दो प्रतिष्ठित व्यक्ति सोये-सोये मामा जी और केशर की वार्ता सुन रहे थे, उनसे न रहा गया।

सुनने और सहने की सीमा होती है, उस सीमा के बाद सुनना और सहना या तो देवतुल्य मनुष्यों का कार्य होता है या कापुरुषों का। उनमें से एक दो उठकर बैठ गये और कहने लगे कि, मामा जी क्षमा कीजिए, अब बहुत हो गया।

"मुझको क्या लेना-देना है। खरा आदमी हूँ। कुछ छिपा नहीं

सकता, इसलिए सच्ची बातें कह देता हूँ और मैंने ऐसी कोई बात नहीं कही जो बुरी लगने वाली हो।"

"तो मामा जी जलपान कहाँ रखूँ और जो त्रुटि हो देखकर बता दें। उसको दूर कर दूँ। और जो कुछ आपने कहा है, मुझे कुछ बुरा नहीं लगा। आपने मेरे भले के लिए ही ऐसा कहा है"। उसने टेंट की ओर हाथ बढ़ाया और धीरे से दस का नोट मामा जी के हाथ पर रख दिया।

मामा जी उठे, सामान सहेज कर बोले,—"कुछ जलपान कम पड़ेगा और भेज दीजिये और देखिये भात केवल दस आदमी खायेंगे और बाकी लोग पक्की।"

"तो मामा जी सिगरेट आदि और जो सामान चाहे।"

"देखिये बीस पाकिट सिगरेट, आध सेर भांग तथा उसका सामान और यदि हो सके तो थोड़ा गाँजा और चरस भी।"

"जो आज्ञा", केशर सामान सहेजवा, अनुमति लेकर वहाँ से घर की ओर चल पड़ा। ऊपर जाकर घाट पर पड़ी माँ के पास गया। उसकी पत्नी भी घूँघट काढ़ कर वहाँ आ गई।

"माँ पच्चीस तीस आदमियों के लिए और जलपान भेजना है, साथ ही सिगरेट भाँग, गाजा, चरस, तेल, साबुन भी।"

"गाँजा, चरस, भाँग के लिए बाबू जी से पुछला।"

"माँ, इसमें बाबू जी से पूछने की क्या बात है और तुम तो जानती ही हो कि अगर भाँग तक होता तो बाबू जी कुछ न बोलते, सिगरेट, गाजा, और चरस वह कभी नहीं भेजेंगे, नाहक झगड़ा बढ़ेगा।"

"लेकिन बाबू जी से छिपा के कोई काम हम नाहीं कर सकित।"

"लेकिन माँ, क्या पसन्द करोगी कि घर की इज्जत चली जाय, केवल इसलिए कि एक छोटी सी बात न छिपा सको। तुम्हें मेरी कसम है, बाबू जी को न मालूम होने पाये।"

"अम्मा, जी बारात में जब दूसरी बिरादरी के लोग आये हैं तो उनकी भी खातिरी करना हमारा धर्म हो जाता है।"

"लेकिन बेटी का अतिथि की खातिर उनसे झूठ बोले कड पाप करीं।"

"माँ मैं पाप, पुण्य कुछ नहीं जानता। तुम मेरे लिए सब कुछ कर सकती हो। मैं आज तक यही जानता आया हूँ। मैं वचन देकर वहाँ से आया हूँ। माँ के कारण अपने देश में पुत्र की बात सदा बनी ही, बिगड़ी कभी नहीं। और यदि कहो, तो चन्दर को बुला कर चुप-चाप यह व्यवस्था कर दूँ, किसी को मालूम भी न हो।"

"जबन जी में आवें करा, लेकिन उनके न मालूम होवे पावै।" यह कहते हुए केशर की माँ मौन चिन्तित हो गईं।

अलग आ जोर से 'चन्दर-चन्दर' की आवाज केशर ने लगायी। चन्दर आँख मलता हुआ वहाँ चला आया।

"देखो चन्दर पचीस पाकिट-सिगरेट बढ़िया वाला, आधा सेर भाँग, एक रुपये का गांजा, एक रुपये का चरस तुम चुपके से जनवासे में मामा जी को दे आओ। मैं अब ठण्डई आदि का सामान लेकर तथा और जलपान लेकर वहाँ आता हूँ, बाबू जी को न मालूम होने पावे।"

"भैया यह तो शोभा की बात नहीं है, हम लोग ऐसी चीजें उन्हें खिलावें-पिलावें जिनको हम हाथ से भी नहीं छूते।"

"लेकिन माँग जो रहे हैं, अतिथि का अपमान करने पर बड़ा भारी पाप लगता है।"

"लेकिन भैया अतिथि की सेवा श्रद्धा पूर्वक की जाती है जबरदस्ती तो नहीं की जाती। क्या अतिथि कभी यह कहता है कि हम यही खायेंगे, हम यही पीयेंगे। ये सब तो अतिथि नहीं भुक्खड़ हैं।"

"कितनी अच्छी बात कह रहे हैं, बबुआ जी, आप। अपने मुँह से उन्हें भुक्खड़ बता रहे हैं, जिन्हें श्रेष्ठ समझ कर बहन दिया है, दुनिया आपको नहीं कहेगी कि भुक्खड़ से अपने बहन की शादी कर दी।"

"मेरे न कहने से दुनिया का मुँह तो बन्द नहीं होगा, जो सत्य है वह छिपाये नहीं छिप सकता। आज नहीं कल लोग ऐसा कहेंगे ही।"

"लेकिन चन्दर, मेरा काम तो फटी हुई कथरी को चादर से ढक कर छिपाते ही जाना है। यदि तुमसे यह काम न हो सके तो कह दो, मैं स्वयं व्यवस्था कर लूँगा।"

चन्दर की आँखें भरभरा आईं, वहाँ बड़ी गम्भीरता के साथ आने को सँभाल कर बोला, 'भैया, पैसा दीजिये'।

केशर ने अनुराधा से कहा कि इन्हें तीस रुपये दे दो। कहता हुआ वह ऊपर गया, वहाँ कृष्णकांत जी बैठे थे। उन्होंने पूछा कि जनवासे की सब व्यवस्था ठीक हो गई।

"हाँ, बाबू जी, सब ठीक है।"

"बहुत सँभल कर काम करना। ये सब भले आदमी नहीं हैं, मैं खिचड़ी-भात पर इनके सामने नहीं आऊँगा।"

"बाबू जी यह तो बड़ा बुरा होगा। आप केवल दरवाजे पर जब-जब वे लोग आवें, सामना कर लीजियेगा, कुछ बोलिएगा नहीं, मैं सब सँभाल लूँगा।"

"मुझसे न हो सकेगा, मेरी तबीयत भी ठीक नहीं है।"

केशर ने अपना हाथ बाबू जी के माथे पर रखा। देखा वह जल रहा था। वह भीतर से बहुत घबड़ाया और बोला—"बाबू जी आप दो, तीन रात के जगे हैं, आराम कर लीजिए।"

"और तुम तो जगे नहीं! मुझसे अधिक तुम्हें आराम की जरूरत है।"

केशर समझ गया बाबू जी क्रोध में हैं। वह धीरे से वहाँ से चला आया। अनुराधा नीचे दूसरी मंजिल पर चन्दर को रुपया सहेज रही थी, सामान लाने के लिए। केशर सीढ़ी पर खड़ा रहा। जब चन्दर चला गया तो अनुराधा के पास जाकर वह पूछने लगा "क्यों, बाबू जी किसी पर गुस्सा गये हैं, क्या?"

"ऐसी तो कोई बात नहीं हुई है लेकिन इस शादी से बहुत अधिक मर्माहत हैं। थोड़ी देर पहले यहीं टहल रहे थे, चुपचाप इधर से उधर। रह रह कर यह दोहा गुनगुनाते थे—

करम कमण्डल कर गहे,
तुलसी जहँ लग जाय,
सागर सरिता कूप जल,
बूँद न अधिक समाय।"

"उन्हें बुखार भी है, मैंने उनसे कहा थोड़ा विश्राम कर लीजिये, तो वे नाराज हो गये।"

"वे इतने अधिक दुखी हैं कि उनको छेड़ने से सारा का सारा काम खराब हो जायगा। उनसे कुछ मत बोलिए,। हो सके तो ऐसी व्यवस्था कर दीजिए कि दो चार रिश्तेदारों के बीच में ही रहें। ताकि उनका मन बहल जाय।"

"हाँ लगभग दस आदमी भात पर आएँगे और बाकी लोगों के लिए लगभग डेढ़ सौ आदमियों के लिए पक्के भोजन की व्यवस्था करनी होगी।"

"ठीक है सारा प्रबन्ध ठीक समय पर हो जायेगा। बारह बजे खिचड़ी एक बजे भात। बारात कब जाएगी।"

"जाना तो उन्हें पाँच बजे वाली गाड़ी से चाहिए, आगे, उनकी मर्जी।"

"उनसे समझ लीजिएगा, ताकि वैसी व्यवस्था सायंकाल के लिए भी की जा सके।"

"अच्छा।"

सब कार्य सुचारू ढंग से चल रहा था। जनवासे में जलपान आदि भेज दिया गया था। उनकी सब माँगे जरूरत से ज्यादा पूरी की जा रही थीं। दस बजे के लगभग चन्दर आया, वह बड़े क्रोध में था।

अपने भाई के पास गया, बोला—'भैया पचीस आदमियों के लिए और जलपान पहुँचवा दीजिए और सब व्यवस्था मैंने ठीक कर दी है।"

"वहाँ क्या हो रहा था"

"रंडी गा रही थी, लुच्चड़ उससे फूहड़-फूहड़ मजाक कर रहे थे। मुझे भी लोगों ने जबरदस्ती वहाँ थोड़ी देर बैठा लिया। उसने मेरी

धोती पकड़ ली। दो रुपया बचा था, जब मैंने उसको दिया तो जाकर जान छूटी।"

केशर ने हँसते हुए कहा, "पगले कहीं के, विवाह-बारात की तो यही सब शोभा है।"

"लेकिन भैया यह कैसी शोभा है, एक ही औरत से मामा, भाञ्जा, पिता और पुत्र फूहड़-फूहड़ चिकारी एक स्थान पर एक साथ करें।"

"यह सब विवाह-बारात में तो होता ही है।"

"विवाह-बारात में चोरी भी होती है, भैया! कम से कम पचास कसोरा जलपान वहाँ पड़ा है लेकिन उन्हें और चाहिए। मैंने अपनी आँख से देखा है कि एक बक्से में कसोरे की मिठाई मुझसे छिपा कर रखी जा रही थी। और अलग से नयी माँग लगा दी गई।"

"विवाह बारात में ऐसा प्रबन्ध कर लिया जाता, है कि वे लोगों को जलपान करा दें, मेरे आसरे न रहना पड़े। इसलिए थोड़ा-सा सामान बचा कर रख लिया जाता है। अच्छा तुम ऊपर जाकर कसोरा लगवाने की व्यवस्था करो। मैं थोड़ी देर में आकर जनवासे में जलपान भेजवाने की व्यवस्था करता हूँ और यह पता लगाओ कि बारह बजे भोजन तैयार हो जाएगा, न।"

वह सीधे अनुराधा के पास गया। अनुराधा शान्ति के पास बैठी थी, वह चन्दर को देखकर थोड़ी लजाई। लेकिन अनुराधा ने कहना शुरू किया—"कहिये बबुआ जी, मुझको तो बहुत कहते थे, आज आपकी बहन को ही रात में किसी ने उड़ा लिया, अब बोलिए।"

"अब क्या बोलूँ, भाभी, बीस-पचीस आदमियों के लिए जलपान भेजवाने की व्यवस्था करो और भोजन कब तक तैयार हो जायगा, यह बता दो।" उसकी वाणी इतनी भरी हुई थी कि शान्ति भी अनुराधा के साथ ही यह समझ गई कि चन्दर आज बहुत दुखी है।

अनुराधा ने कोहबर-घर से बाहर निकलते हुए कहा—"बबुआ जी इधर सुनिए।"

कौन-सी ऐसी बात है जो चन्दर शान्ति के सामने अनुराधा से नहीं कह सकता और अनुराधा शान्ति के सामने नहीं पूछ सकती, यह पहेली शान्ति के मन को दुरूह सी लगने लगी और वह यहाँ तक कल्पना करने लगी कि आज मेरा भाई और भाभी भी मुझे पराई समझ रहे हैं।

उधर चन्दर से अनुराधा पूछने लगी—"क्या बात है? बोलते क्यों नहीं।" लेकिन चन्दर गुमसुम था। अनुराधा ने पुनः पूछा—"बोलिए न बबुआ जी, आप चुप क्यों हैं।"

"भाभी कुछ कहा नहीं जाता"—कहते-कहते चन्दर की आखें भर आयीं।

अनुराधा ने बड़े दुलार और अनुनय से पूछा—"मुझसे भी छिपाते हैं, बबुआ जी।"

चन्दर ने कहा,—'भाभी क्या कहूँ, तुमने कभी सुना था कि अपने देश में किसी ने अपनी बहन कसाई के घर दे दिया हो। लेकिन तुम देखोगी कि हमने अपनी बहन को केवल कसाई के घर ही नहीं दिया है, चरित्रहीन चोरों के हाथ में सौंप दिया है। मेरी बहन का जीवन अपने हाथों से हमने बरबाद कर दिया है। शान्ति का जीवन अब कभी सुखी नहीं होगा।" कहते-कहते वह तैस में आ गया और इतना तैस में आ गया कि वह कह बैठा "अब भी मेरा बस चले तो शान्ति की शादी किसी दूसरे से कर दूँ, वह चमार ही क्यों न हो, शान्ति सुख से तो रहेगी।"

"बबुआ जी जिस चीज को ढकने के लिए बूढ़े बाबू जी सूखी रोटी खाकर भी रह जाते हैं। जिस चीज को ढकने के लिए हमारी माता स्वयं बिना खाये लोगों को बुलाकर खिलाती है और जिस चीज को ढकने के लिए तुम्हारा बड़ा भाई भूखों रहकर परदेश में क्लर्की करता है, आज भरे समाज में एकएक आदमियों को पुकार-पुकार कर तुम उन चीजों को दिखा दो, तुम्हें लोग सत्यवादी हरिश्चन्द्र कहेंगे। कितनी अच्छी बात बोल रहे हो। औरों का नहीं कम से कम उस बहन का ही ध्यान रखते जिसकी शादी अभी कल रात में हुई है और जिससे बराबर यह सुनाया जाता रहा है कि ऐसे घर और बर से तुम्हारी शादी की जा रही जैसा योग्य बर और

पर वर्तमान समय में धरती पर है ही नहीं। अपनी उसी बहन को अब यह सुनाना चाहते हो, तुम्हारी शादी चरित्रहीन-चोर-भुक्खड़ से की गई। कन्स ने भी अपने बहन की शादी वसुदेव से की थी। क्या सोचेगी तुम्हारी बहन और कितनी तारीफ तुम्हारी होगी उन लोगों के बीच जो तुम्हारे घर में अतिथि के रूप में आकर, तुम्हें सम्मानित समझ कर बैठे हैं।"

चन्दर का क्रोध अनुराधा के ताप से बादल की भाँति छट गया पर उसके मन में घनघोर उमस बनी रही। वह कहने लगा, 'भाभी, तुम सब कुछ ठीक कह रही हो, मैं भी यही समझ रहा हूँ। किन्तु तुम्हीं सोचो कि ऐसा देखने और सुनने के पहले विष पी लेना कहीं अच्छा था।"

अनुराधा के आखों में तब तक आँसू आ गये थे। उसने भरे हुये स्वर में कहा "बबुआ जी आप मेरी भी बात आज टाल रहे हैं, ऐसा मुझे विश्वास नहीं था। अब जो आप के मन में आये, कीजिये, मैं नहीं रोकूँगी।"

चन्दर ने धीरे से कहा, "भाभी मैं अपना मुँह सी लेता हूँ, अपनी आँखें फोड़ लेता हूँ, चाहे जो इस घर में हो। जो तुम चाहोगी, वही करुँगा।"

तब तक केशर ऊपर आ गया। चन्दर को पुकारा और पूछा "जल-पान अभी तक नहीं भेजा।" उसने दूर से ही कह दिया कि भाभी ठीक कर रही हैं।

अनुराधा लपकी हुई केशर के पास गई भरे हुये स्वर में बोली, ' बबुआ जी ने बहुत पहले ही मुझ से कहा था। मैं काम में फँसी रही। सब औरतों को भोजन में (खिचड़ी और भात) में लगा दिया। हलवाई भी बारह बजे सबको खिला देगा। आदमी भेजिये अभी कसोरा लगा देती हूँ।"

'जल्दी करो', कहता हुआ केशर नीचे गया। जब तक आदमी ऊपर आयें तब तक अनुराधा ने कसोरा सजाकर रख दिया।

विवाह के घर में शान्ति को अकेले छोड़ना ठीक न था। इसलिये अनुराधा जलपान सहेजकर शान्ति के कमरे में जा रही थी। उसने देखा कि चदरा ताने कोने में कोई सो रहा है, वह ताड़ गई।

धीरे से जाकर उसने चेहरे से चद्दर खींच ली। चन्दर ने पीठ की तरफ घूमकर अपना मुँह ढक लिया। लेकिन उसके कपोल गर्म आसूओं से भींगे थे।

अनुराधा छटपटा उठी। बोली "बबुआ जी, तुम्हें मेरी कसम है, अगर रोये। मंगल घर में आँसू की बरसात। अगर आप न माने तो बारात के बिदा होते ही मैं जहर खा लूँगी।"

चन्दर ने मुँह दबा कर कहा—"भाभी रात भर का थका हूँ। जरा सो रहा हूँ और तुम सच मानो, मैं कुछ नहीं करूँगा और ये आँसू नहीं हैं, कडुआहट के मारे आँख से पानी गिर रहा है।"

अनुराधा ने कहा "यह किस चीज की कडुआहट है, यह मैं जानती हूँ। काम बिगड़ जाने पर पछताना ही हाथ लगेगा। मैं समझती थी कि आप आदमी हैं। जरूरत पड़ने पर हम औरतों को ढाढ़स बधायेंगें। लेकिन आज तो वह भी आशा डूब गई। अगर कहिये तो मैं भी आपके साथ ही बैठकर रोऊँ।"

चन्दर ने कहा, "भाभी तुम्हारी सब बातें मैं मानता हूँ, मुझे थोड़ी देर एकान्त में इसी प्रकार छोड़ दो, सब कुछ ठीक हो जायगा।"

"बबुआ जी, जलपान वगैरह तो कर लीजिये, नहीं तो स्वर-सेवर हो जायेगा!"

"अभी थोड़े देर में तुमसे माँग कर कर लूँगा, भाभी!"

अनुराधा शान्ति के पास गई। उसके अधर तो मुसकरा रहे थे किन्तु उसके चेहरे पर उदासीनता मूर्तिमयी हो बैठ गई थी।

उसने कहा—"शांति जीजी शादी होते ही हो तुम तो ऐसी हो गई जैसे पहचानती ही नहीं।"

"और भाभी आप। देवर और भाभी बैठकर पता नहीं क्या-क्या कोने में करें, मैं देख-सुन भी नहीं सकती। अच्छा सच बताओ, भाभी

तुमने चन्दर को अलग क्यों बुलाया था, कौन-सी ऐसी बात हो गई जो मेरी चोरी से चन्दर से कह रही थी।"

अनुराधा ने अपने भुजबन्धों में शान्ति को जकड़ते हुये कहा, "कौन-सी ऐसी बात हो गई तुम्हीं, बताओ, जो आज अपने भाभी पर विश्वास नहीं किया जा रहा है और क्यों नहीं हमेशा की तरह तुम स्वयं अपने भैया के दरबार में भाभी को परास्त करने के लिए आ गयी।"

"मैं खुद ही परास्त हूँ। तो भी अकेले मेरा भाई कम तो था नहीं और हम लोग सब्बे शूर-वीर हैं एक से एक भिड़ते हैं। अबला पर आक्रमण करना मैं अपने धर्म के खिलाफ समझती हूँ।"

"च च च, कम से कम आज स्वीकार तो किया कि तुम परास्त हो गई। जिस विचारे ने कल माँग में सिन्दूर भरा, उससे ऐसा न कहना, नहीं तुम्हारे भाई की बड़ी बेइज्जती होगी।"

अनुराधा और शान्ति ने कुछ देर तक परस्पर हास-परिहास कर मन बहलाया। पर दोनों के मन पर ऐसा पत्थर पड़ गया था जिसे हास्य की धारा बहुत दूर तक बहा कर न ले जा सकती थी। धीरे-धीरे भोजन का वक्त हो गया।

घरवालों ने यह सोचा कि खिचड़ी और भोजन की व्यवस्था एक साथ कर दी जाय। मामा जी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, उनके पूर्व आदेश में केवल इतना ही संशोधन हुआ कि पचीस व्यक्ति भात पर बैठेंगे। खिचड़ी खाने के लिए तथा भोजन करने के लिए लोग द्वार पर पहुँचे। मामा जी भी साथ थे। लड़के के पिता जनवासे में उन लोगों के साथ के लिए रह गये थे, जो भात खाते। मामा जी यहाँ ही भात पर उनका साथ देंगे।

लड़का चार और छोटे बच्चों के साथ मड़वे में खाना खाने बैठा। बारात के लोगों ने कहा कि आप पत्तल पानी लगवाइये। दुलहा खिचड़ी खाना शुरू करे, तो हम लोग भी जाकर पाँत में खाने बैठ जायँ।

केशर का आँगन इतना बड़ा था कि उसमें सभी लोग आ गए। कुछ लोग जिनकी रुचि खिचड़ी देखने की नहीं थी, वे बैठक में ही बैठे रहे।

खिचड़ी परोसी जाने लगी। इतना सामान बनाया गया कि पन्द्रह तश्तरी, दस कटोरे तथा पांच थाल सामानों से लद गये, यद्यपि प्रथा के अनुसार लड़के को केवल पाँच कवर ही खाना था।

होम हुआ। होम के साथ ही औरतों ने समवेत ललित स्वर में गायन आरंभ किया। होम समाप्त हुआ। प्रत्येक लड़के की थाली के सामने दो-दो रुपये और उनसे पहले ही वर के सामने पच्चीस रुपये कृष्णकान्त जी ने रख दिए। कृष्णकान्त जी नहीं चाहते थे कि वे बारातियों का सामना करें किन्तु केशर ने उन्हें अनुनय-विनय द्वारा वैसा करने के लिए बाध्य कर दिया था। उन्होंने हाथ जोड़कर मामा जी और वर से प्रार्थना की कि जूठन गिराया जाय।

वर मौन। मामा जी ने कहा—"अब लड़का आपका है, उसे आप ही मनाइये। और अभी तो यह आपकी ओर से हुआ है माता जी की ओर से भी कुछ होना चाहिए।"

पंडित कृष्णकान्त जी कुछ बोलें, इसके पूर्व ही केशर ने पच्चीस रुपये और वर की थाली पर रख दिए।

मामा जी अन्त में केशर से बोले—"आप और आप की पत्नी का अभी बाकी है।"

केशर ने पाँच रुपये और रख दिये। हाथ जोड़ कर बोला—"अब शुरू कराएँ।" तब से बीच ही में कोई बाराती बोल उठा कि लड़के का मन मोटर साइकिल लेने का है और एक दूसरा बाराती बोला कि सोने का तो कोई सामान मिला नहीं, वह भी मिलना चाहिए।

केशर ने कृष्णकान्त जी की ओर देखा। उनका चेहरा क्रोध से लाल हो रहा था। उसने झट मामा जी से कहा, "बाबू जी की तबीयत खराब है, अगर आपका आदेश हो तो उन्हें आराम के लिए भेज दूँ।"

"भेज दीजिए, कोई बात नहीं है, लेकिन बारातियों की बात रखिए, ऐसा मौका अब फिर थोड़े ही आने वाला है !"

कृष्णकान्त जी वहाँ से चले गए। वे इतने आपे से बाहर थे कि नमस्कार दंडवत करना भी भूल गए।

केशर ने हाथ जोड़कर मामा जी से निवेदन किया, "चादर के बाहर टांग पसारना हमारे लिए शोभा की बात नहीं है। हम लोग गरीब आदमी हैं, आपने हाथ पकड़ कर एक ऋण से मुक्त किया है इसलिए ऐसी कोई बात न होनी चाहिए जिसे टालने का दुःख हमें जीवन भर रहे।"

"अरे भाई कौन-सी बड़ी चीज माँग ही रहा हूँ, वह भी मैं नहीं माँग रहा हूँ, लड़के का मन है, उसका ध्यान आप को रखना ही चाहिए।

औरतें भी ओसारे से खिचड़ी का दृश्य देख रही थीं। अनुराधा भी उनके बीच थी। एक बाराती एकाएक बोल उठा कि मोटर साइकिल न सही, साइकिल ही सही।

केशर ने कहा—"गौने पर साइकिल दे दूँगा। अब भोजन होना चाहिए।"

"भोजन करो, बेटा।"

वर मौन।

मामा जी ने फिर ऊपर का वाक्य दुहराया।

पर वर फिर भी मौन।

एक बाराती महोदय फिर बोल उठे—"सोने का कोई सामान अब मिलना ही चाहिये।"

"मामा जी, जो वादा मैंने किया था उसका ड्योढ़ा दे चुका हूँ, अब कृपा कीजिए, गरीब हूँ, आपका रिश्तेदार हूँ, मेरी इज्जत रखिए।"

मामा जी ने कहा—"भाई जैसे इतना किया वैसे एक चीज और। कम से कम सिकड़ी लड़के को मिलनी ही चाहिए।"

केशर को मानो साँप काट गया। वह कुछ बोल नहीं सका, तबसे एक दो बारातियों ने आवाज लगाई—"यह वह घर है, जहाँ कभी सोने की

सिकड़ियाँ विवाह में पंडितों को दी गयी थीं, वहाँ वर को एक सिकड़ी न मिले, ऐसा नहीं हो सकता, मामा जी आपने भी बड़े मुँह क्या छोटी चीज माँगी, वह तो अपने आप मिल जाती।"

चन्दर से न रहा गया वह बोला—"जितनी शक्ति थी और जितना कहा था, उससे······"

इतना ही वह कह पाया था कि केशर ने लपक कर उसका मुँह पकड़ लिया उस समय केशर के चेहरे की हवाई उड़ रही थी। वह इतना दीन लग रहा था जितने दीन सुदामा कृष्ण-भिक्षा के पूर्व लगते थे। भीतर गरीबी की ज्वाला चिता के समान जल रही थी और ऊपर कुल-लाज की तृती थी।

केशर के भर्राए हुए स्वर से कातर वाणी निकलने वाली ही थी कि सोने की सिकड़ी वर के पास दमकती हुई ऊपर से आ गिरी, सब ने इसे देखा।

केशर ठक् रह गया। बारातियों में से कई ने एक साथ आवाज लगायी—"जिस घर में लक्ष्मी सोने की वर्षा करती है, उस घर के आदमी अपने को गरीब कहते हैं। मामा जी से गलती हो गई, नहीं तो पाँचों लड़कों को सिकड़ी मिलती।"

केशर का सूखा चेहरा हरा हो गया। वर की प्रतिष्ठा बची। दूसरे ही क्षण बारातियों को ऊपर ले जाकर पाँत में बैठा दिया गया। कुछ सज्जन बारातियों का ऐसा कहना था कि ऐसा सत्कार आज के जमाने में बड़े भाग्य से होता है। जितना इस लड़के को मिला, उतना कौन किसको आज देता है। लोग भोजन कर रहे थे, और उधर गाली मधुर स्वर में गूँज रही थी। एकाध तो कान लगाकर उसे सुन रहे थे और एक दूसरे से कहते क्या मजा आ रहा है। तब तक कहने वाले की ही बारी आ धमकती। ऐसे ऐसे ललित गायन गाये जा रहे थे कि सब रस-भोर।

पर वर महोदय को यह पसन्द नहीं था। वह नई लाइट के आदमी थे जो सारी गन्दगी करके भी वाणी के प्रकाश से, वस्त्र के चकाचौंध से लोगों को इस बात के लिये उत्प्रेरित करते रहते हैं कि लोग उन्हें सदाचार

की खान समझें। लेकिन वहाँ नाक भौं सिकोड़ने से काम चलने वाला नहीं था।

जब लोग भोजन करके गए तो केशर ने एकान्त में अनुराधा को यह कहने के लिए बुलवाया कि आज तुमने मेरी लाज रख ली पर उससे यह न कहा गया। वह बोल उठा "भात की व्यवस्था करो, लोगों को बुलाने जा रहा हूँ।"

लोग भात खाने आए। निकट संबंधियों को जिनकी संख्या दस के करीब थी, खाना बरतन में परोसा गया। शेष को पत्तल पर। वर का चाचा इस पर बिगड़ उठा। उसने कहा—"पंक्ति-भेद मुझे स्वीकार नहीं है, ऐसी जगह खाना ठीक नहीं है।"

केशर ने कहा—"बाबू जी मेरे यहाँ यह नियम है कि जिस थाल में हम भोजन कराते हैं, वह बारातियों की हो जाती है। इससे अधिक थाल देने की मेरी स्थिति नहीं है। इसलिए ऐसी गलती हो गई। सबको पत्तल में परोस देता हूँ।"

केशर पर बिगड़ते हुये वर के पिता ने कहना आरंभ किया—"बड़े आदमियों से नाता-रिश्ता करते समय यह सोचकर करना चाहिए था कि किससे सम्बन्ध करने जा रहे हैं। खच्चर घोड़ों में कभी नहीं खप सकते। दोनों को कष्ट होता है। ऐसी बात तो है ही, ऊपर से जलील भी करना चाहते हो। तुम्हारे जैसे कितने छोकरों को पैदा करके रास्ते पर लगा दिया।"

केशर की मुख मुद्रा अत्यंत मलीन हो उठी। उसने कल्पना न की थी कि उसे भरे समाज में इस प्रकार कभी जलील होना पड़ेगा। जिस चीज के लिये उसने आधा पेट भोजन किया, बिना वस्त्र पहिने दिनरात जी तोड़ श्रम करता रहा, वह चीज अनायास ही बिना किसी अपराध के आज लूटी जा रही थी। वह कर ही क्या सकता था क्योंकि उसके कंठ बँधे थे, उसका प्राण बिंधा था।

फिर वह गिड़गिड़ाने लगा—"मैं बालक हूँ यदि मुझसे कोई गलती हुई है तो बाबू जी आप जो चाहे दंड मुझे दे दीजिये, लेकिन मुझको समाज

में जलील कर अपनी प्रतिष्ठा को ठेस मत लगाइए।" यह कहते-कहते उसकी आँख से आँसू छलक पड़े।

मामा जी से भी नहीं रहा गया। वे केशर की ओर देखकर कहने लगे—"बड़े भारी मूर्ख हो। अरे सगुन-बगुन करो नहीं तो और नाराज हो जायेंगे इनकी नाराजगी और खुशी का क्या? ये तो एक क्षण में नाराज और दूसरे में प्रसन्न होते हैं।"

केशर ने सभी व्यक्तियों के सामने दो-दो रुपये रख दिये।

लड़के के पिता फिर गर्मा उठे, बोले—"देखा आपने (मामा जी की ओर इशारा करते हुये) मुझे नाऊ, धोबी, समझा है, दो रुपये रख दिए।"

केशर ने हाथ जोड़ते हुए कहा—"आपको मैं कैसे बताऊँ कि आप मेरे पिता जी से भी अधिक पूज्य हैं, पंक्ति भेद न हो, नहीं तो सभी रुपये मैं यहीं रख देता।"

"तो तुम हमें रुपयों का भूखा समझते हो। अब मैं तभी खाऊँगा, जब आँख के सामने से रुपये हटा लोगे। जल्दी करो, नहीं तो मैं उठ जाऊँगा।"

मामा जी ने हँसते हुये कहा—"भाई ए दोनों रुपये भी मेरे आगे रख दो। मैं इनकी बहन को दे दूँगा, वे तो बीस ही आने पर मान जाती हैं।"

बड़ी तेजी का ठहाका लगा। उस ठहाके में वे ऐसे डूबे कि उनका सर ही ऊपर नहीं उठा और वे झझकते हुए यह कह कर खाने लगे कि अच्छा समझ लूँगा।

केशर भय के मारे ऊपर गया। उसने गाली-गवाना बन्द कर दिया ताकि उसी बहाने ये फिर न नाराज हो जाँय।

गाली रोकना औरतों को नागवार लगा। चन्दर ऊपर ही बैठा था वह आपे से बाहर था।

मामा जी ने हँसते हुए जोर से कहा—"गाली बंद क्यों हो गई।" औरतों ने पुनः गाना आरंभ किया :—

कइसे देऊँ ललन जी के गारी,

गारी लागल प्रेम प्यारी गोइया, कइसे देऊँ मैं कृष्ण को गारी।

बाबा जे ओनकर नन्दजी हउअन, घर घर माँगे दहारी गोइया।
कइसे देऊँ ललन जी के गारी।
माता जे ओनकर यशोदा देईरानी, उजे मथुरासे आई उढ़ारी गोइया।
कइसे देऊँ मोहन जी के गारी।
बुआ जे ओनकर सहोद्रा देई रानी; उजे अर्जुन संग सिधारी गोइया।
कइसे देऊँ मैं कृष्ण को गारी।
बहनी जे ओनकर कृष्णदेई रानी; बिन व्याहन कन्या वियानी गोइया।
कइसे देऊँ ललन जी के गारी।

इधर गंभीर वातावरण में लोगों ने भोजन समाप्त किया। बर के चाचा ने केशर से पूछा—"तुम्हारे बाप जान कहाँ हैं झेंपते क्यों हैं सामने क्यों नहीं आते, बड़ी ऊँची पगड़ी बाँधकर मेरे घर गए थे।"

"वे अशक्य हैं; बीमार पड़े हैं, नहीं तो जरूर आते।"

"उनकी बीमारी मैं जानता हूँ उसकी दवा अभी कर देता हूँ। ठीक से उनकी दवा करो; कहीं ऐसा न हो कि टें बोल जाँय।"

केशर के लिए यह बात बर्दास्त की सीमा के बाहर हो गई; फिर भी उसने सहज समाधि-सिद्ध योगियों की भाँति राग-विराग का निग्रह उस समय कर लिया था।

तब तक कृष्णकान्त खड़ाऊँ पहने आ गये। वे सारी बातें सुन रहे थे, कहने लगे—"एक दो घंटे का मामिला है, कोई ऐसी बात नहीं होनी चाहिए कि जिससे जीवन भर के लिए कहना-सुनना रहे। यदि मेरे मरने में ही आपका लाभ, सुयश है तो आप यह समझ लीजिए कि मैं मर ही चुका हूँ। केवल साँस चल रही है।"

"आप तो अशक्य थे, थोड़ी देर चारपाई पर लोटे ही रहते तो क्या बिगड़ जाता। आपका जी नहीं माना कहने और सुनने के लिए आखिर चले ही आये। यह भी ध्यान नहीं रखा कि किससे बात कर रहे हैं।"

कृष्णकान्त जी ने जरा गंभीर होकर कहा—"मुझे सब ध्यान है, सब कुछ जानता हूँ।"

"तुम कुछ नहीं जानते, तुम्हें सब कुछ अभी जना दूँगा"—यह कहते-कहते वर के चाचा बाहर चले गए। उनके साथ कुछ बाराती भी।

दो चार सज्जन बाराती वहाँ रुके, उन्होंने पण्डित कृष्णकान्त से कहना आरंभ किया—"अति हो रही है घण्टे दो घण्टे का मामला है आप ही शान्त रहिए। निबाह देने में ही तारीफ है, भलों से तो सभी निबाह देते हैं आदमी वह है जो ऐसे लोगों के साथ भी निबाह दें, जो भले नहीं हैं।"

इतनी बात हो रही थी कि तबसे बारातियों का एक आदमी उन्हें बाहर बुलाकर लिवा गया।

जनवासे में आकर इस छोटी-सी बात ने बड़ा उग्र रूप धारण कर लिया। वर के पिता महोदय तुरन्त जनवासा छोड़कर जाने की तैयारी करने लगे। कुछ बारातियों ने उनको समझाया। लेकिन उनका क्रोध बढ़ता ही गया। मामा जी पर वे बिगड़ गए। मामा जी बिगड़ सुनकर उनके सहायक हो गए। वे आग पर मिट्टी का तेल छिड़कने लगे और वर भी किसी से पीछे नहीं था। अप-शब्द कहने में तो वह अपने मामा एवं पिता से भी आगे बढ़ गया था।

इधर घर की हालत भी बुरी हो गई थी, केशर छिपकर ऐसे कोने में बैठा था जो लोगों को ज्ञात नहीं। कृष्णकान्त जी यह हठ करके बैठे थे कि चाहे जो कुछ भी हो, मैं इनको मना नहीं सकता। चन्दर ऊपर अनुराधा के लाख रोकने पर भी आपे से बाहर था।

वह कह रहा था "ये सब कमीने हैं ऐसे नहीं मानने वाले हैं, जाते हैं तो जाने दें। और न जाने क्या-क्या।"

कुछ औरतें उसे समझा रही थीं पर वह कब का मानने वाला।

उधर शान्ति की स्थिति बड़ी विषम-सी हो रही थी यदि तुलसीदास जी के शब्दों में कहा जाय तो वह इस स्थिति में थी—

ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस,
तेहि पुनि बीछी मारि

ताहि पियाई वारुनी,
कहहु कवन उपचार ॥

चन्दर की बातें उसे विष-सी लग रही थीं किन्तु बोल नहीं सकती थी। वह पत्थर-सी हो गई थी।

चन्दर रुकता न था। बकता ही जाता था। बकते-बकते वहाँ तक कह ले गया कि मैं समझ लूँगा कि मेरी बहन सुहाग की रात में ही विधवा हो गई।

यह सुनना था कि अनुराधा अपने को सँभाल न पायी। जिस अनुराधा ने आज तक कभी अपने देवर को एक अपशब्द भी नहीं कहा था। उसने खींच कर एक चाटा चन्दर के चेहरे पर जड़ दिया। वह हक्का-बक्का हो गया कुछ बोल न सका किन्तु अनायास मर्यादा के गर्म आँसू उसकी आँखों से छलक पड़े। तबतक वहाँ चन्दर की माँ भी पहुँच गई थी। उसने कहा—बहुत ठीक किया। यह काण्ड दूर से शान्ति छिप-कर देख रही थी उससे भी न रहा गया।

वह वहाँ गई। चन्दर का हाँथ पकड़कर बोली—"भैया तुम इधर चलो, ए लोग ऐसे ही हैं।" शान्ति ने संभवतः पहली बार चन्दर को जीवन भैया कहकर पुकारा था।

करुणामय हाथ पकड़ कर क्रोध में अन्धा चन्दर कोहबर में जाकर चुप-चाप बैठ गया। शान्ति और वे दोनों मौन। दोनों एक दूसरे से कुछ कहना चाहते थे पर कह न सके।

अनुराधा को रह-रहकर ऐसा अनुभव होता था कि मेरा हाथ गलकर गिर जाना चाहिये, मैं पापिन हूँ। किन्तु उसे रह-रहकर इससे भी अधिक व्यथा इस बात की थी कि घर का कोई प्राणी नहीं दीख रहा है। अब थोड़े से के लिए सारा बना काम बिगड़ रहा है।

सभी घराती कृष्ण-कान्त जी के पक्ष में थे। उसी समय अनुराधा का संदेश उसके भाई को मिला कि ऊपर उसने बुलाया है।

उसके भाई राधा चरण तत्काल ऊपर गए। वह उन्हें तीसरे मंजिल पर एकान्त में ले गई।

उसने कहना शुरू किया—"भैया, आज इस घर की इज्जत डूब रही है। तुम्हारे बहन की इज्जत जा रही है, इसे बचाओ। मैं औरत हूँ नहीं तो स्वयं मैं चली जाती, उनका भी पता नहीं रहा। आप जाइये और उनको समझा बुझाकर जनवासे ले आइए।"

"अनुराधा मैं अभी जाता हूँ। वे ऊपर से उतरे।" बिना किसी से कुछ कहे जनवासे चले गए। इधर एकान्त में केशर बैठा आँसू बहा रहा था। आँसू की धार से विवेक की चेतना चमक उठी। उसे फिर कर्तव्य का ज्ञान हुआ। मुँह धोकर वह भी जनवासे में पहुँचा।

राधा चरण को वे लोग समझा रहे थे—"ये लोग बहुत नीच और कमीने हैं! इनके साथ मेरा कोई संबंध नहीं रह सकता। आप इनको यह समझा दीजिये कि लड़की की तुरन्त बिदाई कर दें, इसी में इनका हित है।"

राधा चरण जी ने कहा—"लड़की तो आप की है आज नहीं तो कल आपके घर जायेगी ही। गौने की बात थी, कैसे लड़की बिदा हो सकती है।"

"यदि लड़की आज बिदा नहीं हो सकती, तो उसकी कभी विदाई नहीं हो सकेगी।"

केसर ने बीच में ही कहा—"यदि आप की इच्छा है, तो लड़की विदा होगी।"

राधा चरण ने कहा—"आप मिलनी मड़वा और पलगवनी की तैयारी कीजिए और मैं घर पर सब तैयारी करके दस मिनट में आप लोगों को बुलाता हूँ। आप आइए, लड़की बिदा होगी।"

राधा चरण का परिवार अपनी प्रतिष्ठा धन और वैभव के लिये जाति में विख्यात था। उन्हे देख करके ही बाराती झेंप गए। जिस केशर को इन लोगों ने बार-बार जलील किया था उसको राधा चरण ने अपनी बहन दी थी।

केशर और राधाचरण दोनों ने सीधे माता जी के पास आकर उनसे कहना आरम्भ किया—"माता जी अब घर की इज्जत तथा शांति का हित इसी में है कि शान्ति को विदा कर दिया जाय।"

"कैइसे हो सकैला कौनो तैयारी विदाई क नहीं हव। गवना होयका तै भयल रहल।"

"सारी तैयारी मैं और अनुराधा एक घण्टे में कर लूँगा, आपका आदेश चाहिए।"

विदाई की बात वृद्धा के लिए बज्राघात थी। उसे ऐसा लगा कि माथा घूम रहा है। वह वहाँ से उठकर चलने लगी। थोड़ी दूर जाते ही उसके पाँव लड़खड़ा उठे, वह गिर पड़ी। विषाद का घात दौरा के रूप में उभर पड़ा।

उसे संभाल कर लोग कोने की कोठरी में ले गए। वहाँ उसे लिटा दिया। शांति भी वहीं चली आयी। कुछ देर तक वहाँ लोग थे किन्तु घर का काम संभालना था, इसलिए चाहते हुए भी अनुराधा, केशर और राधा चरण वहाँ न रह सके। केशर को रुलाई आ गयी। उसके मुँह से निकल पड़ा—"क्या बहन के साथ ही माँ से भी नाता टूट जायगा?"

"आज आप को क्या हो गया है। आपकी गम्भीरता से तो हम लोग गम्भीर होते हैं। ऐसी अशुभ बात शुभ में मुँह से क्यों निकालते हैं?"

केशर चुप रहा। चुप्पी को भङ्ग करने के लिए राधाचरण ने कहा—"यदि ऐसी ही बात थी तो शांति से मेरी ही शादी कर देते। आपके घर पर ही रहती। मुझे भी यहाँ आने पर आराम रहता।" लेकिन केशर के चेहरे पर हँसी नहीं आयी।

हार मानकर राधा चरण ने कहा—"अनुराधा ऊपर संभालती है मैं बाबूजी को संभालता हूँ। बाहर बाराती बैठेंगे और देखो मिलनी पर नाच भी होगा। जाकर बाहर की व्यवस्था तत्काल संभालो।" केशर वहाँ से चला आया।

राधाचरण ने अनुराधा से चुपके से पूछा—"गवने की व्यवस्था हो सकती है, या नहीं।"

"गवने की बात तो थी नहीं, इसलिए इन्तजाम नहीं किया गया। लेकिन घर से ही सारा प्रबन्ध कर दूँगी।"

यह बात अनुराधा कह तो रही थी पर उसकी वाणी लड़खड़ा रही थी। घर में न तो एक गहना, न गवने के उपयुक्त देने लायक वस्त्र। मिठाई निश्चित रूप से इतनी बची थी कि दस कुण्डे पाहुर के रूप में दिए जा सकते थे।

राधाचरण ने अनुराधा से कहा—"मनीबेग लाओ और दस पन्द्रह जो भी कुण्डे भर सकें, भरवाओ, संकल्प दिया हुआ सब सामान एकत्र कराओ।"

अनुराधा लपक कर अपने भाई का मनीबेग ले आयी और बोली—"मेरे पास रुपये थे, इसलिए रुपये की जरूरत नहीं पड़ी।"

"मैं जानता हूँ कि रुपयों की जरूरत क्यों नहीं पड़ी।" कहते हुए राधाचरण नीचे आए। बाबू जी के पास गये। हाथ जोड़कर बोलने लगे—"बाबू जी मेरी एक बात मान लीजिए। मैं वचन देकर आया हूँ, घर भर ने बात मान ली है, यदि आप भी मान जाँय, तो मेरी इज्जत बच जाय"।

"मुझसे पूछने की क्या जरूरत है। तुम्हारी बात मैं न मानूँगा, यह कल्पना कैसे कर ली?"

"कहते भय लगता है, बाबूजी।"

"तब बिना कहे ही जाकर वह काम कर लो। मुझे कोई आपत्ति न होगी।"

"बाबू जी, शांति आज बिदा होगी।"

"यह तो बड़ा बुरा होगा।"

"सारी व्यवस्था हो चुकी है, केवल आपका आदेश बाकी है।"

"जिसे सब चाहते हों, उसमें बाधक बनकर कलंक नहीं लूँगा।"

राधाचरण ने कृष्ण कान्त जी के पैर पकड़ लिए और कहने लगे—"मुझे आशा नहीं थी, बाबू जी···। आप देवता हैं।"

कृष्णकान्त की आँखें भर आयी थीं। राधाचरण ने फिर कहा—बाबू जी यह आपकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध होगा, यदि आप उनके सम्मुख गए।"

"वचन देता हूँ। न जाऊँगा, न कुछ बोलूँगा।"

राधाचरण जी बाहर आये। केशर से कहा—"मैं आ जाऊँ, तब उन्हें बुलाने जाइएगा।"

राधाचरण आध घंटे में लौट आए। उनके साथ एक बहुत बड़ा बण्डल था, केशर से उन्होंने कहा—"अब जाइए, बुला लाइए।"

राधाचरण अनुराधा के पास आए, बोले—"कपड़े में बक्स बँधा है। उसमें सामान है। सब शांति के लिए है, उसके साथ जायगा।"

"मैंने तो घर से ही तैयारी कर ली थी, इस सामान की क्या जरूरत थी।"

"जो मैं कह रहा हूँ, उसे सुनो। मेरी बात में टांग अड़ाने की आदत छोड़ दो। अब तो तुम बच्ची नहीं हो। मैं जनवासे उन्हें लिवाने जा रहा हूँ।"

राधाचरण जनवासे की ओर गए। अनुराधा यह सोच रही थी कि अपने सब कपड़े शांति जीजी को दे दूँगी, लेकिन उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि गहना कहाँ से दूँ। एक अंगूठी केशर ने उसे दी थी, जो पलगवनी पर वह वर को देने वाली थी। वह सोचती थी कि अगर शांति को यों ही भेजा गया तो उसकी ससुराल में बड़ी दुर्गति होगी।

उसने बक्स खोला, बक्स के भीतर एक मखमल का बक्स था। उसने उसे खोला, उसमें दो अंगूठी, तोड़ा, लाकेट और इयरिंग थी। सात साड़ियाँ, दो सिल्क की तथा पाँच बनारसी उस बक्स के बाहर।

अनुराधा ने चैन की साँस ली। औरतों को बुलाया यह दिखाने के लए कि क्या-क्या सामान विदाई में दिया जा रहा है।

राधाचरण इतनी द्रुतगति से जनवासे गए कि केशर के साथ ही वहां

पहुँच गए। उन्होंने जाते ही वर के चाचा और मामा जी को अलग बुलाया।

"देखिये तीन प्रयोजन वहाँ करने हैं, मड़वा, पलगवनी एवं मिलनी। मुझे यह नहीं मालूम कि इन लोगों ने इन अवसरों पर क्या देने का वचन दिया है लेकिन मैं चाहता हूँ कि सब काम शोभा-पूर्वक समाप्त हो, इसलिए बता दीजिये कि कितने में आपकी प्रतिष्ठा रहेगी।"

वे सन्न हो गये, पर मामा जी तो अवसर का लाभ उठाना चाहते थे। वे बोले—"इक्यावन रुपया मड़वे पर, एक सौ एक रुपया मिलनी पर, पलगवनी पर जो लड़के के भाग्य में होगा, मिलेगा, लेकिन एकाध अगूंठी तथा सौ रुपये से कम मिलने पर लड़के का मन दुखी होगा। हाँ, गवने पर विदाई में गले के लिए सोने का कुछ होना चाहिए और आठ दस कुण्डा मिठाई।"

"आपका आदेश स्वीकार है और मैं चाहता हूँ कि सब कार्य एक साथ ही समाप्त हो जाय ताकि प्रसन्नता पूर्वक आप लोग जायँ। एक प्रार्थना मेरी भी है कि मेरे घर पर इन लोगों ने पचीस धोती परजुनियों को दी थी, आप को भी देना चाहिए यदि आप कम धोती ही लाये हों तो सात सात रुपये के हिसाब से रुपये उन्हें दे दें, आपकी माँग के अतिरिक्त आप को इन प्रयोजनों पर उतना और मिल जायगा।"

"मंजूर है।"

बारात दरवाजे पर आयी। महफिल सजी। बाहर गायिका का गायन आरंभ हुआ। वह गाने लगी :—

मोर धानी चुनरिया इतर गमके।
धना वारी उमरिया नैहर तरसै॥
सोने के थारी में जेवना परोसेवँ।
मोरा जेवनवाला बिदेसाँ तरसै॥
झँझरे गेडुववा गंगा जल पानी।
मेरा घूँघटवाला बिदेस तरसै

लवँगा इलाईची के बीड़ा जोड़ाएवँ ।
मेरा कूँचनवाला बिदेसाँ तरसै ॥
कलिआ चुनि चुनि सेजा लगाएँ ।
मेरा सूतनवाला बिदेसाँ तरसै ॥

गाना पूरा हुआ । केशर ने मड़वा छोड़ने के लिए आग्रह किया, चार आदमी भीतर गए । एकसौ एक रुपये राधाचरण जी केशर के हाथ पर रखकर बोले—"दे दीजिए, माता जी ने भेजा है ।"

लोग बाहर आये मिलनी का आयोजन आरम्भ हुआ । बारातियों की संख्या सौ रह गई थी । एक एक बाराती से घराती मिले, सब को दो दो रुपये दिये गये । वेश्या गा रही थी :—

ऊँचे चबूतरा बइठे लेन केशर रामा,
करैं बहिनियन क मोल,
तूती बोलेला,
बड़की क माँगे पाँच रुपया,
छोटकी क बोल अनमोल,
हाय राम छोटकी क बोल अनमोल,
तूती बोलैला ।

राधाचरण सरंगी वाले के पास गए । उसे धीरे से दस रुपये दिये और कान में कुछ कहा । उसने इशारे से गायिका को बुलाया और कुछ उससे कहा । गायिका गाने लगी :—

ऊँचे चबूतरा भडुआ बैठेलेन वकील रामा,
करै बिटिअवन क मोल,
तूती बोलेला,
बड़की क माँगे दस, बीस रुपया,
छोटकी क बोल अनमोल,
राधाचरण भैया बोलैले बोली
बौले न कोई बोल,

कि हाय राम बोलै न कोई बोल
तूती बोलैला।

गाने के बीच में जो ठहाका लगा कि बारातियों के चेहरे झेंप गए। लेकिन बाराती रईस तो थे ही नहीं, जो गायिका के बोल बदलवा देते। उधर बारातियों को धर-धर कर वह परेशान हो जाती एक दो रुपये मिलते। इधर घराती बिना माँगे ही उस पर नोटों की वर्षा करने लगे।

शोक का वातावरण आल्हाद में परिणित हो गया।

उधर शांति को जब यह पता लगा कि आज अभी उसकी बिदाई है तो आँसू से वह नहा उठी। सब कार्य में व्यस्त, उसके पास केवल कुछ मेहमान।

उसके पिता जी उसके पास जाकर बोले, "बेटी"। उनका स्वर सुनते ही सब औरतें वहाँ से हट गई।

"तुम्हारा पिता बहुत गरीब है, तुम्हें कुछ न दे सका। जीवन भर बातों से सन्तोष देता रहा आज जाने की वेला में भी वह तुम्हें बातों से बहला रहा है, क्षमा करना और याद रखना:—

अनसूया ने कभी सीता से कहा था और आज मैं तुमसे कह रहा हूँ...
मातु पिता भ्राता हितकारी, हितप्रद सब सुन राजकुमारी॥
अमित दान भर्त्ता वैदेही, अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज, धरम मित्र अरु नारी, आपद काल परिखिअहिं चारी॥
वृद्ध रोग बस जड़ धन हीना, अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किय अपमाना, नारि पाय जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक व्रत नेमा, काय बचन मन पति पद प्रेमा॥
और बेटी मेरी तुम्हें आशीर्वाद है—

अचल होंहि अहिवात तुम्हारा,
जब लौं गंग जमुन की धारा,

यदि तुम इसे पिता के रूप स्वीकार न कर सको तो एक वृद्ध ब्राह्मण के आशीर्वाद के रूप में ग्रहण कर लेना, मैं चला।"

शांति जोर से रो पड़ी—"बाबू जी"...। कृष्णकांत घर के बाहर।

सभी कार्य प्रयोजन सकुशल सपन्न हो रहे थे पलगवनी चल रही थी। वर की वांछा भरपूर पूरी की गई। ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी गई कि वे कुछ बोल न सकें।

एक महिला ने उनसे कहा "तुम्हारी सास की तबीयत बहुत ज्यादा खराब है, वे होश में नहीं हैं, उनकी ओर से इक्कीस रुपये हैं।"

लेकिन वर को कहाँ चेतना कि वह जाकर अपनी माँ के चरण छुए। उससे यह भी न पूछते बना कि माता जी की तबीयत कैसी है। यह सबको बुरा लगा, यहाँ तक कि शांति को भी। वर महोदय नीचे आये।

राधाचरण ने लड़के के चाचा से कहा कि वर को यहीं छोड़ दीजिए, बारात लेकर जनवासे में चलिए, आध घण्टे में दुलहा और दुलहिन लेकर पहुँचता हूँ।

उधर बारात उठी, जनवासे में जाने के लिए और इधर चन्दर डाक्टर को लेकर घर पहुँचा। वर के चाचा के पूछने पर राधा-चरण ने कहा कि माता जी की तबीयत खराब है, कोई बात नहीं है।

लेकिन उनका हृदय न पसीजा। उन्होंने समझा कि लड़की बिदा न करने के लिए यह नया नाटक है। लेकिन राधाचरण ने उनके कहने के पहिले ही कह दिया—"ठीक आध घण्टे में पहुँच रहा हूँ"

कृष्णकांत जी बारात के जाते ही चदरा ओढ़े घर से बाहर निकले। उन्हें यह ज्ञात हो गया था कि उनकी पत्नी पर दौरे का भयंकर प्रकोप है। पर वे उस करुण-क्लान्त वातावरण में अपने को घर पर नहीं रोक सके। लड़की की बिदाई, हाथ खाली, प्रतिष्ठा का संस्कार सब रह रहकर उन्हें बिच्छू के डंक से डसते। उससे मुक्त होने का एक ही उपाय था, घर छोड़ कर, बाहर चले जाना।

उन्हें जाते हुए तो बहुतों ने देखा पर किसी ने यह कल्पना नहीं की कि वे बिदाई के बाद ही लौटेंगे।

डाक्टर नीचे आया। चन्दर उसका बेग उठाए था। राधा चरण जी भी डाक्टर के साथ सड़क तक पहुँचाने गए। दवा की सारी व्यवस्था

डाक्टर ने कर दी थी, चिंता की कोई बात न थी। यह चन्दर के लिए और उस घर के लिये राहत की बात थी।

सामान्य लोकाचार जो बाकी थे, सम्पन्न हुए। गाँठ जोड़ने के लिए वर बुलाया जाने वाला था। शांति अपने को रोक न पायी, उसकी सिसकी फूट-फूट कर रोने में परिवर्तित हो गई। वह दौड़ी हुई अपने माँ के पास गयी। माँ में कुछ चेतना तब तक आ गई थी। वह चारपाई पकड़ कर रोने लगी। अनुराधा तथा शांति की कुछ सहेलियाँ उसके साथ थीं।

माँ से न रहा गया। डाक्टर की राय प्रयोजन के घर में कौन मानता है। वह उठकर बैठने लगी। मन की एकाग्र पीड़ा ने हृदय को डुला दिया, वे फिर बेहोश होकर गिर गयीं। हाय, हाय मच गया।

केशर, चन्दर तथा राधाचरण समाचार पाते ही लपके। राधा चरण और चन्दर ने औरतों से वहाँ से हटने के लिए कहा। शांति वहाँ से हटना नहीं चाहती थी लेकिन माँ की शुभेच्छा ने उसे तत्काल वहाँ से उठा दिया। उसका रोना धोना, रुक गया। राधाचरण जी से डाक्टर ने कहा था कि एकाध बार यदि होश आकर फिर बेहोशी आए तो घबड़ाइएगा नहीं। कोई खतरा नहीं है। इन्हें शान्ति और आराम चाहिए। सुई लगाने के लिए तब तक डाक्टर का कम्पाउण्डर भी आ गया था। उसे ऊपर बुलवा कर सुई आदि लगवाई गई। उसने कहा घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है। एक घण्टे में सब ठीक हो जायेगा।"

अनुराधा ने दिये जाने वाले सारे सामान औरतों को दिखा दिये थे। औरतों ने उनकी प्रशंसा हृदय से की थी। एकाध ने तो यह भी कहा कि आज घर में ये सामान न होते तो वे लोग तो आज घर की इज्जत लूट ही लेते।

राधाचरण जी वर को लाए, गाँठ जोड़ा गया। शांति का आंचल भरा गया पर शांति इतनी उदासीन थी कि क्या हो रहा है, उसे कुछ भी ज्ञात न हो सका। कभी वह रह-रहकर सोचती, जाते समय माँ से आशीर्वाद न ले सकी, कभी सोचती, केशर और चन्दर भैया से जाते समय बात भी न हो सकी। इससे भी अधिक दुःख उसे इस बात का था

कि वह सम्भवतः ऐसे अज्ञात स्थान में जा रही है, जहाँ उसका कोई नहीं।

अन्ततोगत्वा बिदा की बेला आ पहुँची। नीचे शांति को लेकर महिलाओं की जमात द्वार तक आयी आँसू से सबका आनन तर था। शांति पालकी में बैठाई गई, बर भी बैठे। गली की मोड़ तक औरतों को पालकी पहुँचानी थी। विधि का विधान कितना कठोर है इसका भान ऐसे ही अवसरों पर होता है। एक ओर तो वियोग की लहरों में सब डूब रहे थे दूसरी ओर औरतें कण्ठ से करुण स्वर के मंजुल मोती बिखेर रही थीं। एक का घर छोड़कर दूसरे के घर बसाने की मङ्गल बेला में गाना अनिवार्य जो है :—

कौन निरमोहिया हो, डड़िया फनावै हो, कौन निरमोहिया हो डड़िया
के मारल ओहार।
सइयाँ निरमोहिया हो, डड़िया फनावै हो,
भइया निरमोहिया हो डड़िया के मारल ओहार।
खाइलेउ बेटी खाईलेउ बेटी, आपन दही भात हो,
होत भिनसहरा बेटी बिदवा तोहार।
संचउ माई संचउ माई, आपन दही भात हो,
मगत कलेउआ हो भाई उठलिउ रिसियाई।
भइया कलेउआ हो माई हँसी खलिदेउ हो,
हमरे कलेउआ हो भाई उठलु झहनाय।
चार कहरवा हो पूत पँचये दमाद हो, धियवा,
मोर लिहले परायल जाय।
ठाढ़ि रह लोकनी, ठाढ़ि रह लोकनी कहे समझाय हो,
राउर हमरे समधिन से कहब समझाय।
अड़पि जिनि बोलि हैं, तड़पि जिन देइहैं गारी हो,
कडुवी निदिय धिया जिन जगइहैं धियवा मोरि रे बार।

अइपि हम बोलवै, तइपि जिन देइहैं गारी हो,

कच्ची निंदिया वह हम जगइबै लक्ष्मी हमार ;

पालकी आगे बढ़ी। त्यों-त्यों शान्ति नए संसार की ओर कदम बढ़ाती पीछे छूटे हुए संसार की एक-एक प्रिय वस्तुएँ उसे पकड़-पकड़ कर रोक लेतीं। वे उससे कुछ कहतीं। कहते-कहते मौन हो जातीं और अनुराधा केवल आँखों से मन के मोती का अंजलि दान दे उन्हें विदा करती।

उसका नटखट मुँह लगा भाई चन्दर उससे मिल न सका था। वह माँ की चारपाई पकड़े एकान्त में बैठा सिसक रहा था। वह अपने राम सदृश्य भाई केशर से भी कुछ न कह सकी। वह सीता सदृश भाभी से भी जाते समय मन की बात न बता पायी थी। बाबू जी का पता न था, इन्हीं बातों में वह डूबती उतराती थी। जिस रास्ते से रोज निधड़क वह आ जा सकती थी। आज उसी रास्ते को सदैव के लिए पराया बना कर जा रही है। ऐसी स्थिति में मुँह छिपाकर पालकी में छिपकर बिना किसी से कुछ कहे जाना ही तो उचित था।

महिलाएँ लौटीं, उसके पूर्व ही माँ चैतन्य हो चुकी थी। चन्दर ने रोते-रोते सभी बातें उसे बता दीं। विदाई के प्रबन्ध ने जहाँ माँ को संतोष दिया, वहीं बेटी के विराग ने उसके शरीर के रोयें-रोयें में आग लगा दी।

यद्यपि चन्दर वहाँ से कहीं न हटने के लिए स्थितिबद्ध था, तो भी माँ की वाणी ने बाध्य कर दिया कि वह स्टेशन तक जाय।

पहले वह जनवासे गया। जनवासे से लोग चल चुके थे। वह खाली हाथ स्टेशन पहुँचा, गाड़ी आ गई थी। लोग उसमें बैठे थे। और सेकेण्ड क्लास के डिब्बे में अकेली शांति।

केशर यहाँ शांति से कुछ बातें करना चाहता था लेकिन उसने यह आवश्यक समझा कि अतिथियों से बात की जाय, नहीं लोग चलते-चलाते बुरा न मान जायँ। साथ में केशर नियमतः मजदूरनी भेजना चाहता था। लेकिन बड़ी चालाकी से उसे बरातियों ने टाल दिया। मजदूरनी को उसने समझा कर घर भेज दिया।

चन्दर बिना किसी से पूछे डब्बे में घुस गया, शांति के पास। शांति उसे पकड़ कर सिसकने लगी।

वह रोते हुए बोला—"रोती क्या हो मैं जल्दी ही आऊँगा। हाँ, हाँ चौथी पर, और माँ की तबीयत अब ठीक है।"

सिगनल डाऊन हुआ लोग डिब्बे में चढ़ आए, चन्दर उतर गया। बाहर प्लेट-फार्म पर एक भिखारी खिन्न वीणा ले टहल रहा था, वह भी उसी डिब्बे में चढ़ गया। गाड़ी सीटी देकर चलने लगी। सरस, रसीला, किन्तु करुण स्वर डब्बे में गूँज जाय :—

आज सोहाग कै रात चंदा तुम उइहौ।
चंदा तुम उइहौ सुरुज मति उइहौ॥
मोर हिरदा बिरस जानि किहेउ मुरुगा जनि बोलऊ।
मोर छतिया बिहरी जानि जाइ तु पहुँच जिनि फाटेऊ॥
आज करहु बड़ी राति चंदा तुम उइहौ।
धिरे धिरे चल मोरा सुरुज बिलम कर आइहौं॥

केश कहि न

जाय का कहिए

बारात विदा हो गई. उसे लोग स्टेशन पर छोड़ कर घर आए। चौथी एक सप्ताह में जानेवाली थी। लेकिन एक सप्ताह अतिथियों की विदाई तथा प्रयोजन पर आये सामानों को लोगों के पास पहुँचाने में ही बीत गए।

राधाचरण जी एक ही दिन बाद घर चले गए। उनसे यह तय था कि यहाँ से साथ ही चौथी पर चलेंगे। वे ठीक समय पर लौट आए। लेकिन यहाँ चौथी की व्यवस्था अन्य कार्यों में व्यस्त रहने के कारण तथा अर्थाभाव से न हो सकी।

जाते समय राधाचरण और अनुराधा में थोड़ा-सा वाद-विवाद हो गया था। अनुराधा ने उनसे उस समय कहा था कि कितना रुपया आपका खर्चा हुआ था, साथ लेते जाइये।

हँसते हुए राधाचरण ने उत्तर दिया था, कि वह मेरी ओर से न्योता है।

"लेकिन न्योता तो अलग से आया था। रुपया आपको बताकर ले लेना चाहिये, पता नहीं कैसा रुपया था।"

"तुम्हारे बाप का रुपया था, तुम्हारी माँ ने दिया था और इसलिए दिया था कि कार्य प्रयोजन का घर है। अनुराधा की कोई अभिलाषा अधूरी न रह जाय। मैंने उनके आदेश का पालन मात्र किया। और जिसका रुपया था, उसको मैं सारा हिसाब दे दूँगा। शेष तीन सौ रुपये बच गए हैं उसे ले लो। चौथी आदि पर खर्चा कर देना, हिसाब साफ हो जायगा।"—क्रोध में राधाचरण ने कहा था।

अनुराधा को यह बात पसन्द नहीं आयी। पसन्द न आने का कारण यह था कि अनुराधा यह नहीं चाहती थी, उसके भाई तक को यह बात ज्ञात हो कि इस घर की आर्थिक प्रतिष्ठा चौबीसों घंटे कच्चे धागे से लटकती रहती है। उसने कहा था कि रुपयों की कोई जरूरत नहीं है, इस पर राधाचरण नाराज हो गये थे। उन्होंने उस समय कहा कि जब से तुम पैदा हुई तब से मैं तुम्हें देखता, और जानता हूँ, झूठ बोलने की तुम्हारी आदत नहीं गई। अपने तो तकलीफ सहती ही हो, हम लोगों को भी

तकलीफ देती हो। मैं सब जानता हूँ। घर के आदमियों से नहीं छिपाया जाता।

उन्होंने बात-चीत के सिलसिले में यह भी कहा था कि इस घर से हमारा संबंध हो गया है। यदि एक ही रोटी हो तो भी बाँट कर खा लेनी चाहिए। तो फिर उसमें छिपाने की क्या जरूरत।

अनुराधा ने समझा इसमें आर्थिक दृष्टि से हमारे घर की हँसी उड़ रही है इसलिए रुपया लेने से उसने साफ इनकार कर दिया। बिगड़ कर राधाचरण चले गए थे किन्तु बाद में उन्हें अपनी भूल रास्ते में ही मालूम हो गई। उन्हें यह पछतावा था कि क्यों नहीं चलते समय माता जी एवं बाबू जी के चरण छूते समय ये रुपये उनके चरणों पर रख दिये।

इधर समस्या थी, दोनों समय अतिथियों के सत्कार, उनकी यथा योग्य विदाई तथा बाजार के भुगतान की। उधर शांति के साथ ही घर की समस्त लक्ष्मी पैर तोड़ कर चली गईं। साथ ही समस्या यह थी कि कैसे चौथी भेजी जाय, घर में न तो फूटी कौड़ी थी, न कोईऐसा सामान ही जो घर की लाज बचा ले। पेन्सिन मिलने में भी काफी समय शेष था। उतने दिन चलाना किसी भी परिस्थिति में असम्भव था। स्थिति ऐसी आ गई कि राधाचरण जी के लिए बाजार से मँगाकर जलपान कराना असम्भव था, बची हुई मिठाइयाँ दी जातीं थीं।

राधाचरण ये बातें समझ गए थे। उन्होंने रास्ते में आए विचारों को मूर्त्तरूप दिया और नीचे ही पंडित कृष्णाकान्त जी से कहा कि बाबू जी मुझसे एक अपराध हो गया है, आप क्षमा करें। जब मैं घर से आया था तो बाबू जी ने पाँच सौ रुपये यहाँ की शादी में खर्च करने के लिए दिये थे। उनमें से तीन सौ बच गया था मैं उसे बचाकर ले गया तो माता जी और बाबू जी मुझ पर बहुत बिगड़े, यहाँ तक कह दिया कि हम लोगों के न रहने के बाद तुम्हारी चलेगी तो तुम अपने बहन तक को मूस डालोगे। वे तो उसी दिन दूसरी गाड़ी से मुझे वापस कर रहे थे किन्तु मैंने कहा कि चौथी पर जाऊँगा, तो लेता जाऊँगा। बड़ी

मिन्नत पर तो माने। यह कहते-कहते तीन सौ रुपये के नोट चरण छूकर उन्होंने कृष्णकांत के चरणों पर रख दिए।

"यह क्या कर रहे हो, जितना मेरे यहाँ शादी में नगद खर्चा नहीं हुआ, उससे अधिक तुम लोगों ने दे दिया। किसी की सहायता करते समय यह ध्यान देना चाहिए कि सहायता करने में कहीं अपना ही होम न चढ़ जाय।"

"बाबू जी दस हजार रुपये आपने शादी में खर्च किये और सौ दो सौ रुपये जो मेरे घर से निमन्त्रण के रूप में आए, उसे आप इतना अधिक बता रहे हैं कि जिसकी कोई सीमा नहीं। बड़े, कृपालु होते ही हैं।"

"सुना बिदाई का सामान भी तुम्हीं लाए थे।"

"लाया तो मैं ही था बाबूजी, किन्तु रुपये अनुराधा ने दिये थे।"

"वह कहाँ से लायेगी।"

"आप उसको नहीं जानते, बड़ी भीतरिया है। जब से वह दो वर्ष की हुई पंद्रह रुपये महीने उसे और मुझे भी खर्च के लिए पिता जी से शादी के पूर्व तक मिलते रहे। मैं तो उसकी तरह कंजूस नहीं, खर्च कर देता था। वह रुपया बटोरती। जब बाबू जी को यह बात ज्ञात हुई तो उसकी मर्जी से पोस्ट आफिस में जमा करने लगे। बाबूजी अब भी जमा करते हैं, खाता बाबू जी के ही नाम से है।"

'अब क्यों जमा करते हैं।'

"यह तो उनसे ही पूछिए। मैंने एक बार पूछा था, तो नाराज हो गए थे कि तुम सैकड़ों रुपये महीने फूँको और मैं अपनी लड़की को पंद्रह रुपये भी नहीं दे सकता। फिर मेरी हिम्मत बैठ गई।"

कृष्णकान्त जी ने कहा—"घर गृहस्थी में तो आए दिन खर्च लगा ही रहता है, यह सब तो ठीक नहीं।"

"आप लोगों का आशीर्वाद गलत को भी ठीक कर देता है।"

इस प्रकार लगभग पोस्ट आफिस में तीन हजार रुपये अनुराधा

के जमा थे जिसमें से उसने हजार रुपये मँगा लिए और लोगों से कह दिया होगा नैहर की तारीफ के लिए कि मेरे घर से आया है।"

"यह बात मेरी समझ में नहीं आयी कि संकल्प का रुपया वापस बचाकर तुम चले भी गए और यह भी कहते हो कि अनुराधा के रुपये से बिदाई हुई। जो कुछ भी हो, तुम जानो, तुम्हारी बहन जाने। और जाओ ऊपर ही मिल लो, केशर और चन्दर घर पर नहीं हैं।"

इधर राधाचरण ऊपर आकर अनुराधा को तंग करने लगा और यहाँ तक भाई और बहन में बात बढ़ गयी कि राधाचरण ने कहा "मैं तुम्हारे घर नहीं आया हूँ। अपने जीजा के घर आया हूँ, आज से बोल-चाल बन्द।"

इधर कृष्णकान्त जी अपनी पत्नी के पास गये। उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा नही था किन्तु अधिक बुरा भी नहीं, उन्होंने उसे तीन सौ रुपये दिये और कहा—"चौथी की तैयारी करो। केशर और चन्दर से सब सामान मँगवा लो, परसों भेज दो।"

वृद्धा सकपका गयी, किन्तु कृष्णकान्त ने दूसरे ही क्षण कह दिया, "कर्ज नहीं लिया है, विश्वास रखो, अपना रुपया है।"

उधर अनुराधा और राधाचरण का विवाद टनगन में परिवर्तित हो गया था और थोड़ी देर के मौन के बाद तृतीय पुरुष में सर्वनाम और विशेषण के सहारे व्यंग भरी बातों का आदान-प्रदान हो रहा था। स्थिति बिगड़ती देखकर राधाचरण ने अपनी सारी वार्ता अनुराधा को सुना दी और यह समझा दिया कि मैं अच्छी तरह जानता हूँ तुम्हारी खटिया कटी नहीं है किन्तु अब तुम्हारी प्रतिष्ठा इसी में है कि तुम भी इस बात के लिए झूठ बोलो।"

"लेकिन मैं तो उनसे सत्य कह चुकी हूँ। वे बहुत बिगड़े और बोले कि मैं ससुराल का भड़ुवा नहीं बनना चाहता। चाहे मुझे भीख माँगनी पड़े, मेहनत मजदूरी करनी पड़े, बोझा ढोना पड़े। मैं तुम्हारे नैहर की रकम एक-एक पाई अदा कर दूँगा और तभी से बहुत बेरूख होकर बातें करते हैं। उनसे झूठ नहीं बोला जायगा।"

"औरतों को बात बदलते कितनी देर ही लगती है और अपने भाई को बचाने के लिए वे उतनी ही सरलता पूर्वक ऐसा काम कर सकती हैं जितनी सरलता पूर्वक मुन्ना वांछित चीज के लिए रो सकता है।"

भाई-बहन की यह बात ऊपर चल ही रही थी। केशर को कृष्ण-कान्त सारी बातें नीचे बता चुके थे। केशर ऊपर आया जिस राधा-चरण के साथ कार्य प्रयोजन के दिनों में अनुराधा से दोनों साथ-साथ डटकर बात करते थे उस अनुराधा का घूँघट आज अपने आप खिंच गया, ओंठ तक।

आज केशर के पाँव में भी ब्रेक लग गया। उसने दूर से ही ठिठोली के स्वर में कहा—"क्यों; जनानों के बीच में कितना मजा मिल रहा है, आप भी पूरे जनाने ही हैं। मैदान में आइए, उधर क्या बैठे हैं।"

"वाह रे मरदाने" उठते हुए राधाचरण ने कहा, और कहते ही गए "बहुत बड़े मर्द बनते हैं, लेकिन हैं वास्तव में बड़े बेशर्म हैं, अभी सात दिन पहले डंका बजाकर तुम्हारी बहन को सब ले गए, लेकिन जरा भी शर्म नहीं आयी।"

"यह प्रथा तो आप के यहाँ की ही है कि बहन को घर में ही रख लिया जाय। यदि न रख सके तो बहन की ससुराल में ही एकांत साधना की जाय। सचमुच मैं तो डर रहा हूँ कि कहीं मेरी जवान औरत को न उड़ा ले जाओ।"

दोनों ठहाका मारकर हँस रहे थे। इस हँसी में एक ठहाका और मिल गया वह था मुन्ने का।

मुन्ना शादी के समय बनेवा हो गया था। उसकी खोज खबर लेने वाला कोई न था। बेचारा मारा-मारा फिरता था, इधर से उधर। अनु-राधा जब उसे रोते हुए देखती थी तो कलप कर रह जाती थी। प्रयोजनके घर में कुछ कर भी नहीं सकती थी। इधर दो दिनों में उसकी दुनियाँ बदल गई थी और वह पुनः पुरानी दुनिया में आ गया था। अभी सो कर उठा था। हँसता कोठरी के बाहर केशर की आवाज सुनकर निकला था

एकाएक बीच में लोग हँस पड़े, वह अनजान भी हँस पड़ा। राधाचरण जी ने उसे गोद में उठा लिया।

फिर वे और केशर नीचे आए, पाँच बज रहे थे। उन्होंने कहा तैयार हो जाइये सिनेमा देखने चलेंगे। राधाचरण इसलिए ऊपर चले गये कि खुल कर बात कर सकें। यद्यपि केशर सिनेमा नहीं जाना चाहता था, लेकिन कोई बहाना भी न था यदि चन्दर घर पर होता तो उसी को वह भेज देता। अन्ततोगत्वा उसे सिनेमा जाना पड़ा।

इधर कृष्णकान्त जी ने यही उचित समझा कि चन्दर न जाने कब तक दोस्तों से निपट कर आये मैं ही सब समान ला दूँ, उनकी पत्नी तथा अनुराधा को भी यह बात रुची कि किफायत में अच्छा सामान वे लाएँगे।

उन दिनों 'गृह लक्ष्मी' नामक चल चित्र की बड़ी चर्चा थी, वे दोनों वहीं गए। चित्र बड़ा करुण और आकर्षक था। कुछ देर तो वे आपस में बात करते रहे किन्तु इसके बाद केशर इस तरह डूबा कि इंटरवल में जाकर कहीं होश में आ सका। इंटरवल के बाद तो कई बार राधाचरण ने यह भी अनुभव किया कि वह रुमाल से आँख के आँसू पोंछ रहा है, लेकिन इस ढंग से पोंछ रहा है कि किसी को भी यह ज्ञात न हो सके कि वह आँसू बहा रहा है।

वह कर ही क्या सकता था—वह देख रहा था—"एक तरुणी सागर की तरह गंभीर, निशीथ की तरह शांत, लक्ष्मी की तरह गुणवान एक धनी घर में ब्याही जा रही है। बूढ़े माँ-बाप की अकेली सम्पत्ति, रूप की खान, घर की लक्ष्मी बिदा होती है, वह ससुराल पहुँचती है। वहाँ उसकी वही स्थिति हो जाती है जो स्थिति मछली की पानी के बाहर। इस अपरिचित घर में लक्ष्मी का सत्कार दिन रात ताने से होता है, उसका आधुनिक पति लात से भी बात कर देता है। वह हठी है। मरेगी तो इसी घर में। वह कुछ बोल नहीं सकती। केवल सुनना और सहना पड़ रहा है। सहते-सहते उसके हृदय में चलनी से छेद हो गए हैं। अन्ततोगत्वा बीमार पड़ती है। टी० बी० से आक्रान्त होती है। उसे घर में किसी से

सहानुभूति नहीं मिलती। कोई उसके पास नहीं जाता, जीवन का चित्र समाप्त ही होने वाला है। वह शृंगार करती है, साज करती है। अकेले कमरे में खिसक कर टेबुल पर रखे हुए अपने पति के चित्र पर माला चढ़ाती है और गुनगुनाती है :—

साँई के संग सासुर आई।
संग न सूती, स्वाद न जानी, गौ जीवन सपने की नाँई ॥
जना चारि मिलि लगन सुधायो, जना पांच मिलि माड़ो छायो ॥
सखी सहेलरी मंगल गावैं, दुख सुख माथे हरदि चढ़ावैं ॥
नाना रूप परी मन भँवरी, गाँठि भई पतियाई ॥
अरघा दे लै चली सुवासिनि, चौके राँड भई संग साँई ॥
भयो पांच विवाह चली विन्दु दूलह, बार जात समधी समुझाई ॥
कहैं कबीर हम गौने जैवे, तंबूर कब ले तू बजाई ॥

अभी कुछ एक घण्टे पहले जो रूप की खान थी उसके चेहरे की हड्डियाँ धँसी हुई थीं। सेव की तरह कपोल छुहाड़े की भाँति सूख गए थे।"

इसके बाद केशर अपने को न रोक सका उसने राधाचरण जी से प्रस्ताव किया, मन ऊब गया है। लेकिन राधाचरण जी बोले कि चित्र समाप्त हो रहा है।

केशर बरबस शांति की कल्पना करने लगा उसके सामने अनेकों भय के चित्र आते, जिन्हें वह देखना नहीं चाहता था, किन्तु स्वजन के बिछोह की दूरी सदैव अमंगल के जीभ लपलपाती रहती है। यह सामान्य बात भी केशर के लिए असामान्य थी। उसे हिचकी भी आने लगी और वह मान बैठा कि शांति उसे स्मरण कर रही है। निश्चय ही वह किसी न किसी संकट में है, घर आने पर भी उसका मन शान्त नहीं हुआ, लेकिन किसी पर रहस्य प्रकट उसने नहीं होने दिया। रात भर भयंकर स्वप्न देखता रहा, भोर में तड़के ही उठ गया। छत पर बहुत देर तक टहलता रहा। रह रह कर संस्कृत और हिन्दी पद गुनगुनाता लेकिन बार-बार सूर का यह पद उसकी तन मन और वाणी पर छा कर बरस रहा था:—

अब मैं नाच्यों बहुत गुपाल !
काम क्रोध कौ पहिरी चोलना, कंठ विषय की माल ।।
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा शब्द रसाल ।
भ्रम भयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल ।।
तृष्ना नाद करति घट भीतर नाना विधि दै ताल ।
माया कौ करि फेंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दियौ भाल ।।
कोटिक कला काल दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल ।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नँदलाल ।।

दूसरे दिन चौथी की पूरी तैयारी हुई। दूसरे दिन भोर की गाड़ी से लोग रवाना हुये। रास्ते भर हास परिहास की बातें होती रही लेकिन केशर का मन शांति को देखने के लिये व्याकुल था, चन्दर भी उद्विग्न।

आज सुहाग की रात

ट्रेन में चलते समय शांति ने अभिनव स्थिति का अनुभव किया। पहली बार जीवन में पराये-पराये लोगों के साथ उसे यात्रा करनी पड़ी थी। वह यात्रा भी इस रूप में कि जैसे मर्यादा की गठरी घूँघट के बन्द बोरे में। यह स्थिति घुटन उत्पन्न कर रही थी। उससे कोई बोलने-वाला भी नहीं। एक भी परिचित नहीं, सभी अपरिचित। ऐसी स्थिति में भी उसे वर्तमान की अपेक्षा घर की स्मृति का विषाद अधिक व्याकुल कर रहा था। उस स्थिति में भी भावी जीवन के चेतना की बिजली रह रह कर चमक पड़ती थी। उसे ऐसा लगता था, मानों वह उस पर ही गिरना चाहती है।

जीवन में विषाद का अन्त भले न हो, किन्तु मानव-जीवन में परिवर्तन लानेवाली यात्राओं का अन्त परिवहन के सहारे अनायास ही हो जाता है।

रात में वह अपने नये घर में पहुँची। वहाँ वह पुनः भीड़ में घिर गई। भीड़ को देख नहीं सकती थी। इसलिए अपने को ही देखने लगी।

वहाँ बहुत सी महिलायें थीं। कुछ कहती थीं कि जब गवने में विदाई तय थी, तो लड़की इतनी भारी हो गई कि सबों ने विवाह में ही घर से निकाल दिया।

कुछ की राय थी कि सयानी लड़की है, घर आ गई, अच्छा हुआ। कुछ ने यह भी कहा कि अब तो घर यही है, गवने में आना ही था। विवाह में आ गई तो कोई बात नहीं, अच्छा ही हुआ।

शान्ति अभी तक केवल ऐसे वातावरण में पली थी जहाँ केवल उसके मन के समर्थन में ही बातें होती थीं। और आज बातें उसके मन के विप-

रीत थीं फिर भी विपरीत बातों का वह उत्तर नहीं दे सकती और सराहना करने वालों को धन्यवाद भी नहीं दे सकती। लेकिन उसका मन सत्य समझ और पहिचान रहा था।

औरतों को बिदाई में मिला हुआ सामान दिखाया गया। सबने उनकी प्रशंसा की। इससे थोड़ा शांति को संतोष मिला। इस क्रियाप्रक्रिया में रात को बारह बज चुके थे, शांति कई रात की जगी थी, वह सोना चाहती थी। पर सो नहीं सकती थी। वह बन्दी की भाँति थी। वह रह रहकर यह सोचती थी कि कहां कोई ऐसा काम न हो जाय कि लोग मुझ-पर नाराज हो जायँ क्योंकि वहाँ नाराज होने पर कोई आँसू पोछने वाला भी न मिलेगा।

इसलिए वह बहुत सजग और सचेत थी। अन्ततोगत्वा उसे एक कमरे में ले जाया गया और वहां उसे सोने के लिए स्थान दिया गया। उसकी सास का आदेश था कि दरवाजे के बाहर हम लोग सो रहे हैं, तुम दरवाजा बन्द करके सोओ।

जीवन में विषाद, ताप और नयी आशा की कल्पना वाली यह पहली चंचल रात थी। नींद पालकी पर ससुराल चली। सूर्योदय हो गया। पर शांति अपने कमरे में सोई ही थी। थके हुए सो जाते हैं, नींद पूरी होने पर उठते हैं। आज शांति के साथ यही हुआ भी था। पर यहाँ तो दरवाजा खटखटाया जाने लगा। उठने पर उसने सर्व प्रथम अपनी सास का चरण छूआ, लेकिन आशीर्वाद के रूप में उसे ताना मिला।

"यह सब यहाँ नहीं चलेगा। नैहर की आदत छोड़ दो, आज कंगन-पूजन है, और आप बैल बेच कर सो रही हैं, बड़े बाप की बेटी जो ठहरीं। यदि अपना भला चाहती हो तो, मेरे घर के रीति-रिवाज के अनुसार चलो।"

शांति, मर्यादा और भय के कारण बोल नहीं सकती थी। और बोले तो क्या बोले, रीति-रिवाज एक दिन में तो आता नहीं, उसे देखने और समझने में समय लगता है। लेकिन फिर भी उसने धीरे से कह दिया "गलती हो गई, अम्मा जी, अब भविष्य में ऐसा नहीं होगा।"

"कल की बहू और आज से टर्राना शुरू कर दिया। एक हम लोग थे, शादी के बाद वर्षों तक किसी ने आवाज नहीं सुनी। अच्छे घर शादी करके जहमत मोल ले आए हैं, जीवन भर के लिये।"

ऐसी ही स्थिति में कंगन-पूजन हुआ, सत्यनारायण की कथा हुई। मुँह दिखाई की प्रथा सम्पन्न हुई। सबको बहू का चेहरा पसन्द आया। किन्तु उसकी सास को वह इसलिए पसन्द नहीं आया कि बहू के ससुर जी ने अर्थात् उसकी सास के पति जी ने शांति के नैहर के बारे में चढ़ा-चढ़ा कर विकृतियाँ भर दी थीं। यद्यपि शांति के सामने तो सास जी ने उस दिन कुछ नहीं कहा, तो भी वे चेहरा देखकर कुछ बोली नहीं, गुमसुम रह गईं।

दूसरे दिन उस घर में कोलाहल का नाम तक न था। नौकर, शांति के पति, ससुर और सास भर रह गए थे।

उसके ससुर चलते पुरजे वकील थे। भोजन करने और सोने के लिए ऊपर आते थे। शांति के आने के पश्चात् उन्होंने नीचे ही सोने का कमरा अपने लिए निर्धारित कर लिया था। ऊपर का अपना सजा सजाया कमरा शांति को सौंप दिया था। यद्यपि वैसा करना उनकी पत्नी को अच्छा नहीं लगा, तो भी वह इस पर कुछ न बोलीं। उसके सगे सास ससुर कब के उसके पति को छोड़ कर चले गए थे। वकील साहब उसके पति के चाचा थे। पर सगे पिता से अधिक स्नेह रमेश को देते। पर चाची वकील साहब की दूसरी पत्नी थी और पुत्र उन्हें जीवन में कभी प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए पुत्र-स्नेह से उनका संबंध हुआ ही नहीं, इसलिए रमेश के प्रति उनका व्यवहार पट्टीदार का था।

× × ×

आज की संध्या शांति को विषाद की बदरी में क्षितिज पर बिखरे सिन्दूरी बादलों के समान सुन्दर लग रही थी। क्योंकि उसकी सास ने उससे संकेत में ही कह दिया था कि आज रमेश ऊपर ही सोयेगा।

आज शांति के जीवन में एक विचित्र कम्पन था। इस कम्पन में आयाचित कल्पना के पंचशर कुसुमायुध की प्रत्यञ्चा पर चढ़, भयसंकुल प्रकृत सङ्कोच के भाव से खिलकर, बसंत-बहार का मेला लगा रहे थे।

उसके रोम-रोम अंगड़ाई लेकर "था-थाँ थैया" कर रहे थे। वह कभी दर्पण में अपना रूप निहारती, कभी कल्पना करती उन भाव-मुद्राओं की जिन्हें देखते ही वे उसके हो रहेंगे। वह चैता के आम की तरह बौरा गई थी। आज उसका पारस-सा मन पारे-सा कहीं ठहरता ही नहीं था। अतीत के दुःख दर्द धूल की भाँति आज उससे मुक्त हो गए थे।

वह सोचती थी, मेरी भाव-भङ्गिमा वे कैसे देखेंगे। सौतिन घूँघट उन्हें बीच में ही रोक कर बरजोरी जो कर बैठेगी, और मैं बेचारी लाज की मारी···टुकुर टुकुर पट की ओट से देखती ही रह जाऊँगी। उस मधुर मङ्गल घड़ी की प्रतीक्षा में उसके युग-युग के सङ्कल्पों का विश्वास था, संस्कार की निष्ठा थी और था नारी के पूर्ण-सिद्धि का साध्य—पुरुष-प्रकृति का योग, विधाता की सृष्टि का मूल।

कसी हुई बनारसी कुसुंबी चोली पर खिले गुलाब के स्वर्ण-सुमन मन की अभिलाषा की भाँति झीनी बासंती साड़ी से कामना कुसुमों के भावाञ्जलि अर्पित कर रहे थे। हाथ में पड़ी लाल-लाल चूड़ियाँ विद्युत के संयोग से बासंती परिधान पर केशरिया रेखायें बना-बनाकर मगन मन झंकृत होकर बसंत राग गा रही थीं। हाथों में लगी मेंहदी अनुराग की रेखाओं से चमत्कृत हो लाल-लाल हो रही थी।

छाया-पट सी लटकी अलकों की बंसी अंजन की कड़ी में नयन-मीन को बाँधे पड़ी थी, बँधे हुए सुर-ताल की तरह। आँखों में आश्रमवासिनी हरिणी का चांचल्य उसके सुडौल मस्तक पर चढ़ कर बोल रहा था। उस मस्तक पर सिन्दूर का चाँद, शरद पूर्णिमा की चाँदनी बन कर अनुराग की किरणों को बिखेर रहा था। चंचल मन वाली नारी गजगामिनी-सी भावानुराग के चरणों से कमरे में समय का सागर पार कर रही थी।

आज की रात सावन-भादों से झरी लेकर, बसंत से बहार लेकर और शरद से अमृत लेकर चाँदनी की पालकी पर दुलहिन को देखने आयी थी, पर उसे देखकर अपनी सारी सुषमा के साथ शांति में समा

गयी थी और रह-रह कर किसी अनजान का परिचित स्वर उसकी वाणी से गुन गुन भ्रमर की भाँति निकल पड़ता है।

"''''''''''आज सुहाग की रात।"

पत्ता खड़कने पर भी उसे ऐसा लगता कि मन के मीत आ गए। जान-बूझ कर अबोध बनने का अभिनय ज्यों ही वह पूरा करती, आशा विश्वास पर हँस पड़ती और मन की भाषा आँख-मिचौनी खेलते हुए कहती''''''

"बलम बेदरदी जाने ना प्रीत की रीति।"

लगातार घंटों की धुन सुन पड़ी। उसने उन्हें गिनना प्रारंभ किया, वह भूल ही गयी कि ग्यारह बजे या दस। उसकी पहेली को घर की घड़ी ने सुलझा दिया।

वह रह रह कर तरह तरह के अनुमान करती। अनुमान के सहारे समय का रथ वह अधिक न सरका सकी। निराशा ने आशा भरे मानस पर छाया-नृत्य आरंभ किया। बारह बजा। अब सहन-सीमा अपनी गरिमा नष्ट करने लगी।

वह दरवाजे का पल्ला पकड़े खड़ी होकर एक टक उस नन्हीं सी राह पर पलक-पावड़े बिछाने लगी जो नीचे से ऊपर की मंजिल का संबंध जोड़ती है। दरवाजा खटकने की ध्वनि पद-चाप के ताल के साथ हुई। भ्रम हारा, विश्वास विजयी हुआ।

वह सपक कर पलंग के पैताने दुबक कर बैठ गयी। उसका पति रमेश दबे पाँव उसके कमरे में गया। वदन पर खिली आशा के बसंत की फुलवारी को शांति के परिधान ने ढक लिया। रमेश चारपाई पर बैठ गया।

शांति ने नाना प्रकार की योजनाएँ मिलन-यामिनी के लिए बनायी थीं, पर भावों के ताश का प्रासाद रमेश के आगमन के झोंके के साथ ही केशर के बास की भाँति बिखर गया और उसके मन की कामना गूँगे की वाणी बन गई।

दोनों मौन। शांति की अहेरी आँखों ने पद निकट देख हाथों को चुपके से आंचल में छिपा कर चरण रज को मस्तक का शृंगार बना लिया। उसका मन मुँदित हो गया कदम्ब के फूल की भाँति।

"आइए न, चारपायी पर ही बैठिए।"

"........."

"सुनिये न"

"........."

"आइए न"

"........."

"नहीं आइएगा"

"........."

शांति का मौन उसके हृदय का पराग था, पर निरन्तर आग्रह पर भी भाव संकेत तक का अभाव रमेश के लिए यायावर की प्यास थी।

"आप नाराज हैं क्या ?"

"........."

शांति के मन ने कहा—"पगली कहीं की, लुका-छिपी के इस खेल में अभी तक तो तेरी जीत रही पर चारपायी के गोड़े पर लटका हार मंगल व्यवहार में कहीं दगा न दे दे।"

वह सचेत हुई। चुपके से उठी। माला पति के गले में डालकर आजीवन-विजयिनी हुई। शक्ति शिवमय हो गई। श्रद्धा-विश्वास में समा गयी। सारी मनोकामना इस यज्ञ में इस रूप में श्रद्धा की कली बनकर देवता पर चढ़ गई। पर वाणी मौन, चंचल नयन अचल।

पर रमेश तो कुछ देख नहीं सकता था।

वह परिधान से उसी प्रकार लिपटी थी जिस प्रकार नारी का सहज सौंदर्य लजा में।

रमेश ने उसका हाथ पकड़ कर खींचा। वह वहीं पैर के पास सपक कर बैठ गई।

उस समय उसके मन और तन में ऐसा मनोहारी कंपन हुआ जिस कंपन का अनुभव नारी को एक बार जीवन में होता है।

"आपका दर्शन कर सकता हूँ।"

"........."

वाणी की असफलता पर कर्म के चरण स्वयं बढ़ जाते हैं। रमेश ने घूँघट की ओर हाथ बढ़ाया। अपने मुख को दोनों आँखों में शांति तब तक छिपाए रही जब तक उसे ऐसा विश्वास नहीं हो गया कि उन्होंने अपना हाथ खींच लिया है।

"तो मैं जाऊँ।"

शांति लजाधुर की पत्तियाँ बन चुकी थी पर वाणी के संधान ने मन की साध का मौन भङ्ग कर दिया। उसने कहा—

'जी'

'भला आप बोली तो मैंने तो समझा आप नाराज हैं।'

'आप तो मेरे भगवान हैं।'

'यह मेरा भाग्य है, पर दुर्भाग्य कि भगवान को भक्ति का दर्शन नहीं हो सकता।'

सङ्कोचमयी शांति कुछ बोल न सकी।

"तो दर्शन दीजिए, न" कहते हुए रमेश ने अपने हाथ घूँघट की ओर बढ़ाए। शांति ने अपना हाथ माथे पर धर लिया इसलिए परिधान के वातायन से ही पूर्णिमा के चाँद की झलक रमेश पा सका। वह उसे अनुपम छाया चित्र सा लगा।

'मुँह दिखाइए न।'

"........."

"चारपायी पर बैठें।"

'मेरा स्थान तो, आपके चरणों में है।'

स्थान बनाने के लिए स्थान छोड़ना पड़ता है।'

'पर आज तक तो यही देखा है कि बोझ से फली डाल स्वयं झुक जाती है।'

'पंडित की लड़की से शास्त्रार्थ में जीत कौन सकता है ?'

"मैंने तो सदा सदा के लिए हार स्वीकार कर ली है, फिर भय क्यों ?'

शांति बातें तो कर रही थी पर एक-एक शब्द पर उसी प्रकार हुटुक रही थी जैसे लोग पहले-पहल कोई नई भाषा बोलते समय।

"इसलिए कि जीवन में सदा उसने दबोचा है। उसने सदैव मुझे पछारा है।"

'...लेकिन उससे जूझने के लिए अब जो मैं आ गयी हूँ, बीच में ही।...

'तुम कर ही क्या लोगी।'

'......सुन भी तो......'

"मैं जरूर सुनाऊँगा, सुनाने ही आया था, सुहाग रात मनाने नहीं। सुन कर संभवतः तुम्हें पीड़ा पहुँचे। और आज जब तुम इतने सुख में हो, मन की बात तुम से कैसे कहूँ।"

"इस घर में और जीवन में केवल आपका भरोसा लेकर मेरी हर साँस जी रही है, और आप यदि मुझे इस योग्य भी नहीं समझते कि अपनी कुछ कह सकें तो मेरा जीवन निरर्थक है।" कहते-कहते वह चारपायी के पायताने बैठ कर रमेश के पैर दबाने लगी।

रमेश चिन्तामग्न गंभीर था। वह सोचने लगा मैंने नाहक ही आज के दिन इसे छेड़ा। वाणी के तरकश से निकली बात अब घात कर गयी है। सत्य छिपाने नहीं बताने में ही कल्याण है। फिर भी सत्य प्रकट करने का साहस उसे नहीं हो रहा था।

"क्या जिस दिन से तुम आयीं, तुम्हें किसी कोने से इस घर में स्नेह मिला।"

"क्यों नहीं, मैं, आपका सब से पहले रोज दर्शन करके ही धन्न हो जाती हूँ।"

"भयंकर भूल करती हो, मैं अभागा हूँ। माता जी कहती हैं कि सबेरे मेरा मुँह जिस दिन देख ले उस दिन खाना नहीं मिलता। तुम नहीं जानती। अब ऐसा मत करना।"—कहते-कहते उसका चेहरा लाल हो

गया, वाणी विक्षोभ से भर गयी। शांति भी घबरा गयी। थोड़ी देर वह मौन रहा। फिर कहने लगा :—

"जानती हो, जिस दिन मेरे पाँव धरती पर पड़े, उस दिन मैं माँ को खा गया। जब खिसकने लगा तो उस फुवा को निगल गया जो मुझे दूध पीला कर जिला रही थी। और सुनो, बाबू जी को भी मैंने नहीं छोड़ा, जब चलने लगा तो वे भी चल बसे। इतनाही नहीं, वकील साहब की पहली पत्नी जिन्होंने कभी मुझे यह मालूम न होने दिया कि मेरी माँ मर गयी है, उनको भी होश सम्हालते ही इस धरती पर मैंने न रहने दिया। समझीं।"

"आप ऐसा क्यों कहते हैं? मरने वालों को कौन बचा सकता है?"

"वकील साहब ने भी कभी यह अनुभव नहीं होने दिया कि मेरे पिता मर गये हैं। पर जब से लोगों ने उनकी दूसरी शादी करा दी, तब से लाख भला चाहने पर भी मजबूर हैं। चाची ने इस तरह उन्हें घेर रखा है कि मेरी बुराइयाँ ही उनके सम्मुख आती हैं फिर आज ऐसी स्थिति है कि वकील साहब मुझसे बोलना तक पसंद नहीं करते। फिर भी बाबू जी के स्नेह के कारण वे मुझे पढ़ाई का खर्च देते हैं। और वह भी मुझे पूरा नहीं मिलता। उसमें से चाची जी आधे से अधिक कमीशन बना लेती हैं।...इस बात का मैं बुरा नहीं मानता। उनका सब कुछ है। वकील साहब की सारी कमाई चाची के नैहर चली जाती है। उनको मुझसे भय है कि कहीं वकील साहब के पश्चात मैं उनकी समस्त सम्पत्ति पर कब्जा न कर लूँ।......इतना ही नहीं, जमींदारी थी, उसके सारे बांड मेरी पढ़ाई और शादी में व्यय हो गए इसका हिसाब भी चाची के पास बना बनाया रखा है। मैं तो ऐसा अभागा हूँ। तुम्हारे जैसी गाय को मेरे गले बलि चढ़ने को बाँध दिया गया है।"

वह इतना कह ही रहा था कि दरवाजे पर उसे किसी की आहट लगी। वह धीरे से चारपायी से उतरा दरवाजे की कुंडी खोली।

उसने देखा कोई जल्दी जल्दी चला जा रहा है, वह पहचान गया। पुनः उसने दरवाजा बन्द करते हुए कहना आरम्भ किया, "देखा तुमने,

छिपकर सारी बातें सुन रही थीं। मैं तो सहते-सहते बेहया हो गया हूँ, अब तुम पर बन आयेगी। अब तुम्हीं सोचो मैं कितना अभागा हूँ। अभागा ही नहीं गरीब भी। यदि आज ये मुझसे कह दें कि घर छोड़ दो तो तुम्हारी क्या स्थिति होगी। कल्पना करो, क्या तुम अब भी मुझे अभागा नहीं मानती ?"

शांति सुहाग-रात के सुख में एकान्त साधक की भाँति मोती के अंजलि अभाव के देवता पर चढ़ा रही थी। उसके स्वप्न उसके आंसू से कागज की भाँति गल रहे थे। उसने भर्राये स्वर में कहा, "आप जैसे सौभाग्यशाली की पत्नी होने पर मुझे गर्व है। मैंने तो सुन रखा था अंग्रेजी पढ़ने वाले बड़े चालबाज होते हैं, पर आज जीवन में यह भी देखा कि वे बड़े सच्चे भी होते हैं। आज मैं सचमुच प्रसन्न हूँ कि अब मेरा जीवन सुखपूर्वक बीत जायेगा। आप जैसा सच्चा आदमी बड़े भाग्य से मिलता है।"

"अच्छा ही हुआ तुम भी मेरी ही तरह पागल हो। तुम्हीं नहीं तुम्हारा घर भर।"

"क्या कह रहे हैं आप ?"

"ठीक ही तो कह रहा हूँ, तुम्हें नहीं मालूम है। मैं शादी नहीं करना चाहता था क्योंकि मेरी स्थिति और परिस्थिति वैसी नहीं थी। लाख प्रयत्न भी किया पर वकील साहब की आज्ञा टाल जाता तो संभवतः उनके मन में मेरे प्रति और कुभावना घर कर जाती। लेकिन नियति बड़ी प्रबला है। चाची पर उसका असर पड़ कर रहा।"

"चाची पर क्यों ?"

"वे अपने भाई की भांजी से मेरी शादी करना चाहती थीं। पर मैंने दृढ़तापूर्वक उसका विरोध किया। विरोध इसलिए कि लड़की मुझे पसंद नहीं थी और मेरी स्थिति भी नहीं थी। पर उसके दो महीने बाद ही तुम्हारे यहाँ शादी मुझे स्वीकार करनी पड़ी।"

"आप मुझसे मत घबड़ाइए, मैं आपके लिए बोझ नहीं बनूँगी। जब तक आपकी स्थिति नहीं सम्हलती, मैं नौकरानी की भाँति जीवन काट दूँगी, आप के मार्ग में बाधा न आने दूँगी।"

दोनों मौन हो गए, कुछ समय के लिए। फिर कुछ सोचते, कुछ कहते, कुछ सुनते दोनों जीवन-यज्ञ के लिए मुक्ता की समिधा आहुति में डालने लगे।

रमेश सो गया।

शांति लाइट बुझा कर कमरे के एक कोने में दीवाल के सहारे बैठ गयी। रमेश की नाक बोलने लगी। शांति चाहती थी कि सारे वस्त्र और आभूषण उतार कर इसी समय शरीर से अलग कर दूँ क्योंकि उसे रह रह कर वे डसते थे। पर चाहकर भी वह इसलिए उन्हें उतार न सकी कि कहीं खड़खड़ाहट उनकी नींद न भंग कर दे।

उसके मन में तरह-तरह के कल्प-विकल्प के बादल उठते, पर सबके सब आँख के आँसू बन कर चुपचाप ढल जाते दूब पर पड़ी ओस की बूंदों की भाँति। जो रात उसे इतनी छोटी लग रही थी कि पलक मारते ही बीत जायेगी, वही रात आज सुरसा के बदन की भांति विस्तृत और खोटी होकर अपनी बात बड़बड़ाती ही जा रही थी। जाने कब उसे भी नींद आ गयी।

सवेरे उठने पर उसने चारपायी की ओर देखा भगवान् राम के दर्शन के लिए, पर वे तो न जाने कब के चले गए। उसने शुभ-वंदना मन ही मन की। खिड़की से देखा, बाहर सूर्य की किरणें धरती को चूम रही हैं। दरवाजा खुलते ही आहट पाकर उसकी सास भी आ गयीं। उसने चरण स्पर्श किया। आशीर्वाद के रूप में प्रश्न पूछा गया—

"साड़ी बदल कर नहीं सोया गया।"

"भूल गयी अम्मा जी।"

"बाप रे बाप आज की औरतें तो आकाश सिर पर लेकर चलती हैं। बाप-दादों के घर मय्स्सर नहीं और यहाँ साड़ियाँ यों ही बरबाद की जा रही हैं। कहाँ से आयेगा?"

"बनारस वाली ही साड़ी है, अम्मा जी। और मुझे उनसे क्या लेना, मेरा घर तो यही है। नहीं रहेगा तो आप देंगी। आप न देंगी, न पहनूँगी।"

"घर-भर को जबान चलाना खूब आता है।"

"मैं अभी धोती बदल लेती हूँ। अब कभी साड़ी नहीं पहिनूँगी।"

"यह ताना मैं बरदाश्त करनेवाली नहीं। वकील साहब बड़े घर की बेटी लाये हैं, वे बरदास्त करेंगे। मैं अपने बाप की भी बरदाश्त करनेवाली नहीं। वे तो दिन भर कचहरी में फँसे रहते हैं और यहाँ मेरी छाती पर मूँग दलने के लिए ऐसी बहू ढूँढ़ कर घर में छोड़ गये हैं। आज सब तय हो जायेगा।"—कहते-कहते वह रो पड़ी।

शांति घबड़ा कर गिड़गिड़ाने लगी। झट भीतर जाकर उसने वस्त्र बदले। गहने उतार कर धर दिए। बाहर आयी, डरी हुई।

"गहने उतार कर अशुभ मनाती हो, तुम्हारा क्या? मेरे पति और बेटे का नुकसान होगा। आज सब तय हो जायेगा। मैंने सोचा था, बहू आयेगी, घर स्वर्ग हो जायेगा। पर स्वर्ग जैसे घर को नर्क बना दिया। दिन चढ़े तक सोना, आयी लक्ष्मी भी भाग जाय। कोई काम न करना, खाना तक न बनाना। इस घर में मेरे रहते ऐसा न हो सकेगा।"

"अम्मा जी, अब से सारा काम मैं करूँगी।"

"मैं कुछ नहीं जानती।"—कहते हुए उसकी सास वहाँ से चली गयी।

शांति का मन कुछ भी नहीं करना चाहता था। वह बार-बार कुछ सोचना चाहता था, पर भय के मारे दैनिक-कृत्यों से वह निवृत्त हुई। आते समय उसने दूसरे कमरे में सुना, सास भतीजे से शांति की शिकायत नमक-मिर्च लगा कर कर रही हैं और यह भी समझा कि आज ही उसका पति पढ़ने चला जायगा।

उसे काठ मार गया। वह वहीं की वहीं खड़ी रह गई। सास आहट पाकर बाहर आयीं। आँखें तरेरते हुए उन्होंने कहना आरम्भ किया—

"छुका लगती हो, शर्म नहीं आती। ऐसी बात अगर कभी फिर हुई तो ठीक न होगा। मैं समझा देती हूँ। ठिकाने पर लगते देर नहीं लगेगी उन्हें कचहरी जाना है, इन्हें इलाहाबाद। एक घण्टे में खाना तैयार हो जाना चाहिये।"

शांति ने सोचा था और यही देखा भी था कि जिस दिन वह रसोई छूएगी उस दिन अन्न-पूर्णा की पूजा होगी पर यहाँ तो कुछ उल्टा ही उसे दीखा। वह रसोई घर में गई। उसने चूल्हे को प्रणाम किया कुल देव-ताओं का स्मरण कर वह खाना बनाने बैठी। उसे ज्ञात नहीं था कि क्या खाना बनाना है, पर रसोईं घर में उपलब्ध सामान का उत्तम से उत्तम उपयोग उसने किया। ठीक समय खाना बन गया। खाने की वकील साहब ने प्रशंसा की और कचहरी चले गये।

इससे शांति को थोड़ी राहत मिली, किन्तु रमेश को खाना इतना बुरा लगा कि आधा खाना खाकर ही उसने छोड़ दिया। इसलिए नहीं कि खाना बुरा था अपितु इसलिए कि उसकी चाची जी वहाँ बैठकर शांति के गुण का गोत्रोच्चार कर रहीं थीं। यह बात शांति के लिए लगने वाली थी।

सास जी ने खाने की प्रशंसा मिर्च के भार के समान की और फिजूल खर्ची की भर्त्सना भी वज्र के शब्दों में। शांति का मन खाने को नहीं कर रहा था। खाना चढ़ाकर वह अपने कमरे में आयी। दरवाजा बन्द किया। बीती रात की एक-एक बात पिसाचनी का रूप धारण कर उसके चारो ओर खड़ी हो गई। वह भय से आक्रांत सिसकने लगी।

रमेश तो पढ़ने चला गया। पर प्रत्येक नया दिन शांति का जीवन और कंटकमय बना कर चला जाता।

अपशब्द उसके लिए श्रृंगार थे, पीड़ा उसकी सहेली थी, स्मृति समय काटने का वाहन थी। दिन के बाद रात, रात के बाद दिन आते और चले जाते उसके लिए न कुछ नया था, न कुछ पुराना।

काग नाहीं जानै·····

शांति को ससुराल आये कई दिन बीत चुके हैं। सबेरे वह तड़के ही उठ गई। सूनसान अटारी पर कागा बोला। शांति ने तीन बार मन ही मन कहा—मेरे भैया आ रहे हों तो काग देवता उड़ जाना। मैं तुम्हें दूध भात खिलाऊँगी। काग उड़ा भी; पर शाम तक उसके भैया नहीं आये। पर वह छलना आशा पर अविश्वास न कर अनेक शंका और आशंकाओं पर इस विश्वास से विचार करती रही, आज नहीं तो कल भैया जरूर ही आयेंगे।

कल भी आकर चला गया। उसका मन आज बहुत दुखी हुआ। वह यहाँ तक सोच बैठी कि कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि पैसे के बिना चौथी की व्यवस्था न हो सकी हो।

"उसने मन को समझाने का बहुत प्रयत्न किया। पर मन न माना, सवेरा हुआ। आज भी अटारी पर कागा दीखा। पर उसने उससे यह न पूछा कि भैया आ रहे हैं, या नहीं। कागा को दूध-भात के लिए कौन कहे, एक दाना भी देने की उसकी इच्छा न हुई।

जब हृदय की मान्यता पर बार-बार निराशा के घन आघात करते हैं तब आदमी का मान्यता से विश्वास उठ जाता है। आज उसे भी जीवन भर की मानी हुई बातों पर विश्वास नहीं रह गया था। जब सत्य पर अविश्वास अंतिम सीमा पर पहुँच जाता है तो स्वतः विश्वास की अवतारणा अवतार की भाँति होती है और यदि ऐसा न हो तो धरती का धर्म ही मिट जाय।

दूसरे दिन लगभग नव बजे उसे कुछ खड़खड़ाहट और चिर परिचित आवाज सुनाई पड़ी। आँगन में चौथी का सामान रखा जा रहा था और उसके दोनों भाइयों, राधाचरण और दो-एक और आदमियों की वाणी सुन पड़ी। उसे साहस नहीं हुआ कि आँगन में झाँक कर देखे। लेकिन उसकी सास तब तक उसके पास आ चुकी थी और बोली "छकड़ा लदा कर तुम्हारे भाई लोग पांच आदमियों के साथ आ गये हैं। उनका भी भोजन बनेगा।"

भीतर से वह बहुत प्रसन्न हुई किन्तु इस प्रसन्नता की एक रेखा भी भयवश उसके चेहरे पर न आ सकी। वह झपटी हुई रसोई घर में गई। एक बार तो पहले ही वह वकील साहब के लिए खाना बना चुकी थी।

वकील साहब कार्य में व्यस्त थे। उन्होंने उन लोगों का अभिनन्दन किया और उनसे कहा कि शाम को कचहरी से लौटने पर विस्तारपूर्वक बातें होंगी। तब तक वे भोजन और आराम करें। साथ ही वकील साहब ने अपने एक पट्टीदार को उनके आवभगत का सारा उत्तरदायित्व सौंप दिया।

घर के आँगन में विधिवत इनके स्वागत-सत्कार, जल-जलपान आदि का समस्त विधान सुन्दर ढंग से किया गया। शांति ने सोचा था कि घर की तरह आते ही उसके भाई और राधाचरण जी उसके पास चले आयेंगे। यही बात केशर और चन्दर ने भी सोची थी। पर दूसरे के घर बिना बुलाए कैसे कोई ऊपर जा सकता है।

शांति तो भयाक्रांत पहले से ही थी, उसमें इतना साहस कहाँ था कि वह नीचे चली आती या बिना अपनी अम्मा जी की आज्ञा से उन्हें ऊपर बुलवा लेती। वह बार-बार सोचती थी कि अम्मा जी से पूछ कर उन्हें ऊपर बुलवा लूँ। किन्तु अम्मा जी ने उसके जिम्मे स्वागत-सत्कार का इतना काम सौंप दिया था कि बिना उन्हें विधिवत समाप्त किए वह किस मुख से अपनी चिर अभिलिषित जिज्ञासा प्रकट कर सकती थी।

केशर तो नहीं, कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् चन्दर यह अनुभव करने लगा था कि शांति ससुराल में आकर बदल गयी। वह भी बड़े घर में आने पर बड़े आदमी हो गई है। हम गरीब, हमसे क्यों मिलने लगी। वह बार-बार केशर से कहता, 'भैया, कब चलोगे।'

केशर उसकी बातों को टाल जाता। इस परिस्थिति में केशर को शांति से मिलने का एक उपाय दीखा। उन्होंने बहाना बना भेजा कि माता जी का चरण छूना चाहता हूँ।

माता जी नीचे ही बगल वाले कमरे में चली आयीं। केशर जाकर भाव-विनत हो उनसे मिला। उसने चरणस्पर्श के पश्चात् माता जी के सम्मान में जो उद्गार प्रकट किए वे कुछ इस प्रकार थे—

"आप गृह लक्ष्मी हैं, आप जैसी देवी के ही कारण यह घर सुखी सम्पन्न और उन्नत हो सका है। आप का यदि पहले ही मुझे दर्शन हो गया होता, तो शादी में कुछ भी अशुभ नहीं होता। मामा जी भी बड़े उदार हैं। आप के सहवास के कारण शांति को नया जीवन मिलेगा। उसके बड़े भाग्य हैं।"

इन संस्तुतियों के उत्तर में केशर को प्रशंसा मिली तथा वाणी का यह प्रमाणपत्र, "उसके घर में केवल वही लायक है। उसके जैसे सब होते तो कुछ न होता। शांति अभी अबोध है, धीरे-धीरे सब सीख जायेगी इसलिए मैं उसे बिगड़ती हूँ कि शऊर सीख जाय। ठीक करती हूँ न।"

"बिलकुल ठीक, माता जी!"

"इतनी देर तुम लोगों को आये हो गया। पता नहीं तुम लोगों ने उसे क्या शिक्षा दी है कि अभी तक तुम लोगों को मिलने के लिए बुलाया तक नहीं।"

"माता जी, वह ऐसी गुमसुम है ही।"

"अरे भाई, तुमसे मिलने में ऐसी कौन सी बात है। तुम घर के लड़के हो, उठो मेरे साथ चलो। अपने भाई को भी बुला लो।"

केशर ने चन्दर को बुलाया। आकर उसने भी उन्हें प्रणाम किया।

केशर और चन्दर माता जी के अनुगामी बने? ऊपर शांति के कमरे तक वह उन्हें लिवा ले गयीं। वहाँ उन्हें पहुँचा कर वह नीचे चली गयीं।

शांति को देखते ही चन्दर और केशर की आँखें भर आयीं। बहन भी अपने को रोक न सकी। वह रक्त के आँसू रोने लगी। थोड़ी देर तक वातावरण मौन था। फिर चन्दर ने कहना आरम्भ किया, "शांति बहन, चलते समय तुमसे न मिल सका था, क्षमा करना। माता जी ने तुमको आशीर्वाद कहा है और पूछा है कि किसी चीज की जरूरत है? हाँ बराबर लिखते रहने के लिए भी कहा है।"

"अब उनकी तबीयत कैसी है, भैया ?"

"बिलकुल ठीक।"

"माँ को मेरा प्रणाम कहना।"

"शांति, अच्छी तरह तो हो न।"—केशर ने पूछा

"तुम जिस शांति बहन के लिए इतने जलील हुए, वह दुख में कैसे रह सकती हैं।"

"शांति, तुम जानती हो, मैं कितना गरीब हूँ। तुम्हारे जैसी बहन बड़े भाग्य से मिलती हैं। गरीबी ने मन की मुराद पूरी न होने दी।"

"भैया, ऐसी बात आप क्यों कहते हैं ? मेरे लिये तो केवल आप का सहारा है।"

"भगवान का सहारा लो शांति, अब मैं तुम्हारे सामने तिनका हूँ।"

"और चन्दर भाभी का क्या हाल है ?"

"शांति बहन, अब वे अकेली हो गयी हैं। तुम्हारी याद करके बहुत रोती हैं। हाँ भूल ही गया था, उन्होंने एक खत दिया था, तुम्हारे लिये।"

यह कह कर जेब से खत निकाल कर चन्दर शांति को देता है। शांति उसे खोलकर पढ़ने लगती है। उस पर एकाध बूँदें ऐसी पड़ी थीं, जिससे अक्षरों का मन कहीं कहीं विदीर्ण हो उठा था। शांति तुरन्त पहचान गयी कि ये अनुराधा के आँसू हैं जो उससे बरजोरी करके खत के साथ चले आये हैं। उसने पत्र एक बार नहीं, अनेक बार वहीं खड़े ही खड़े पढ़ा।

बबुई,

प्रणाम,

जब से तुम गयी, एक पत्र तक नहीं दिया। ऐसा लगता है कि तुम अपनी गरीब भाभी को बिल्कुल भूल ही गयी। काम तो मैंने ऐसा ही किया कि तुम्हें मुझे याद नहीं रखना चाहिये था। जाते समय तुम्हें भेंट—अकवार तक भी न दे सकी थी।

लेकिन विश्वास रखो बबुई, उस समय मैं परवश थी। मैं नहीं जानती, न जानने का कोई ऐसा साधन ही मेरे पास है कि, तुम कैसे

हो ? तुम्हारा हाल-चाल क्या है ? पर इतना जानती हूँ कि अपने स्वभाव के कारण सदा जंगल में भी मंगल मनाओगी।

तुम्हारा मुझसे आज तक कुछ गुप्त नहीं था। इसलिए आशा है बंद लिफाफे में लिखकर बबुआ जी के हाथ अपना सारा सच्चा समाचार भेज दोगी।

तुमने अपनी सोहाग रात मना ली होगी। ननदोई जी तुम्हें देखकर संतुष्ट हुए होंगे। तुम्हारे रूप-रस में ऐसे डूबे होंगे कि अब तुम्हारे बिना उन्हें दिन-रात चैन नहीं मिलता होगा।

घर पर कोई कष्ट तो नहीं है न ? तुमने गृहस्थी तो सम्हाल ली होगी। देखना तुम्हारा सबसे बड़ा धर्म यही होना चाहिए कि सास-ससुर तुम्हारे कार्यों से सदा प्रसन्न रहें। उनका आशीर्वाद तुम्हारे सुख-सुहाग को मंगल-मय बना देगा, दूधों नहाओगी, पूतों फलोगी।

लेकिन देखना, मुझे धोखा मत देना। नहीं तो ठीक नहीं होगा। और तुम्हारा बदला तुम्हारे भाइयों से लूँगी, एक के बदले सौ, और सौ को एक गिनूँगी।

अच्छा मेरी जान, तुम्हारे चाहक भाई तुम्हें देखने को पागल हो रहे हैं। इसलिए बस करती हूँ। मुझे पत्र का उत्तर चाहिए ही।

अंत में मेरी अकवार लेना, भूलों को भुलाकर।

सदा सदा की तुम्हारी ही,

केवल तुम्हारी

अनुराधा

इस पत्र में सामान्य व्यक्ति के लिए तो कुछ न था। पर शांति के लिए युग-युग का स्नेह-संबंध इसमें मूर्तिमय था।

केशर ने पूछ ही दिया—'क्यों शांति, पत्र से इतनी ममता और हम सामने बैठे हैं, पूछ तक नहीं रही हो।'

"भैया, तुम से तो बातें बराबर होती रहेंगी, पर भाभी।...वे बहुत अच्छी हैं।"

"यह तो तुमने कोई नयी बात नहीं कही।"

"बार-बार वही बात कही जाती है, जिसका बखान अपार हो।"

"रहने भी दो, तुम यहाँ अच्छी तरह हो न ?"

"कैसे कहूँ भैया, भाई को देख कर बहिन का प्रत्येक दुख-दारिद्र भाग जाता है।"

"तुम्हें सास बड़ी अच्छी मिली है।"

"बुरा तो मैंने नहीं कहा।"

चन्दर बात ताड़ गया। उसने केशर से कान में कहा—'जिसके घर के लोग इतने पाजी हों, भैया, उस घर की मालकिन अच्छी नहीं हो सकती। शांति की बात से भी ऐसा ही लग रहा है।"

"झूठे कहीं के।"

केशर ने बात की दिशा बदल दी।

"शांति संसार में सभी अच्छे लोग ही नहीं हुआ करते, मानता हूँ, तुम्हारी सास अच्छी नहीं है, उनका व्यवहार बुरा है। पर तुम्हें तो ऐसा व्यवहार करना ही चाहिए जो इतना अच्छा हो कि एक दिन तुम्हारी सास तुम्हारा गुण गाने को बाध्य हो जाय।"

"मेरी सास में कोई बुराई नहीं है। जरूरत से ज्यादा बोलती हैं, यह तो हर घर की मालकिन करती है, नहीं तो बिटिया-पतोहू अपने मन की हो जाँय।"—यह कहते-कहते शांति की वाणी रुँधने लगी।

"देखो, तुम्हारी सास की कमजोरी मैं जानता हूँ। उनकी खूब प्रशंसा किया करो, काम ठीक हो जायेगा ? इसी के सहारे मैं तुम तक पहुँच पाया हूँ। बाबू जी बताते थे कि जिस गाँव की ये बिटियाँ हैं वहाँ की लड़कियाँ हवा से बकवास कर उसे परास्त कर देती हैं। तो समझी न, वंदौं प्रथम असज्जन चरणा।"

इतनी बात हो ही रही थी कि शांति की सास दूर आती दिखीं। शांति बैठ गयी, केशर ने बात बदल दी।

"इस घर में वकील साहब बेचारे तो दिन-रात काम में ही लगे रहते हैं। यदि माता जी न हों, तो इस घर का भगवान ही मालिक है।"

"अम्मा जी इतना काम करती हैं कि मैं तो देखते ही देखते थक जाती हूँ। हम लोग जवान हैं, पर इतना जाँगर नहीं है।"

उन्होंने भाई और बहन की बातें सुन लीं। भीतर से बड़ी प्रसन्न हुईं। केशर उन्हें देखते ही खड़ा हो गया, उसके साथ ही चन्दर भी, शांति ने घूँघट काढ़ लिया।

"माता जी, आप चारपायी पर ही विराजें।"

"नहीं बेटा, कुछ काम था, आ गयी, अब मैं जाती हूँ।"

"काम आप करें और शांति बैठकर हमसे गप झाड़े, ऐसा कैसे हो सकता है? जाओ काम करो। केशर का इशारा शांति की ओर था— "लाज नहीं लगती। सास काम करें और पतोहू गप झाड़े।"

"नहीं, दुलहिन बैठो, मैं भी बैठ जाती हूँ। सब काम मैंने कर लिया है।"

"माता जी, यह जाँगर चोर है, यह ध्यान रखियेगा। इससे खूब काम लीजिएगा, नहीं तो मुरचा लग जायेगा।"

"ऐसी बात अपनी बहन के संबंध में नहीं बोलते। मेरी बहू लक्ष्मी है। और कुछ मिला या नहीं मिला तुम्हारे यहाँ से, लेकिन बहू सवा लाख में एक मिली।"

शांति ने भी अपनी सास की कमजोरी पकड़ ली। शांति का जीवन-संबंधी यह ज्ञान उसके लिए उतना ही मूल्यवान था जितना एटम बम का स्टाक अमरिका के लिए।

तब तक राधाचरण की आवाज ऊपर आयी। "चन्दर, चन्दर।"

केशर ने कहा—"माता जी अब नीचे चल रहा हूँ।"

"नहीं बेटा, उठो नहीं। उधर पीढ़ा-पानी सबके लिए रखा है। भोजन मैं परोस रही हूँ। उन सब को भी ऊपर बुलवा लेती हूँ। भोजन करके तब नीचे जाओ।"

यह कहती हुई वे बाहर निकलीं। शांति उनके पीछे।

"भैया, आपने जादू कर दिया।"

"दुनिया देखी है चन्दर, तभी तो कहता हूँ, नम्र बनो।"

तीसरे दिन भी उन्हें आने नहीं दिया जा रहा था। उनके कारण शांति का भी मन बहल रहा था। जाते समय बहन और भाइयों का मिलाप यद्यपि बड़ा कारुणिक था तो भी केशर को इस बात से सन्तोष था कि जो कुछ हुआ था, सब अब ठीक हो गया और शांति का जीवन सुखमय है। आते समय उसे रह-रहकर यह आशंका होती थी कि शादी के समय जो व्यवहार इन लोगों ने किया, यदि वही व्यवहार चौथी पर भी करेंगे तो बड़ा गड़बड़ होगा। शांति को ये सब मिलकर अकेले बहुत कष्ट देते होंगे।

केशर इन उलझनों से मुक्त होने के कारण अन्तर में प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था। ब्राह्मण और नावित की विदाई भी जोरदार हुई। वकील साहब ने बात-चीत के सिलसिले में केशर से अनेक ऐसी बातें कही थी जिनसे केशर की श्रद्धा वकील साहब के प्रति बढ़ गई।

मुख्य बातों में एक बात यह भी थी कि वकील साहब अपने जीते जी ही शांति के लिए जीवन भर की सुचारु आर्थिक व्यवस्था कर देंगे। दूसरी बात यह थी कि शादी में गड़बड़ी के कारण कुछ बीच के लोग थे जो केशर के वर के प्रति घृणा की भावना भर कर वकील साहब से पुरानी दुश्मनी निकालना चाहते थे।

× × ×

लौटते समय रास्ते में राधाचरण जी ने केशर को सलाह दी कि बाबू जी पके आम हैं। उसका परदेश में रहना ठीक नहीं। बनारस में वह गल्ले की आढ़त खोल लें, सारी व्यवस्था राधाचरण जी कर देंगे। इन्हें केवल देख भाल करनी होगी। अथवा सड़क का ठीका जो राधाचरण जी लेते हैं वह उसे देख-भाल दिया करें क्योंकि उनका काम बढ़ गया है, संभाले नहीं संभलता। इन कामों का लाभ केशर का होगा।

केशर ने ये बातें ध्यान पूर्वक सुनी पर इनका कोई भी उत्तर उसने न दिया। वह बात बारीकी के साथ टाल गया।

इन बातों के बाद केशर अपनी जिज्ञासा न रोक सका। वह जिज्ञासा थी, एक पत्र से संबंधित। यह पत्र शांति ने केशर को अनुराधा के लिए दिया था।

वह बहाना बनाकर उठा। पेटी से साबुन निकाल कर गाड़ी की लैट्रिन में गया।

उसने वहाँ पत्र खोला। खोलकर बार-बार पढ़ना आरंभ किया।

प्राण प्रिय भाभी,

तुमने तो अपने देवर के हाथ पत्र भेज दिया। उसका उत्तर मैं भैया के हाथ भेज रही हूँ। तुम्हारी आदत पेट में पैठ कर बात पूछने की अभी नहीं गई। तुमने जो बातें पूछी हैं, उनके संबंध में मेरा मौन रहना ही अच्छा होता। लेकिन आज तक जितने भी कष्ट तुम्हें मैंने दिये हैं वे सबके सब मेरे कारण तुम फूल की तरह अपने आँचल में भरकर मुझे सुख देती रही हो और आज जब मैं पराई हो गई हूँ, तब भी तुम उतना ही अधिक स्नेह मुझपर रखती हो, इस कारण दिल के कहने के बाद भी झूठ नहीं बोला जा रहा है।

इस घर में किसी भी बात का आर्थिक कष्ट नहीं है। शारीरिक श्रम भी अधिक नहीं करना पड़ता।

ससुर भी बुरे नहीं हैं। अम्मा जी कठोर तो जरूर है किन्तु उनका अन्तस्थल गंगा जल की भाँति निर्मल है।

लेकिन जिसके सहारे मुझे इस घर में लाया गया, वे प्रसन्न नहीं। उनसे मेरी भेंट तो जरूर हुई, किन्तु वह भेंट न होती तो अधिक अच्छा रहता। ऐसी सुई उन्होंने हृदय में चुभाकर तोड़ दी है, जो हर क्षण करकती रहती है। इस जीने से मरना कहीं अच्छा है।

इलाहाबाद ही उन्हें प्रिय है, वे वहीं पढ़ते हैं। वहाँ रहना भी चाहते हैं, कम से कम तब तक जब तक पढ़ाई पूरी होकर नौकरी न मिल जाय। कोई दूसरा चारा भी तो नहीं है।

भाभी, और अधिक नहीं लिखा जा रहा है। मुझे कोई रास्ता नहीं दिखायी पड़ रहा है। अच्छा होता, किसी गरीब के घर में डाल दी गयी होती।

घर भर को मेरा प्रणाम कहना, पर यह राज यदि किसी पर जाहिर हो गया, तो घर का हर आदमी दुखी तो होगा ही और मेरा जीवन भी बहुत कंटकमय हो जायेगा।

सदा तुम्हारी ही
शांति

पत्र पढ़कर केशर के चेहरे पर ऐसा पीलापन छा गया मानो किसी ने हल्दी से उसे नहला दिया हो। उसके लौटने पर दोनों ने उससे इसका कारण पूछा, किन्तु उसकी गंभीरता के कारण वे दोनों भी मौन हो गये। उन दोनों ने समझ लिया कि इनकी तबीयत खराब हो गई है, क्योंकि यही बहाना केशर ने उनसे किया भी था।

घर लौटने पर सब लोगों ने इतनी तारीफ उस घर की की कि किसी को यह आशंका न हुई कि बहन का कष्ट केशर की बीमारी के मूल में है। केशर ने चुपके से अनुराधा को पत्र देना भी चाहा, पर उसकी प्रसन्नता के कारण केशर को साहस न हुआ कि वह वैसा करे। अन्ततोगत्वा प्रतीक्षा के बाद अनुराधा ने चन्दर से अपने पत्र के उत्तर के विषय में पूछाः—

"उत्तर मिला।"

"भैया के पास है।"

"जाकर ला दीजिये न।"

"भैया रात में खुद ही दे देंगे।"—मुस्कराते हुए चन्दर ने कहा।

"धत्त, बबुआ जी आप बहुत बढ़ रहे हैं।"

"मन की बात कहे, उस पर फटकार, यह कैसी रीति। मैं नहीं लाऊँगा, खुद ही माँग लो।"—कहते हुए चन्दर वहाँ से चला गया।

सिर भारी होने का बहाना कर नीचे ही केशर आँखें बन्द कर सोने का अभिनय करने लगा। वास्तव में वह उस विषधर पत्र की सांघातिक डसन से आक्रान्त तो था ही, घर की आर्थिक स्थिति भी राक्षसी बनकर

उसके सामने रह रहकर खड़ी हो जाती। वह चैन भी न ले पाता कि उसके बाद ऋण की समस्या उस पर प्रहार कर बैठती। और फिर वह सोचता भाई की पढ़ाई कैसे चलेगी और घर की लाज...। एक केशर, हजार समस्याएँ।

सोचा, आज ही कलकत्ता लौट जाऊँ। पर मन की कसौटी पर मान का सोना आज खरा न उतरा। वह सोचता कि मैनेजर साहब के सामने कौन-सा मुँह दिखाऊँगा। जो एक दिन इस घर में पाँव पूजने आये थे उनके सामने दीन-हीन बन किस प्रकार जीवन व्यतीत कर सकूँगा। उन्होंने अगर रुपये न दिये होते तो भी ठीक था। लेकिन जहाँ आत्म-प्रतिष्ठा को ठेस लग चुकी है वहाँ यदि स्वर्ग ही हो तो भी लाज के मारों के लिए व्यर्थ। केशर न जाने का निश्चय कर बैठा, हिमालय की तरह दृढ़ प्रतिज्ञ।

उस पर इतना अधिक भार था कि अब ढोना उसके बूते के बाहर की बात थी। सदा इस बोझ को वह ढोता रहा। इस बोझ को लेकर कौन कौन सी ठोकरें उसने नहीं खायी, तो भी मंजिल तक पहुँचने का उसका संकल्प आज उसका साथ छोड़ रहा था।

वह यह देख रहा था कि मकान गिरवीं है। रुपया, अदा करने का कोई साधन नहीं है, ससुराल के भरोसे कुछ भी नहीं हो सकता। एक न एक दिन कुड़की होगी, निलामी होगी। फिर न तो रहने के लिए शरण रह जायेगी, न प्रतिष्ठा ही बच पायेगी। वह यह भी सोचता कि जिस कारण यह सब हुआ, वह शांति भी अगर सुखी रहती, तो सन्तोष रहता। वह एक अशुभ और विचित्र कल्पना करने लगा।

"शांति सामने खड़ी है। उसके मस्तक पर सिन्दूर का टीका, हाथों में चूड़ियाँ हैं। पर वह विधवा से भी दयनीय स्वर में झकझोर-झकझोर कर केशर से पूछ रही है कि भैया तुमने मुझ से किस दुश्मनी का बदला निकाला। दुख में सब तो कम से कम रो सकते हैं, सिसक सकते हैं, लोगों को अपने आँसू दिखाकर स्नेह प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु मैं किस मुख से

दुनिया से कहूँ। मैं तो केवल तुमसे ही कहूँगी, तुमने ही मेरा जीवन बर्बाद किया है। तुम्हीं बताओ क्या करूँ ?"

केशर अधिक समय तक सोआ भी न रह सका, उठकर टहलने लगा। वह ऊपर आया।

ऊपर जाते समय राधाचरण जी ने अपना मनीबेग केशर को दे दिया और कहा "इसे लेते जाओ, जाने लगूँगा तो ले लूँगा।"

केशर ऊपर आया। शाम का सूरज डूब रहा था। अनुराधा खाना बनाने की व्यवस्था में लगी हुई थी। मुन्ने को देखते ही उसकी आँखों में आँसू आ गए। उसने इतनी तेजी में अप्रत्याशित रूप से उसका आलिंगन किया कि वह चीख पड़ा। अनुराधा ने समझा यों ही खेलते-खेलते चिल्ला पड़ा होगा। और जब तक अनुराधा यह पूछे कि क्या बात है, केशर वहाँ से उलटे पाँव लौट पड़ा। अनुराधा की एक झलक उसे खिड़की से मिली। अनुराधा ने भी उसे जाते हुए देखा। लेकिन कोई बोल सुन न ले, इस-लिए चुटकी बजाती ही रह गई।

केशर नीचे आकर रुका नहीं, चुपके से सबकी आँख बचाकर घर के बाहर चला आया।

रास्ते में सड़क पर आते ही रिक्शावाला मिला, जिसने पहिले ही पूछा कि बाबू जी स्टेशन।

बिना कुछ बोले ही वह उस पर बैठ गया और बोला—"तेज चलो नहीं तो गाड़ी छूट जायेगी।

स्टेशन आया। सामने प्लेट-फार्म पर पैसिन्जर गाड़ी खड़ी थी। गेट पर टिकट चेकर से पूछा—"यह गाड़ी कहाँ जायेगी।"

"इलाहाबाद, कानपुर, आगरा, मथुरा होते हुए दिल्ली।" उससे धीरे से उत्तर मिला।

केशर झपट कर बुकिंग आफिस के पास आया। उसने आगरा के लिए टिकट कटा लिया।

टिकट आगरा के लिए इसलिए नहीं कटाया कि उसे आगरा जाना था, अपितु इसलिये कि जल्दी में उसके मुख से आगरा ही निकल पड़ा।

गाड़ी चली। वह सोचने लगा अगर आज मनीबेग न होता तो मुझ पर क्या गुजरती। टिकट ठीक से रखने के लिए उसने मनीबेग खोला। उसके हाथ में शांति का पत्र आ गया।

उसे होश आया कि जिस बहन को इतना बड़ा धोखा हुआ है, उसका पत्र भी अनुराधा को न देकर मैंने उसे और अपने को भी धोखा दिया है। कम से कम अनुराधा और कुछ नहीं कर सकती थी तो सान्त्वना के शब्दों से शांति के आँसू तो पोंछ सकती थी।

मैंने बड़ा भयंकर अपराध किया। फिर वह सोचता मुगलसराय में उतरकर यह पत्र डाक से भेज दूँगा। अनुराधा उसे पा जायेगी। फिर सोचने लगा कि मैं घर छोड़ कर भाग रहा हूँ। विपत्तियों से हार मान ली है। लोग मुझे घर पर कितनी घृणा की दृष्टि से देखेंगे। सबका सहारा तोड़-कर आ रहा हूँ। किसी को न तो प्रणाम किया, न आशीर्वाद लिया। लोग क्या कहेंगे मुझे? कम से कम उन्हें खत तो डाल दूँ। क्षमा तो माँग लूँ।

इसी कल्प-विकल्प में डूबता उतराता, वह मुगलसराय पहुँचा। गाड़ी से उतर कर डाक घर गया, लिफाफा खरीदने ताकि लिफाफा खरीदकर चिट्ठी भर कर डाल दे। पर उसके पास पेंसिल तक नहीं थी जिससे वह पता तक लिख सके।

और हाँ, वह भूल ही गया था कि घर के लिए भी एक पत्र लिखना है? इतने आरत भरे शब्दों में उसने कुछ क्षणों के लिए कलम दावात तथा एक चिट की याचना बाबू से की कि उससे नहीं न कहते बना।

पत्र लिखकर वह बार-बार उसे पढ़ रहा था और पढ़कर फिर सोचता पत्र छोड़ूँ या नहीं इतने में ही बाबू ने पूछा—"आपका काम हो गया"। जल्दी से उसने पता लिख दिया, और कलम दावात बाबू को सौंप कर चिट्ठी डाक–डब्बे में डाल दी। यह अनुराधा के नाम उसका पहला पत्र था।

इधर घर पर केशर की प्रतीक्षा हो रही थी। किसी को यह विश्वास नहीं था कि केशर घर छोड़कर चला जायगा। नौ बजे रात्रि तक लोग यही सोच रहे थे कि किसी आवश्यक कार्य से कहीं चला गया होगा, आता ही होगा।

पर रात्रि अपनी कालिमा का पहाड़ लेकर ज्यों-ज्यों अधिक इस घर के ऊपर मड़राने लगी त्यों-त्यो आशा निराशा में परिणित होने लगी। दस बजे तक प्रतीक्षा हुई। उसके पश्चात् अनुराधा से धैर्य का कगार छूटता देख राधाचरण जी एक ओर और चन्दर दूसरी ओर शहर में उन्हें ढूँढ़ने निकले।

रात एक बजे तक वे इधर से उधर टक्कर मारते रहे। पर कहीं उसकी छाया तक का पता न लगा। वे व्याकुल हो गये। राधाचरण जी के सम्मुख एकाएक पीला पड़ने वाला केशर का चेहरा रह रह कर आकर खड़ा हो जाता और उससे व्यक्त होने वाली आशंका इस भय को जन्म देती कि जीवन संघर्ष में प्रतिष्ठा के पथ का वह सच्चा राही फिसलकर मौत को तो आमंत्रित नहीं कर बैठा। पागल ने कहीं मेरी भोली बहन को विधवा तो नहीं बना दिया।

कृष्णकान्त जी तो पत्थर हो गये। उन्हें काठ मार गया। उनकी पत्नी और मुर्दे में इतना ही अन्तर शेष था कि रह रह कर साँस चल रही थी। अनुराधा ने ऐसी स्थिति में पहले तो धैर्य से कार्य लिया पर धीरज का बाँध समय की लहरों से बाढ़ में टकराता टकराता कगार के वृक्ष-सा हो गया।

वह ऊपर बरामदे में एक कोने में बैठी राह जोह रही थी, अब आये। तारे भी यदि वह गिनती तो उसका समय कट जाता पर जीवन में उसने कभी तारे गिने नहीं थे।

उनका आना तो दूर रहा। उसके भाई और देवर भी जब रात्रि में एक बजे तक नहीं लौटे, तो उसका मन डूबने लगा। तिनका भी सहारे के रूप में उसे नहीं मिल रहा था। जिधर भी वह देखती; अमंगल रूप में विकृत भविष्य राक्षसी भेष-भूषा में अट्टहास कर उटता। भय से भयभीत वह नारी! भारत की नारी!!

आज उसे अनुभव हो रहा था कि संसार का सबसे बड़ा पाप औरत होना है। उसका वश चलता तो कालिदास के यक्ष की भाँति, प्रसाद के आँसू की भाँति वह धरती का कण-कण नाप डालती पर घर की ड्योढ़ी के

बाहर आज भी उसके पाँव नहीं निकल पाते थे जब उसके जीवन का सर्वस्व ग्रहणास्त है।

उसे नीचे गली में चन्दर की आहट लगी। उसकी अभिलाषा ने उसे आशा का मद पिलाया, पर नशा दूसरे ही क्षण उतर गया। जब ऊपर आकर उसने हारे हुए मन से कहा, "माँ, भैया आये?"

अनुराधा लपकी, उसके पास गयी।

"भैया, आए?"

"नहीं।"

"कोई, पता चला?"

"नहीं।"

"राधाचरण जी आये?"

"नहीं।"

"अच्छा मैं फिर जाता हूँ।"

"बबुआ जी, भोजन कर लीजिए। भैया भी आ जाते हैं, उनसे सलाह कर लीजिए।"

"धन्य हैं, आप। मेरे बदले आप ही भोजन कर लें। मैं जाता हूँ।"

"नहीं, भैया को आ लेने दीजिए।"

तब तक कृष्णकांत जी वहीं आ गए, उनकी पत्नी भी। ऊपर आवाज सुनकर उनके मन की कली भी खिलने का सुख-स्वप्न देखने लगी थी। पर सत्य ने सब को निराशा के अथाह जल में डुबा दिया।

इसी समय राधाचरण जी भी आये, हक्के-बक्के से, चेहरे पर हवाई उड़ती हुई।

"भैया का कुछ पता चला?"

वे मौन रह गये। उनके चेहरे ने कुछ कह दिया, पर चन्दर को उससे संतोष नहीं हुआ।

"बताइए न, कुछ पता चला?"

"कहीं पता नहीं चला।"

सब निराश होकर बैठ गए।

संभावना निराश हृदय में सहानुभूति की सहेली बनकर समा जाती है, जिससे बुझने वाले साहस-दीप में टप-टप स्नेह की बूँदें झरती रहती हैं और इससे आशा का सुहाग लुटने से बच जाता है।

परस्पर व्यक्त संभावनाओं एवं कल्पनाओं से सत्य तक पहुँचने की आशा की जाने लगी पर सूर्य-सा प्रकाशवान सत्य कभी-कभी इस भाँति बादल में छिप जाता है कि लोग दिन को रात समझने लग जाते हैं। ऐसी ही स्थिति में ये सब भी थे।

राधाचरण और चन्द्र उन्हें रात में भी ढूढ़ने के पक्ष में थे, पर कृष्णाकांत जी की सलाह पर यह तय हुआ कि तड़के भोर तक यदि केशर न आये, तो वे साथ ही निकल जाँय। सब सोये, भोजन किसी ने नहीं किया। नींद कहाँ, किसको आनेवाली थी। अनुराधा तो बरामदे में ही लाख समझाने पर भी बैठी ही रह गयी।

ये दोनों तड़के ही इतनी लगन के साथ केशर को ढूढ़ने निकले, जितनी लगन भारत ढूढ़ने में कोलम्बस को न रही होगी। अन्तर केवल इतना ही था कि एक जीवन के भार से अनाक्रान्त, आशा और विश्वास की नौका पर सरो-सामान के साथ चला था और ये दोनों चिर परिचित काशी की गलियों में बिना ज्ञान, ध्यान और किसी निश्चित ठिकाने के।

कृष्णकान्त का हृदय भी न माना। अन्त में वह घर से बाहर निकल ही पड़े। माता जी की स्थिति भी विकट हो गई थी। अब तक उन्हें दौरा आ जाना चाहिये था किन्तु अनुराधा कहीं दम न तोड़ ले, इसलिए वे अपने को सम्हाले थी। उनकी स्थिति उस समय सुमित्रा की सी थी।

किसी का कोई पता नहीं चला। लगभग साढ़े दस बजे आवाज आई, "चिट्ठी" बन्द दरवाजे के फोफर से डाकिये ने चिट्ठी घर में डाल दी। घर के इस विचित्र दृश्य परिवर्तन को मुन्ना कुछ समझ न पाता था। वह चुप-चाप अपनी माँ के पास अनाथ सा बैठा था।

"अभी आयी बेटा"—कहकर लपकी हुई अनुराधा बैठक में गई, पत्र उठा लिया।

उसे पहचानने में एक क्षण भी न लगा कि यह पत्र किसका है। जिस व्यक्ति की हस्तलिपि उसके हाथ में थी, वह वही था, जिसके अभाव ने घर को पागल बना दिया था।

उसने लिफाफा फाड़ कर पत्र पढ़ना आरंभ किया। इसमें दो पत्र थे। ऊपर ही केशर का पत्र था।

सौभाग्यमयी,

हार्दिक स्नेह स्वीकार करो।

यह पत्र लिखते समय अग्नि को साक्षी देकर की गई प्रतिज्ञा मैं भूला नहीं हूँ। पर आज तुम्हें छोड़कर जा रहा हूँ, सदा सदा के लिए नहीं, समय का फेर है, भाग्य पलटा खायेगा कभी न कभी लौटूँगा।

अपने देश की यह परम्परा रही है न, कि जब जीवन-रण में पति जाता था तो पत्नी उससे यह स्पष्ट कह देती थी कि मुझे विधवा होना अधिक सुखकर लगेगा अपेक्षा कृत आपके पीठ पर बाण के चिन्ह हों और समर भूमि से आप पलायित होकर लौट आँए।

सचमुच मैं समर भूमि से भाग रहा हूँ। लेकिन तुम्हारे सामने तुम्हारा हारा हुआ पति न जाय इसलिए वह जीवन के नए युद्ध की तैयारी करने अज्ञात दिशा को जा रहा है।

तुम निष्ठामयी पतिभक्ता, सावित्री सीता हो।

तुम्हारी स्मृति इस नए जीवन में मेरी शक्ति होगी। तुम्हारे सतीत्व का प्रसाद जहाँ भी मैं रहूँगा, मेरा अमंगल न होने देगा। ऐसा विश्वास मुझे है। तुम तो विश्वास की मूर्ति ही हो।

सच कहता हूँ विश्वास रखना एक दिन आऊँगा। विजय मेरे पाँव की चेरी होगी। उस दिन तुम्हें मुँह दिखाऊँगा। मेरी प्रतीक्षा करना, मेरे लिये।

अपनी स्मृति के रूप में मुन्ने को तुम्हारी गोद में सौंप दिया है, जी ऊबे तो उसे देखकर सन्तोष कर लेना।

जानती हो मैंने अबोध भाई के विश्वास का गला घोंट दिया है। वृद्ध पिता के बुढ़ापे की लकड़ी तोड़-मरोड़ दी है। मृत्यु-सैया पर पड़ी

माँ के कामना की मैंने होली जला दी है पर देखना तुम्हारा व्यवहार ऐसा होना चाहिये सबके प्रति कि कोई मुझे इसलिए कुछ न कह सकें कि तुम्हारी कृतज्ञताओं से उनका मुँह बन्द हो जाय। सबको मेरा प्रणाम कहना और घर भर के सूखे अधरों पर हो सके तो मेरे लिये अमृत की वर्षा करना। आऊँगा, एक दिन जरूर आऊँगा, प्रतीक्षा करना।

स्नेह के साथ
तुम्हारा ही
भगोड़ा पति

दूसरा पत्र शांति का था। क्रान्ति के उस वातावरण में आँसू की गंगा में गोते लगाकर अनुराधा के मन में पारस की सृष्टि हुई। वह वहीं सिसकने लगी। तब तक मुन्ना आया। लपक कर मुन्ने को उसने गोद में उठा लिया, उसने मां को रोते देखा। निरीह पुत्र भी रो उठा और बोला—"माँ पापूजी कहाँ हैं ?"

"तुम्हारे लिए बढ़ियाँ-बढ़ियाँ खिलौना लाने, फिर परदेश चले गये।" आँचल से मुँह ढक कर गोद में लेटे पुत्र ने माँ की सारी पीड़ा सोख ली। नारी की पूर्ण प्रतिष्ठा उसके मातृत्व में जो है। यौवन तो ग्लेशियर हैं गंगा की धारा गंगोत्री से ही युग-युग के लिए मंगल-स्रोत बहाती आयी है। सती का मातृत्व पुत्र को गोद में पाकर विवेक के रथ पर संयम का यात्री बन बैठा।

वैसी स्थिति में अनुराधा के आँसूओं की इति श्री हो गई। इसलिए नहीं कि आज वह मणिहीन सर्पिणी हो गई, अपितु इसलिए कि उसे उनका ध्यान-ज्ञान हो आया जिन्होंने उस रत्न के सहारे समय की बहती धारा में स्वर्ण मन्दिर स्थापित कर जीवन के सभी फलों के प्राप्ति की झूठी कल्पना की थीं।

वह ऊपर आई, यद्यपि उसके पाँव आना नहीं चाहते थे। अपने कमरे में गई। शांति का पत्र एक बार ध्यानपूर्वक पढ़ा, उसे बक्स में उसी प्रकार छिपा कर रख दिया, जिस प्रकार कभी पंचनद में कोहनूर छिपाया गया था।

वह अपनी अम्मा के पास आई, बोली—"माता जी उनकी चिट्ठी आ गई है, उनकी छुट्टी खत्म हो रही थी। राधाचरण आदि के कारण उन्हें रुकना पड़ता, इसलिए वे बिना कुछ कहे ही चले गये।"

माँ के मन की गिरती दीवार को चाँड़ मिला। कृष्णकान्त जी भी निराश मन लौट आए थे। पुलकित होकर वृद्धा ने अपने पति को संदेश सुनाया। कृष्ण कान्त जी ने कहा—"चिट्ठी लाओ, देखूँ तो जरा।"

उसने कहा—"बाबू जी नीचे ही है, चलिए दिखा दूँ।"

दोनों नीचे आये, पत्र देना तो दूर रहा आँखों में आँसू भरकर अनुराधा करुणाद्रवित होकर कहने लगी—"बाबू जी माता जी को संतोष मिले, इसलिए मैंने झूठे ही आप से कह दिया। यदि माता जी को सत्य बात मालूम हो जायेगी, तो वे जी न सकेंगी उनके लिए तथा बबुआ जी के लिए आप यदि झूठ बोल दें तो उन्हें जीने का सहारा मिल जायेगा।" कहते हुये धीरे से टेंट से निकाल कर उसने पत्र कृष्णकान्त जी को सौंप दिया।

पत्र देकर वहाँ अपने को न रोक पाई। ऊपर चली आई। कृष्ण-कांत जी ने चिट्ठी पढ़ ली। विक्षोभ से जल उठे। किन्तु उसने उनसे कुछ कहा था, 'कहीं सहारा ही न टूट जाय'। अतएव उन्होंने संयम से काम लिया।

नीचे ही ताख पर पढ़ते-पढ़ते पत्र उन्होंने रख दिया। ऊपर चले आए। आकर अपनी पत्नी को इतना ढाढ़स बँधाया कि गम का दर्द दूर हो गया।

हकसे-प्यासे राधाचरण और चन्दर भी हार कर चले ही आए। उनकी पगली जिज्ञासा को कृष्ण कान्त जी ने झूठी सान्त्वना से शांति दी। चूल्हे में उस दिन आग नहीं जली थी। अनुराधा ने सोचा झूठ के शमन के लिए यह धोखा बड़ा मीठा होगा कि मैं अपने को बदल लूँ और खाना बनाऊँ। थोड़ी देर ऊपर बातें होती रही। फिर राधाचरण सोने के लिए नीचे आए, ताखे पर रखा पत्र उनके हाथ लग गया। उनसे न रहा गया,

वे लपके हुए रसोई घर में पहुँच गये। वहाँ चन्दर मुन्ना से अपना मन बहला रहा था।

राधाचरण ने धीरे से अनुराधा को एकान्त में नीचे बुलाया। चन्दर छिपकर उनके पीछे एक अदृश्य कोने में आकर खड़ा हो गया।

"इस समय बातें छिपाना ठीक नहीं है। मैंने जीजा जी का पत्र पढ़ लिया है। काम बिगड़ जाने पर पछतावा ही जीवन भर हाथ लगेगा"

"भैया, मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करूँ।"

"शांति ने क्या लिखा था तुम्हारे पत्र में?"

"कैसे कहूँ भैया?"

"सुनूँ भी तो।"

"कुछ स्पष्ट नहीं होता पर जहाँ तक समझ पायी उस घर में उसे सब सुख सुविधाएँ हैं पर वह चैन से कतई नहीं है।"

'क्यों?'

'कुछ पता नहीं चलता।'

'तो इसमें ऐसी कौन सी बात थी कि वे घर छोड़कर चले गए।'

'यह तो मैं भी नहीं समझ पा रही हूँ।'

'कोई बड़ी बात जरूर है। इतनी छोटी बात की परवाह करने वाले जीव वे नहीं है। तुम कुछ भी नहीं जानती। घर पर तो कोई ऐसी बात नहीं हुई जो मुझसे छिपा रही हो।'

शांति को यह बात बिच्छू के डसन की भाँति लगी पर मर्यादा को बात की घूँघट से ढकने का उसने प्रयत्न किया। फिर भी वह सफल न हो सकी। उसके स्वर सत्य छिपाने में काँप उठे।

"भैया, तुमसे क्या छिपा है।"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं, परायों को कुछ बताया नहीं जाता। ठीक ही तो है। घर का भेद छिपा कर रखो, अनुराधा; मुझसे जरूर छिपा कर रखो; मैं पराया जो हूँ।"—कहते-कहते राधाचरण की आँखों में आँसू आ गए।

"ऐसा मत कहो भैया, मैं सचमुच कुछ नहीं जानती।"

"मैं मानता हूँ कि लज्जा और संकोच नारी का आभूषण है। घर की प्रतिष्ठा का उसमें पग-पग पर आवास है। वह उसकी रक्षा के लिए बराबर अपने विश्वास को भी धोखा देती रहती है। लेकिन अनुराधा तुम्हीं बताओ एक माँ के पेट से हम पैदा हुए, एक साथ खेले कूदे, बड़े हुए फिर तुम दुखी रहो तो मुझे कौन सा सुख मिलेगा। माता और बाबू जी को तो जाने दो। तुम्हें मुझपर ऐसा अविश्वास नहीं करना चाहिए। यदि मुझे पहले ही सब बातें मालूम हो गई होतीं तो सम्भवतः बना हुआ यह घर न बिगड़ता। अब भी अधिक नहीं बिगड़ा है, अनुराधा, तुम्हें मेरी कसम है।"

थोड़ी देर दोनों मौन रहे। अनुराधा की पलकों से प्रताड़ना के आँसू बहने लगे।

"तुम मेरे साथ चलो। मेरे घर का समस्त वैभव, सुख पहले तुम्हारे उपभोग के लिए है फिर कहीं अवशेष पर मेरा अधिकार होगा।"

अनुराधा की आँखों से अश्रु की गंगा प्रवाहित हो उठी। जिससे उसके मानस का ताप बढ़ने लगा। उसने भरे हुए स्वर में कहा "क्या कहते हो भैया, इस हालत में, जब अम्मा जी अधमरी हैं, बाबूजी की उर्द्धस्वासा चल रही है और बबुआजी को कोई सहारा नहीं है, मेरी ननद कलप रही है, मैं उन्हें छोड़ दूँ। अगर कोई कार्य प्रयोजन होता तो मैं जरूर चलती। लेकिन इस घर से तो केवल सदा-सदा के लिए दुख दर्द मिटाने के लिए सुहागिन नारी की लाश ही जा सकती है, बाबू जी ने यही उपदेश दिया था।"

"कौन कहता है कि तुम सबको छोड़ दो। वे भी उतने ही मेरे हैं जितनी तुम। पर इस स्थिति का अन्त तो करना ही है, चाहे जैसे हो।"

चन्दर से न रहा गया। वह खाँसता हुआ वहाँ पहुँचा, जहाँ वे दोनों डूब रहे थे। चन्दर को देखते ही दोनों के बात की दिशा बदल गयी। चन्दर वहाँ मौन बैठ गया। अनुराधा धीरे से उठ कर ऊपर चली गयी। राधाचरण और चन्दर दोनों परस्पर वार्त्ता करना चाहते थे पर

वे एक दूसरे से बोल नहीं पाते थे। थोड़ी देर के बाद राधाचरण जी ने ही साहस किया।

"भोजन वगैरह किया।"

"आप कर लीजिए।"

"मैं तो तब तक भोजन आदि नहीं कर सकता जब तक घर भर भोजन न करे।"

"ऐसा कैसे हो सकता है।"

"सब कुछ हो जायेगा। रोने-धोने से काम नहीं चलेगा। चलो, हम दोनों सबसे कहें।"

राधाचरणजी और चन्द्र ने जाकर एक-एक व्यक्ति से निवेदन किया। कोई तैयार न हुआ। अन्त में समझाने-बुझाने और एक दूसरे का ध्यान रखने की बात पर कहीं जाकर लोगों ने भोजन किया। खाया किसी से नहीं गया, किसी ने एक कौर और किसी ने दो।

इसके पश्चात् राधाचरण के विशेष आग्रह पर उनके साथ चन्द्र घूमने निकला।

पायो नाम चारु चिंतामणि

राधाचरण और चन्दर गुमसुम टहलते, डोलते चौक पहुँचे। वहाँ राधाचरण ने चन्दर से विश्वनाथ दर्शन का अनुरोध किया।

वे मंदिर के द्वार पर आये। यह उस मंदिर का द्वार है जिस पर समय के सभी युग सारथी आकर माथा टेक चुके हैं। ऐसे करोड़ों ने भी इस ड्योढ़ी पर श्रद्धाविनत हो शीश झुकाया है जिनका नाम-धाम, ठौर-ठिकाना कोई नहीं जानता। उसी श्रद्धा के विश्वास रूप विश्वनाथ के द्वार पर दो हारे खड़े हैं, एक दूसरे को विश्वास दिलाने के लिए।

उस सकरी गली में ये इतनी देर मौन खड़े रहे कि कुछ इन्हें धक्का देकर आगे निकल गए, कुछ ने इन्हें चलने का आदेश दिया। ये बेहोश तो नहीं थे, पर इनका होश कहीं खो गया था। धक्के ने उसे अपने स्थान पर ला दिया। लोगों के हाथ में माला, फूल, बेल-पत्र देख राधाचरण जी ने कहा, "रुको। माला फूल ले लें और जूता-आदि माली के यहाँ उतार दें।"

माला-फूल हाथ में लेकर वे मंदिर में प्रविष्ट हुए। वहाँ संगमरमर पर जड़े रुपयों पर लोग चलते हैं, गरीब चलते हैं, धनी चलते हैं, रोगी चलते हैं, भोगी चलते हैं, योगी चलते हैं, सब समान, श्रद्धानत, भोले बाबा का दरबार जो है। वह लक्ष्मी नहीं, श्रद्धा की भूमि है। मंदिर के मस्तक पर स्वर्ण किरीट, कढ़े हुए फूलों को अंजुलि में ले ध्यान-मग्न नीलकंठ की साधना-पताका सम्हालता है। नीचे विश्वनाथ सहज प्रकृत रूप में नंग-धड़ंग अपनी शक्ति से विश्व का पालन करते हैं।

इस सर्जनहारे के सम्मुख पचीसों जीवन हारे खड़े हैं, जिनमें एक ऐसा बेसुध जिसे पहली बार जीवन की सुधि आयी है, हाथ जोड़ कर आँख-मूँद कर खड़ा हो पीछे से धक्के खा रहा है। चन्दर मनौती मान रहा है "मेरे भैया, सकुशल लौटें, विश्वनाथ बाबा! मैं सवामन दूध चढ़ाऊँगा।" उसे तो केवल भैया याद थे, वह क्या जाने कि सवामन दूध कितने का होता है।

वे वहाँ से चलकर दशाश्वमेध पहुँचे। सीढ़ियों से उतर रहे थे कि माझियों ने आवाज लगायी "भैया, नाव।"

राधाचरण जी ने संकेत में उत्तर दिया, लाओ।

दोनों नौका पर बैठे। राधाचरण ने नाव अस्सी की ओर ले चलने को कहा।

माझी ने डाढ़ा चलाया। चन्दर ने देखा वृत्ताकार झिलमिल लहरियाँ फैलती-फैलती जलराशि में विलीन हो रही है। उसी बीच राधाचरण ने बात छेड़ दी।

"काशी के घाट उसकी शोभा हैं। संसार के किसी नगर को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं है।"

"पर काल का प्रहार अब वे भी नहीं सह पा रहे हैं।"

"ऐसी तो बात नहीं है, जितना प्रहार इन्होंने सहा है, उतना अन्य किसी ने नहीं। लहरों से टकराते-टकराते इनकी छाती में छेद हो गया है, पर लोगों के आनन्द के लिए काशी-वासियों के सुख के लिए, ये पत्थर क्षण-क्षण घात-प्रतिघात सहते चले जा रहे हैं।"

"इसीलिए तो ये एक एक कर गंगा की गोद में विलीन होते जा रहे हैं, पर इनकी चिंता किसे?"

"बनारस में रह कर ऐसी बात करते हो, मैं तो समझता था घाटों की इन एक-एक सीढ़ियों का अपना इतिहास है। इतिहास की पोथियों में भले ही इनका नाम-निशान न हो पर भारत के सांस्कृतिक इतिहास की रचना सदा से इन्हीं सिद्धपीठों पर होती आयी है। ये कैलाश के

शिलाखंड लोक-मंगल के सोपान है। ये अपने लिए नहीं औरों के लिए जीते हैं, औरों के लिए मरते हैं। ऐसों को मारने के लिए काल के पास अस्त्र-शस्त्र है ही नहीं।

"क्या बातें कहीं आपने! लोक के लिए चकना चूर होने वालों के प्रति लोग क्या करते हैं शायद देखा नहीं है।"

"तुमने देखा नहीं, शीतला घाट पर क्या हो रहा है।"

"वहाँ बैठने वाले की छाती पर स्वार्थ का रास-रंग।!"

"किस का स्वार्थ?"

"व्यक्ति का स्वार्थ।"

"कैसा।"

"लाखों रुपये लग रहे हैं, जिनमें तीन चौथाई चोरों के घर जायेंगे। गंगा की छाती पर पाप लीला का ताडंव हो रहा है। जनता की कमाई लुटी जा रही है, इससे बड़ा और क्या व्यक्ति का स्वार्थ हो सकता है?"

"ये लूटनेवाले हमारे तुम्हारे ही घर परिवार के तो लोग हैं।"

थोड़ी देर वे मौन रहे पर नाव लहरों पर फिसलती रही। डाड़ चलाना माँझी ने बंद नहीं किया था। कभी वे घाट की ओर देखते, कभी आकाश और कभी पार में बिखरी विश्वास की सिकता राशि को।

एक-एक कर घाट पीछे छूटते जाते और नौका आगे बढ़ती जाती। वे हरिश्चन्द्र घाट पहुँचे।

उस घाट पर जलती हुई एक दो चिताएँ बालू, लकड़ी और पटिया से लदी नावें, सड़क और घाट को मिलानेवाली इटें की नये ढंग की सीढ़ियाँ, एक ओर सीमेंट का प्रसाद, दूसरी ओर ढहे हुए घाट का मल था। दोनों सब कुछ देख रहे थे।

"चन्दर, क्या विचित्र दुनियाँ है, एक तरफ तो मुरदे जल रहे हैं, दूसरी ओर पुराने घाट ढह रहे हैं, तीसरी ओर नया घाट बन रहा है और उसी बीच में व्यापार चल रहा है, जीने के लिए।"

"मृत्यु किसी के बस में जो नहीं है, इसीलिए सब हाय, हाय, करते फिर रहे हैं।"

"मृत्यु तो बहुत सरल है चंदर। जीना कठिन है। यह जानकर जीवित रहना और भी कठिन है कि जीवन का अंत मृत्यु है। पर सब जीते हैं, सब जीना चाहते हैं, जीने के लिए सब दिन-रात एक किए हुए हैं। जीवन ही इस धरती का सत्य है।"

"सत्य नहीं स्वार्थ।"

"स्वार्थ और सत्य का एकान्वय ही तो जीवन है। इसलिए जीवन की पूजा की जाती है, मृत्यु की नहीं।"

"फिलासफी तो नहीं जानता, पर इतना जरूर जानता हूँ कि इस संसार का सबसे बड़ा सत्य जीवन नहीं पैसा है।"

"इसीलिए तो सब उसको अर्जित करते हैं।"

"पर आज के युग में सत्य से उसका संबंध सौतेली माँ का है। जो जितना झूठा है, कुचक्री है, दुष्कर्मी है, वह उतना ही अधिक पैदा करता है और जो जितना सत्यवादी है, सच्चे रास्ते पर चलनेवाला है, वह उतना ही अधिक कष्ट में रहता है।"

"तुम भूलते हो। मेरे यहाँ तो तुम गये ही हो। चौक में कुल्फीवाले की दुकान पर हम गए थे न। पहले वह केवल कुल्फी बनाता था। चार महीने उसकी खूब चटकती थी। वही कमाई साल भर खाता था। पाँच-छः महीने तो बादशाहत चलती थी, फिर फाँकाकशी। उसका लड़का जब थोड़ा सयाना हुआ तो उससे यह नहीं देखा गया। उसने उसी दुकान में चाय, शरबत, कुल्फी सबकी दुकान खोल दी। जगह उसके पास थी ही। आज उसके पास १०–१२ नौकर हैं और तीन-चार मकान। यह केवल तीन-चार वर्ष की ही कमाई है। वह झूठ भी नहीं बोलता, गला-सड़ा माल भी नहीं बेचता। यह तुम्हारा भ्रम है।"

"भ्रम हो सकता है। पर कभी-कभी भ्रम सत्य से भी अधिक मजबूत हो जाया करता है। हम तो कुलफी की दुकान भी भ्रम की मर्यादा के कारण नहीं खोल सकते।"

"सत्य कभी भी किसी भी रूप में लज्जामूलक नहीं होता, चंद्र, सदा पूजनीय है। यदि तुम समझते हो कि हमारी मर्यादा भ्रम है तो उसे हटा फेंको।"

"हटाना तो चाहता हूँ, किंतु बाबूजी...।"

"भारत का पिता-पुत्र के पुरुषार्थ में बाधक नहीं, साधक ही होता आया है और बाबूजी तो देवता हैं।"

"काश! वे मनुष्य होते।"

"चाहते क्या हो, मुझसे कहो न, सब ठीक हो जायेगा।"

"यहाँ नौकरी मिल नहीं सकती, मिलेगी भी तो कर नहीं सकता, घर की लाज; रोजगार जानता नहीं और कर भी नहीं सकता। मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि गृहस्थी के जंजाल से ऊब कर भैया बुद्ध बन जायेंगे। करते ही क्या बेचारे। और भाभी......" कहते-कहते उसका कंठ रुद्ध हो गया।

राधाचरण अत्यन्त गंभीर हो गए। उन्होंने कड़कती हुई बिजली के स्वर में कहा—"मानता हूँ, भाभी के दुख से दुखी हो, भैया की पीड़ा से तुम घायल हो, माँ के दुख से प्रताड़ित हो, बाबूजी के कष्ट से मर्माहत हो पर सोचो तुम्हारा दुखी होना उनके कष्ट को क्या हलका कर देगा। उन पर तुम बोझ बनने के लिए नहीं? उनका बोझ उतारने के लिए हो। यह बोझ काम करने से दूर होगा, औरतों की तरह सिसकने से नहीं।"

"नौकरी कहाँ मिलेगी।"

"नौकरी करके कौन जग जीत लोगे।"

"तो क्या करूँ।"

"पटिया, लकड़ी, भूसे की आढ़त करो।"

"बाबूजी मानेंगे। और वे मानें तो भी...।"

"तुम्हारे यहाँ रुपयों की कमी नहीं है। अनुराधा के तीन हजार रुपये जमा हैं, वे तुम्हारी पूँजी होंगे। तेलहन की आढ़त की व्यवस्था पहले करो। यहाँ तेल की मिलें बहुत हैं। देखो बारह हजार की बचत मुझे इस साल हुई है।"

"ब्राह्मण होकर तेली का काम।"

"हाथ फैलाकर, सड़क पर भिक्षा ही माँगो, दशाश्वमेध की पटरियों पर सोओ, जो मन आए सो करो।"

"मैं तो चाहता हूँ, पर बाबूजी···।"

"बाबूजी को मनाना, मेरा काम है।"

राधाचरण ने कहा—"माँझी वापस लौटो।"

उस एकांत सृजन बेला में बहते पानी पर छप-छप डाड़ा चल रहा था और उससे भी गतिवान चन्दर का मन उसी प्रकार मचल रहा था जिस पर पंछी के भींगे पंख सूर्य की किरणों को स्पर्श कर और जाल में फँसी सफरी का तन जल से प्रथम विराग पर।

स्वप्न समाप्त हुआ। जागरण की काकली भैरवी गाने लगी। जनरव मनरव सा उसे मधुर लगने लगा। दशाश्वमेध के सामने नौका आयी। घाट पर माइक पर कोई गा रहा था, श्रोता सुन रहे थे।

अब लौं नसानी, अब ना नसैहौं।

पायों नाम चारु चिन्ता मनि, उर करते न खसैहौं।
स्यामरूप सूचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं॥ २॥

पर बस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पन कै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं॥ ३॥

दोनों घर आए।

तूफान के बाद वातावरण शांत हो जाता है, वर्षा के बाद आकाश निर्मल हो जाता है, और पतझर में पुराने पत्ते झर जाते हैं पर ये सबके सब अपना प्रभाव अपनी क्रीड़ा भूमि पर छोड़ जाते हैं। चन्दर के तमिस्र मन में विश्वास की बाती गंगा की लहरों पर राधाचरण ने जला दी थी, विश्वास के स्नेह से उसने अंतर आस्था का दीप भर दिया था किंतु निशीथ के मरघट की भांति उसके घर की सिद्धि शव-साधन कर रही थी।

तीन चार दीपक सामने रखे थे। पैरों की आहट पा कोई भूली आपे में आ मिट्टी के दीप को तिनके की सलाई से जलाने बैठी थी। उसके

कुल का चाँद उसके आँचल के आमवस में खो गया था। काटी बरी, दीप जला। पाला पड़े हरे खेतों की भाँति सूखी, एक निठ-विरागिन की भाँति रूखी अनुराधा पर कर्त्तव्य का पानी पड़ गया पर वह हरी न हो सकी। चन्दर वहीं पास बैठ गया। राधाचरण ऊपर छत पर चले गए। मुन्ना जाकर चन्दर की गोद में बैठ गया।

"भाभी तुम्हारा चेहरा सूखा है, तुमने भोजन क्यों नहीं किया।"

"बबुआ जी, पानी लाऊँ।"

"मैंने, कुछ पूछा है भाभी।"

"मैंने भोजन तो किया है, बबुआ जी।"

"झूठ बोलती हो, भाभी।"

"नहीं, तुमसे झूठ बबुआ जी।"

"भाभी तुम्हें, मेरी कसम है।"

"भूख लगेगा तो खा लूँगी, बबुआ जी।"

"तुम्हें मुन्ना की कसम है।"

"बात मानो, बबुआ जी।"

"तुम्हें, माँ और बाबू जी के बुढ़ौती की कसम है।"

"सच कहती हूँ, बबुआ जी। यों कसम मत धराओ, पापी पेट कब का माननेवाला। ऐसी ही सती सीता सावित्री होती, तो उनके घर छोड़ते ही प्राण न निकल जाते।"—अनुराधा का कंठ रुध गया। चंदर की आँखों के गरम आँसू अनायास उसके पलकों की कोर दयार्द्र हो चूमने लगे।

"भाभी मैं तो यही समझता हूँ कि सीता और सावित्री गढ़ी हुई कहानी हैं और तुम सत्य हो। भाभी, जीवन में तुमने मुझे चाटा तक मारा है, पर मुझे कभी कष्ट नहीं हुआ। पर आज भाभी, तुम्हें क्या हो गया है। यदि भैया होते और वे तुम्हें अपनी कसम दिलाते तो क्या तुम ऐसा कह सकती थी। भाभी, तुमसे मुझे स्वप्न में आशा नहीं थी कि तुम मुझे कष्ट दोगी, मेरे विश्वासपर बज्र हनोगी।"

अपनी बात वह पूरी भी न कर पाया था कि आँसू का सावन-भादों उसकी आँखों से झरने लगा। अनुराधा का आँचल उसकी हाथ में आ गया वह आँसू पोंछते हुए कहने लगी, "बबुआ जी सीता को लक्ष्मण पर भले ही भरोसा न रहा हो पर मैं अपने राम से भी अधिक विश्वास तुम पर करती हूँ क्योंकि मैं तुम्हें देवर और पुत्र दोनों मानती हूँ। विश्वास रखो, आज रात मैं तुम्हारे सामने भोजन करूँगी। पागल हो गये हो।"

'भाभी अच्छा होता यदि मैं पागल होता।' कम से कम इस दुख दर्द अनुभव तो न कर पाता। इस जीने से मरना कहीं अच्छा है। कहते कहते चन्दर रुद्ध हो गया।

"बबुआ जी, आप ऐसी बातें कर रहे हैं। आपके भरोसे मैं जिन्दी हूँ, बाबू जी की आशा जिन्दी है, माता जी का विश्वास जिन्दा है। यदि आप ही ऐसा कहेंगे तो हमारा क्या होगा।"—अनुराधा यह कह ही रही थी कि उसके आँचल से सरक कर मुन्ना बाहर निकल आया खड़ा होकर चन्दर के अब से आँसू अपने फूल से कोमल हाथों से पोंछने लगा।

"बबुआ जी, अब चुप रहिए, नहीं मुन्ना अदंक जायेगा।"

चन्दर थोड़ी देर मौन रहा। पुनः उसने खड़े होकर मुन्ने को गोद में उठा कर उछाला और कहने लगा, भाभी अब नहीं रोऊँगा, मुन्ना नहीं अदंकेगा बाबूजी की आशा नहीं मरेगी, माँ का विश्वास नहीं मरेगा और भाभी अब तुम हँसोगी, अपने लिए नहीं मेरे लिए ताकि मैं हँस सकूँ, विश्वासपूर्वक श्रद्धा का आशीर्वाद ले सकूँ।" कहते-कहते उसने अपनी भाभी का चरण पकड़ लिया और पुनः कहने लगा, "भाभी आशीर्वाद दो, मेरे रास्ते के सारे काँटे फूल बन जाय, यदि उन्हें चुभना ही है तो केवल मुझे चुभें, मेरे घर के किसी प्राणी को अपना निशाना न बनाएँ।"

"तुम्हें मुझसे आशिर्वाद माँगने की जरूरत नहीं है, बबुआ जी, मेरा रोआँ-रोआँ तुम्हें आशिर्वाद देता है। विपत्ति से घबराना नहीं चाहिए। जो घबरा जाते हैं वे हार जाते हैं और तुम हारने के लिए नहीं जीवन जीतने के लिए बने हो। भगवान तुम्हें शक्ति दे।"

"भाभी एक बात और।"

"कहो भी।"

"तुम उसे स्वीकार कर लोगी न।"

"एक बात नहीं, हजार बात और हजार बार।"

"बुरा तो नहीं मानोगी।"

"तुम बुरा काम कर ही नहीं सकते। अगर कहने में संकोच है तो बिना कहे ही कर लो।"

"भाभी अब मैं रोजगार करना चाहता हूँ।"

"पढ़ाई लिखाई, छोड़कर।"

"हाँ भाभी, हाँ कह दो।"

"मैंने तो सोचा था तुमको......।"

बीच में ही चन्दर बोला, 'हाँ भाभी मैंने भी सोचा था, इंगलैंड पढ़ने जाऊँगा, पर वह भ्रम है। उस भ्रम में मैं अब और नहीं फँसना चाहता इसलिए तुम हाँ कह दो आज के युग में खुमचा लगाना डिप्टी कलक्टर बनने से कहीं अच्छा है, मेरी भलाई के लिए भाभी कह दो, हाँ।

इतनी बात हो ही रही थी कि राधाचरण ऊपर से अनुराधा के पास आ धमके।

"अनुराधा, कल तुम्हें घर चलना होगा, माता जी और बाबूजी से पूछ लिया। तुम्हें घर पहुँचा कर परसों यहाँ लौट आऊँगा। फिर हम और चन्दर व्यापार के काम से तीन-चार दिन के लिए बाहर जायेंगे।"

"जिसको जाना है, उससे क्यों न पूछा।"

"क्या बात ? कभी तुमसे पूछा है। मैं तो घर के मालिकों से बात करती हूँ।"

"तो बाबूजी ने स्वीकार कर लिया, माताजी ने आज्ञा दे दी।"

"तो मैं झूठ बोलता हूँ।"

"तो मैं भी झूठ नहीं बोलती। घर भर को दुखी छोड़ कर मैं नहीं जा सकती, कहीं नहीं जा सकती।"

"अपने मन की हो गई हो।"

"हाँ अपने मन की हो गई हूँ। जो समझो।"

"तो नहीं चलोगी?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"इस घर से दुख-दर्द मिटाने के लिए मैं नहीं, मेरी लाश ही जा सकती है। अच्छा मजाक है; घर भर को दुख के भाड़ में झोंक कर मैं नैहर आराम फरमाने चलूँ। यह मुझसे न हो सकेगा।" क्रोधाद्र स्वर में उसने कहा।

"चली न जाओ, भाभी, मन आन-मान हो जायेगा।"

"जिस औरत का मन अपने घर पर नहीं आन-मान हो पाता उसे स्वर्ग भी आराम नहीं दे पाता, बबुआ जी।"

अनुराधा के क्रोध से राधाचरण परिचित थे। उन्होंने तुरन्त बात बदल दी।

"खाना ओना तो खिलायेगी, न कि वह भी नहीं हो सकता

सभी प्रकार के उपाय व्यापार व्यवस्था के परिसंचालित करने की स्वीकृति लेने में राधाचरण को आपनाने पड़े।

चन्दर शांति के नाम पर अनुराधा ने दूसरे दिन प्रातः इस व्यवस्था में पूर्ण-योग देने का आश्वासन दे दिया।

जीवन की आर्थिक प्रवञ्चना से मुक्ति की नयी आशा किसी को संतोष न दे सकी। मनुष्य ने मौद्रिक आवश्यकताओं का स्वयं निर्माण किया है। वह मुद्रा का स्वयं आविष्कारक है अपने कृति के प्रति मोह मानवीय लिप्सा हो सकती है किन्तु वह मानव का प्राण नहीं बन सकता। और जिस घर में प्रत्येक प्राणी मानस की व्यथा से प्रताड़ित और पीड़ित हो, उस घर में आर्थिक शांति कल्पना ग्रीष्म के प्यासों के लिए सागर का पानी मात्र बन सकती है।

दुख के दिन अब बीतत नाहीं

यह मथुरा है। कभी कृष्ण की क्रीड़ा भूमि थी आज केशर की शरणस्थली।

आज केशर को कई दिन यहाँ आये हो गया है। उसको कोई रुकने का भी ठीक स्थान नहीं मिल रहा है। बिलबिलाता वे घर बार वह भटक रहा है। करे भी तो क्या करे, बेचारा। कोई परिचित नहीं। वह यहाँ किसी को जानता भी नहीं। किसी के पास जाय तो कैसे जाय। पास में लाये गये उसके जो रुपये थे, वे भी धीरे-धीरे खर्च हो रहे थे। परदेश का जीवन पीड़ा की तरह दुःखमय होता है।

सोने पर रात में भी उसे नींद न आती। अनेक चितायें केशर को खाये जा रही थी। पर वह सोचता, जो विरागी हो चुका, संसार उसका क्या करेगा? जो चितारूपी चिता पर जल रहा है, उसे अंगारों की क्या परवाह! सुबह ही सुबह उठकर वह एक पास की संकुचित घिनौनी गली से गुजरा। पानी बरसने के कारण उस पर कीचड़ ही कीचड़ हो गया था। नर्क भी इस गली से कहीं अच्छा है! पर कोई मार्ग न देख केशर को उस रास्ते जाना ही पड़ा। उसके पैर के जूते, जो शांति की शादी के अवसर पर वह कलकत्ते से लाया था, बड़ी कृपणता से जिसे वह पहनता था, कीचड़ में सनकर लत्ते हो गये। पहनी हुई धोती होली के रंगीन कपड़ों की भांति मटमैले रंग से रंग गयी। केशर ने सोचा था, अभी दिन निकलने में काफी देर है। पर इस समय दिन के नौ बज रहे थे। घनघोर घिरी बदली के कारण कुछ दिखलाई न पड़ रहा था। उसके पास घड़ी भी तो न थी!

केशर हफ्तों से काम की खोज में इधर उधर भटक रहा था। पर काम कहीं किसी के जेब में नहीं था जो उसे तुरत मिल जाता। कितने घरों के दरवाजे वह खटखटा आया, कितने बाबुओं से कई दिन जाकर उसने विनती की। पर कोई उसकी सुनता ही न था। उसे कोई जान भी न पाया था कि वह कौन है। किस पवित्र वंश का यह रत्न है। आज समय के फेर से वह यहाँ वहाँ फटेहाल भटक रहा था। हर जगह उसे 'नो वैकेन्सी' के रूप में कर्णकटु शब्द सुनने को मिलते।

एकाएक केशर की नजर सामने लगे साइनबोर्ड पर पड़ी। रंगबिरंगे नीले, लाल, हरे बहुत से साइनबोर्ड लगे थे। उनको केशर ने पढ़ा। अनेक दैनिक अंग्रेजी, हिन्दी मासिक पत्रों के विज्ञापन देख केशर ठिठक गया। यह वही स्थान है जहाँ पहले पहल जब वह मथुरा में काम के लिये निकला तो गया था। यह एक पेपर स्टाल था। मथुरा का सबसे बड़ा पेपर स्टाल। उस दिन केशर साहस कर भीतर एक पुराने कमरे में, जहाँ साधारण सी दो एक कुर्सियाँ रखी थी, हलका अंधेरा था, गया था। संयोग से उस दिन मैनेजर साहब ही नहीं थे। मैनेजर के स्थान पर उस दिन चपरासी ही आसीन था! केशर द्वारा काम की याचना करने पर उसने टूटे लहजे में कहा था, "बाबू नहीं हैं। एक मनयीं का जरूरत हय। अखबार टेशन से लिआय के। आडर बाँटे के काम हव। का करबा ई काम आप···।" उसने दस दिन बाद मैनेजर साहब से मिलने की आज्ञा दी थी। यद्यपि बोली उसकी ओर की थी पर परिचय वह न पूछ सका

आज शायद वही दसवाँ दिन था। केशर रुक कर, आफिस के उस कमरे में पहुँचा। एक मोटा तगड़ा आदमी दिखाई दिया। वह टूटी कुर्सी पर बैठा, सफेद कागज पर अखबारों के बिल बना रहा था। केशर को देख उसने कहा—

"कहिये, बाबू जी!"

"जी! मैं कुछ काम से आया हूँ।"

"क्या काम है, सरकार?"—उस मोटे तगड़े व्यक्ति ने सादर संबोधन कर केशर के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर पूछा।

"यही आपके यहाँ एक आदमी की जगह खाली थी। आपके सह-योगी ने बताया था। यदि मुझे कोई काम दे सकें तो आपका आभारी रहूँगा।"

"एक जगह तो है। अखबार स्टेशन से लाना होगा। उसे बाँटना होगा। एक आदमी की कमी पड़ गयी है। वह बीमार हो गया है।" उसने कहा—"पर यह काम आप के योग्य नहीं।"

"मुझे कोई भी कार्य स्वीकार है। आप जो कहें मैं सहर्ष करूँगा।" केशर की वाणी में विनम्रता थी।

तो पच्चीस रुपये माहवार दे सकने की स्थिति में मैं हूँ। सुबह आठ बजे आना होगा, छः बजे सायं आपको छुट्टी मिलेगी। यदि आप चाहें तो स्वीकार करें। आप भले मनुष्य लगते हैं इसीलिये मैं पहले आपको ही स्थान दे रहा हूँ। नहीं तो कई लोग जान खाये हुए थे।"

"यह आपकी कृपा है! कल से मैं सुबह आऊँगा।" केशर ने आभार प्रकट करते हुए कहा—"आप जो भी दे देंगे, मुझे मंजूर है।"

प्रतिदिन सात बजे सुबह केशर वहाँ जाता।

सुबह सुबह ही मेल से उसे अखबार स्टेशन जाकर लाना होता। टूटी हुई खच्चर साइकिल जो सम्भवतः बीस-पच्चीस वर्ष पूर्व मैनेजर साहब के ससुराल से मिली थी, उसके जिम्मे पड़ी। मैनेजर साहब के दो लड़के स्वयं अखबार बाँटते। आवश्यकता पड़ने पर खुद भी आस-पास के क्षेत्रों में वे 'पेपर' पहुँचा आते। पर मैनेजर को स्वयं जाने में कष्ट होता।

वह जन्मजात दरिद्र था। कृपणता की हद वह कर देता। स्टेशन से पेपर लाकर केशर उसे गिन, मिलाकर रख देता। अपने क्षेत्र के लिए लगभग साढ़े आठ बजे वह अखबारों का बोझ टूटी साइकिल के कैरियर पर बाँधकर चल देता। मैनेजर साहब की आज्ञा से सायकिल पाँच बजे तक अठारह मील का चक्कर लगा लेती। वह थककर चकनाचूर हो लौटता। पुनः सायँकाल "ताजा-समाचार—ताजा समाचार" का नारा लगाता। वह सड़कों पर सवारी गाड़ी की तरह दौड़ता तब कहीं सात बजे उसे फुरसत मिल पाती। उसे किराये पर एक कोठरी अब मिल गई थी।

केशर का रंग धीरे-धीरे काला पड़ने लगा। बासन्ती रंग का गोरा मुख, शुष्क हो गया था। उसके मुख पर कभी हँसी की आभा देखने को न मिलती। दिन भर के श्रम से थककर वह चूर-चूर हो जाता। सुबह साधारण खाना खाकर निकला केशर सायँ सात बजे अपने कच्ची मिट्टी के बने, ओरी के छाये, ठिगुने दरवाजे वाले कोठरी में प्रवेश करता। सलाई से डेबरी जलाकर, जो उसके आवास को भी प्रकाशित करने में लज्जा का अनुभव करती, उसी के मद्धिम टेम में कभी खिचड़ी, कभी रोटी दाल दमकला पर बना कर खा लेता। कभी दो एक आने के जलपान पर ही रात गुजर जाती। पच्चीस रुपये महीने। बारह घण्टे की करारी नौकरी। बैल की चाल। साइकिल खच्चर की भांति खींचना!! केशर का जीवन शुष्क होता चला गया। दोहरी चोट उसे लगती। फिर भी अधिक से अधिक आठ आने रोज खर्च कर वह शेष बचाता चलता! उसे विश्वास था कि एक एक बूँद कर पूरा घड़ा भर जाता है। क्या कुछ दिन में मैं रुपये जुटाकर घर न भेज सकूँगा।

मुन्ना का कोमल बचपन!! वृद्ध पिता का भावुक मुख! शांति का विदाई के समय का क्रंदन!! अनुज चन्दर का अनुराग!! माँ की ममता!! एक एक कर केशर के मन में भावनायें उठातीं। पर वह बेबस था। सोचता "मैं बटोर कर इकट्ठा सबके लिए रुपये भेज दूँगा। घर खुशहाल होगा। पुनः बसन्त की बहार आयेगी। सभी प्रसन्न होंगे।" इन्हीं विचार वितर्कों में डूबते उतराते उसका जीवन बीत रहा था। उसकी आशायें मिट्टी में मिल रही थीं। "मेरे मन कछु और है कर्ता के कछु और।"

सुबह से लेकर घर-घर उसे घूमना पड़ता। हाकर बन दरवाजे-दरवाजे गली-गली चक्कर काट "ताजा समाचार, नयी खबर···!...!" आदि नारे लगाते-लगाते उसका जीवन बीत रहा था। केशर से जितना होता जी लगाकर काम करता, पर मैनेजर साहब सदा नाखुश रहते।

एक दिन केशर ने अपने सहयोगी हाकर जयलाल से कुछ कठोर बातें कह दीं। अपने मान का केशर को सर्वदा ध्यान रहता। सच

कुछ वह सह सकता था, पर अपनी आत्मप्रतिष्ठा जो उसे जन्म से संस्कार स्वरूप मिली थी कदापि त्याग नहीं सकता था। एक दिन जयलाल ने भद्दा मजाक केशर से किया। उसने उसे करारी फटकार बतलाई।

यह खबर मैनेजर साहब को लगी। उन्होंने तुरन्त ही केशर को काम छोड़ देने के लिए कहा। असल में जयलाल मैनेजर साहब का भांजा था। भांजे की बात मामा कैसे टाल सकता था। मैनेजर के तीव्र उलाहना भरे आदेश से केशर ने नौकरी को ठोकर मार दी।

पर मन में वह सशंकित था। एक यह भी सहारा था, उससे भी वह वंचित हो गया। अब कैसे जीवन यापित हो, यही वह सोचता रहता।

महीनों से पेट काटकर, फटे कपड़े पहन कर जोड़ बटोर कर उसके पास कुल तेरह रुपये पौने चार आने एकत्र हुए थे। उसमें से एक अठन्नी रंगही भी थी। केशर अब केशर न रहा, बल्कि एक साधारण श्रमिक रह गया था। उसकी शिक्षा का कोई मूल्य बाजार में न था। उसके बाल बढ़े थे, पर पैसे बचाने के लिए वह दाढ़ी तक न बनवाता।

अब केशर को कृष्ण के इस पावनस्थली मथुरा में शरण न मिली। बेचारे ने निराश हो इस स्थान को त्यागने का निश्चय कर लिया।

हे हरि हरो जन

की पीर

अनुराधा के दिन बीतने लगे इसलिए नहीं कि वे कट जाते थे अपितु इसलिये कि वह उसे काट देती थी। काटती इसलिये थी कि बाबू जी के कष्ट पर शीतल चंदन का लेप कर सके, मां की श्वांस को आश बंधा सके, देवर के बढ़ते मन को गति के पंख दे सके। मुन्ना भी तो था। अनुराधा को मुँह लटकाये देखते वह भी मन मार टुकुर टुकुर ताकने लगता। बच्चा था तो क्या? आखिर ब्राह्मण कुल का ज्योतिरत्न जो था।

चंदर ने व्यापार शुरू कर दिया था। अनभिज्ञ तो था किन्तु जिज्ञासा और लगन से उसकी पूर्ति कर लेता था। अभाव के लिये राधाचरण वरदान थे। अनुराधा घर पर विश्वास की आरती उतारती, आस्था के दीप जलाती, चेतना मन का स्तवन करती ताकि चंदर का मन आकाश इतना बड़ा हो जाय, उसमें धरती सी सहन शक्ति आ जाय, उसमें सागर सी गंभीरता आ जाय। इससे चंदर को बल मिलता।

यह तो दिन की बात थी। रात उसे सौतिन की भाँति, गृहस्ती नागिन की भाँति फुफकारती, बिच्छू की भाँति डंक मारती। सूर्य सिकता में आँसू के डांड़े से वह जीवन की नौका खेती। समय अपने आप कट जाता। उसकी रात कट जाती। लेकिन कैसे कटती कहाँ कटती किस रूप में कटती यह कोई नहीं जानता था वह जनाना भी नहीं चाहती थी। घर के बांध के टूट जाने की जो संभावना थी।

व्यक्ति ने सदैव प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिये जीवन के सत्य पर आवरण डालना सीखा है। आवरण के अंधकार में जीवन की सृष्टि,

जीव के परुष शक्ति की परिचायिका है। इस परुप के निर्माण में पुलिस की कठोरता और अभिमान की भयंकरता है। लेकिन प्रकृति सदा विजयिनी रही है। वह व्यवधानों को मुकुर बना कर अंतर का रूप सदा प्रकट करती आई है। अनुराधा के लाख छिपाने पर भी उसका गुलाब सा चेहरा बबूल का कांटा बन गया, किसलय सी देह सूखी डाल हो गई, उसके चेहरे की आभा दिनोत्तर उसी प्रकार होती गई जिस प्रकार करइल की जमीन बरसात के बाद। लेकिन देखने वालों की आँख ने उस चेहरे पर स्मिति ही देखा, आँसू की अंजलि तो सूर्य देवता पर वह रात्रि में अर्घ रूप में चढ़ाती थी। देवार्चन की यह एकांत साधना उसके आस्था की अनन्त मूक वाणी थी।

न तो वह वसन्त में खिलती, न तो शरद में अमृत पान करती, न तो ग्रीष्म में सिहरती और न बरसात में सिसकती। अपितु उसका जीवन एकरस हो गया था। रससिद्धि कविश्वर की भाँति, आनंदमग्न योगी की भाँति और निष्ठामय चातक की तरह।

उसका जीवन एकरस तो हो गया था किन्तु घटनाओं से एकान्त नहीं।

आज होली है। भोर के पहले तारे के डूबते ही अल्हड़ गायन से गली गूँज गई, बालकों की मदभरी पिचकारी के रंग से आंगन सराबोर हो गया। वह एकांत कमरे में बैठकर विगत जीवन की उन रंगरेलियों का दृश्य देख रही थी जो होली पर वह मनाया करती थी। चंदर उसका हाथ पकड़ रहा है। वह हाथ झटकार देती है। कहती है, दत्त...उनसे कह दूँगी। ठीक नहीं होगा। चंदर कहता है, जाइए कह दीजिए। मुझे परवाह नहीं है। तबतक शान्ति आ जाती है। हाथ में केसर वासित कुसुम रस गंध से पूर्ण वयजन्ती रंग लिये अनजाने मुँह पर मल देती है। कोमल मुख पर गुलाब की अरुणाई छा जाती है। चंदर बोल उठता है—रो के भैया से कहो। वह भी तुरन्त झपटती है। वह शान्ति और चंदर के हाथ पकड़ कर उन्हीं के हाथ से उन्हीं का मुंह रंगने लगती है। हाथ में मुन्ना आ जाता है। निरीह निष्काम बैठा। लड़के आवाज लगाते हैं। अ र र कबीर अ र र अ र र क'''बी'''र।

सामने चंदर दिखाई पड़ता है। हिसाब लिखता हुआ, ऊपर से बिगड़ता है, 'भागो'। लड़के कहते हैं, 'भौजी से रंग खेले बिना नहीं जायेंगे।' चंदर कहता है, 'भौजी की तबियत ठीक नहीं है। वह रंग न खेलेंगी।' तब तक अनुराधा घूँघट काढ़े बाल्टी के पानी में रंग मिला कर आँगन के छज्जे पर ऊपर से पानी लुढ़का देती है। लड़के रंग से सराबोर हो जाते हैं और नीचे से कोई पिचकारी से रंग फेंकता है और कोई शिष्ट चिकारी करता है।

चंदर नाराज हो जाता है। कहता है, 'तुम लोग अब तो जाओ।' अनुराधा बोलती है, 'बबुआ जी हर साल ये सभी लोग जलपान करके जाते थे। इस साल क्या बिना जलपान किए ही चले जायेंगे। और क्या तुम इस वर्ष मुझसे होली न खेलोगे।' उसकी वाणी कंपित पर गंभीर है और उसके मुख पर बासंती मुस्कान की अम्लान रेखा है।

चंदर सकपका गया। बोला 'हाँ···हाँ हिसाब करके होली खेलता हूँ और इन लोगों को जलपान करा कर तब जाने दूंगा। घबड़ा क्यों रही हो भाभी ?' चंदर ने तो होली नहीं खेली। लेकिन अनुराधा ने उस पर भरे रंग का लोटा डाल दिया। वह आज कुछ बोला नहीं। बोल ही क्या सकता था ? अनुराधा भी मौन खिसक गई।

आज शरद पूर्णिमा है। आज चंद्रमा अमृत की वर्षा करता है। लोग छत पर बैठ कर रतजग्गा मनाते हैं। अनुराधा ने अनेक पूर्णिमा की रात जाग जाग कर छत पर बिताया है। लेकिन आज भी वह छत पर ही बैठी है। चांद देखा। उसके चांद का चेहरा उसमें प्रतिबिम्बित हो गया। रजनी का पीत वदन राही गहन तिमिर में पथ पर बेसुध चला जा रहा है, अज्ञात दिशा की ओर—सुधि की कामना विश्वास के हिंडोले पर झूल भी न पाई कि चरमरा कर घुन लगी धरन की भांति बोझ पड़ने से उसके भावना के कुसुम चरचाकर चूर-चूर हो बिखर गए। चंदर भी तब तक छत पर आ गया था। भाभी को चिंतित देख बोला, 'आज खाना नहीं खाऊँगा।' भाभी ने कहा—खाना खिलाने के लिए ही तो तुम्हारे आसरे बैठी हूँ।

आज दीपावली है। दीपों की माला से गली सजी है। छत पर चढ़ने पर जगमग दीपों के मेला के दर्शन होते हैं। किन्तु चंदर के घर पर आज अंधकार है। आज काम से चंदर जल्दी ही लौट आया है। साथ में बहुत से खिलौने भी ले आया है। आते ही मुन्ने को पुकार कर वह खिलौने देता है। अनुराधा खिलौने हाथ में उठाकर देखने लगी। चंदर कहने लगा, 'भाभी आज दीप नहीं जलेंगे ? ठीक है मत जलाओ, अंधकार ही अच्छा लगता है।'

अनुराधा के हाथ का खिलौना जमीन पर गिरकर चकना चूर हो गया। पर उसकी वाणी ठनक कर बोल उठती है, 'बबुआ जी भूल ही गई। देर हो गई।' थोड़ी देर के बाद घर दीपों से जगमगा उठा। गली मे सबसे अधिक दीप रातभर अनुराधा के छत पर ही जलते रहे।

महल्ले के लोगो ने इसे आश्चर्य-पूर्वक देखा। प्रत्येक दीप में अनुराधा के आँख का स्नेह था, उसके मन की कामना थी। उसने दीपों को प्रणाम कर प्रकाश के देवता से निवेदन भी किया कि प्रत्येक दीप की किरणों में पारस और चुम्बक की शक्ति दे दो ताकि इनके प्रकाश में अज्ञात देश में रमने वाला परदेसी शीघ्र ही घर वापस आ जाय।

ये सब बातें घर वालों को अरुचिकर नहीं थी किन्तु टोला और पड़ोस के लोग अनुराधा को इस रूप में देखकर जल भुन कर कूढ़ जाते थे। तरह तरह की चर्चा उसके संबंध में प्रसारित होने लगी थी। हिंदू घरों में औरतें प्रायः बेकार रहती हैं। जहाँ जुटीं, किसी औरत को टूल बनाया और उसके रोयें रोयें की वार्ता गोत्र प्रगोत्र शाखोच्चार के रूप में करने लगीं। यह चर्चा यहाँ तक बढ़ी—कलमुंही देवर को रखे है। इसी से इसका पति भाग गया। देखो न—उसके चले जाने पर भी शृंगार में कोई कमी न आई। रोज सिंदूर लगाती है, माथा गूंथती है, सजधज कर रहती है और कलमुंहा चंदर भी कितना पापी निकला कि दिन रात मेहनत करता है, पसीना बहाता है और अपनी सारी कमाई उसपर पानी की तरह लुटा देता है। कुछ लोग चन्दर पर व्यंग्य कसते थे जिसे चंदर नहीं समझ पाता था; अरे भाई तुम्हारी तो चांदी ही चांदी है।

करवा चौथ के दिन रात्रि में गली भर की औरतें अनुराधा के घर पूजा करने आती थीं। उसने गली भर की औरतों को कहला भेजा कि नौ बजे पंडित जी कथा कहने आएंगे। लेकिन कोई भी औरत नहीं आई। एकाध ने कहला भेजा कि कह देना कि ऐसे घर हम पूजा करने नहीं जाते। कुछ ने ऐसा ताना कसा जो कहने सुनने और लिखने में भी शर्म आ जाय।

सुहाग की पूजा काल के सर पर पग धर कर भारतीय नारी सदा से करती आयी है। शब्द के नाते, हृदयवेधी बाण ताने भले ही खड़े रहे किंतु अनुराधा ने पूजा की। यद्यपि उस दिन अम्मा जी के साथ अकेली वह कथा सुन रही थी तो भी उसने हर साल से अच्छी तैयारी की थी।

दूसरे दिन वह अत्यन्त अनमनस्क थी। चन्दर को बाहर जाते समय पानी तक देने न आई। चंदर ने समझा भाभी बीमार होंगी या तबीयत भारी होगी। खाना खाने जब चंदर आया तो अनुराधा ने बीमारी का बहाना बना दिया और खाना अम्मा जी को परोसना पड़ा। चंदर अनुराधा के पास पहुँच गया। अनुराधा ने आज आवश्यकता से अधिक घूंघट काढ़ लिया।

"भाभी क्या बात है! तबीयत तो ठीक है न?"

"बिलकुल ठीक है।"

"फिर उदास क्यों हो?"

"ऐसे ही कोई बात नहीं है।"

चंदर वहाँ से चला गया। पर चंदर की एक बात अनुराधा को याद आ गई। कभी उसने थप्पड़ खा कर भी कहा था कि भाभी के लिये मेरे मन में मां से भी अधिक श्रद्धा है। वह सोचने लगी तो क्या अपने पुत्र को इसलिये छोड़ दूं कि लोग अनाप-शनाप बकें और बकने वाले तो कभी मानेंगे ही नहीं। रामराज्य में भी रजक रहें हैं। कृष्ण के दरबार में भी कुटनियाँ रहीं। मैं छोड़ भी देती लेकिन ऐसी अवस्था में कैसे छोड़ूं जब बबुआ जी का अकेले पेट है। वह भी आधा पेट भोजन करते हैं। हमारे लिये दुपहरी में डूगुर डूगुर घूमते हैं। उनका क्या स्वार्थ है? वे

हमारे भाग्य विधाता है। नहीं...नहीं लोगों के कहने की मैं परवाह नहीं करूँगी। कहने और सुनने वालों से ही सोने की लंका जल गयी। हिन्दुस्तान गुलाम हो गया। जलनेवालों को तो और भी जलाना चाहिये।

पुनः वह उसी रूप में थी। वही चंदर! वही अनुराधा!! वही रुख, वही रवैया, वही आचार वही व्यवहार!!

केवल घर परिवार ही उसके सामने नहीं था और भी बहुत सी बातें थीं। उन बातों में शांति उसके लिये सर्वाधिक चिंता का विषय थी। तीसरे चौथे उसके पत्र आते थे। वह तत्काल उनका उत्तर देती थी।

उन पत्रों में से कुछ यहाँ दिए जा रहे हैं।

प्राणप्यारी भाभी,

प्रणाम!

ऐसा लगता है कि तुम्हारा कलेजा बिलकुल पत्थर का है। अपने दुख से तो तुम दुखी रहती हो ऊपर से मेरे दुख में हाथ बटाने के लिये तड़पती रहती हो। भैया का कोई पता चला हो तो लिखना। बताना तो नहीं चाहती थी सब कुछ सह सुन कर भी मौन रह जाना चाहती थी। लेकिन तुमसे आज तक कुछ भी नहीं छिपाया है। अपनी राई रत्ती सब तुम्हें ही तो सुनाती हूं। इसलिए आज भी नहीं छिपाऊँगी। परीक्षा में जिस दिन से वे द्वितीय श्रेणी से पास हो गए हैं उस दिन से अम्माजी घंटे घंटे भर यह कुरेदती रहती हैं कि तुम्हारा खर्चा कैसे चलेगा। जाओ कहीं नौकरी ढूढो। वकील साहब कहते हैं, ऐसे नालायक लड़के के लिये मैं किसी से नौकरी के लिये नहीं कह सकता। इतनी मेहनत के बाद भी और इतने खर्च के बाद भी फर्स्ट-क्लास जो नहीं ला सका वह मेरा लड़का कहाने के काबिल नहीं है। वह कुपुत्र है।

लायब्रेरी में रोज जाते हैं। वान्ट वाली कालम पढ़ते हैं। पता नोट करके लाते हैं। आठ दस चिट्ठी लिखते हैं। पर कहीं भी नौकरी नहीं ठीक हो पा रही है। डाक टिकट के पैसे व्यर्थ बरबाद होते हैं।

किसी तरह भोजन आलसी नौकरों की भाँति कह सुन कर मिल जाता है। उतारा वस्त्र भी मिल ही जाता है। पर आज भाभी रजिस्ट्री से अर्जियाँ भिजवाने के लिए मेरे पास पैसे तक नहीं है।

मेरा सब गहना उतरवा लिया गया है। चंदर भैया ने पच्चीस रुपये का मनीआर्डर भेजा था। वह अम्मा जी ने रख लिया। उनसे मांगने की हिम्मत नहीं है। तुम भी रुपया न भिजवाना क्योंकि वह मुझे कभी नहीं मिलेगा। अगर भिजवाना ही हो तो किसी से एक पुड़िया जहर भिजवा देना। इस जीने से मरना कहीं अच्छा है। मुन्ने को स्नेह। बस......

तुम्हारी ही
शान्ति

प्रिय बबुई,

तुम्हारी चिट्ठी मिली।

पढ़कर दुःख हुआ। इसलिये नहीं कि तुम दुखी हो, तुम्हारे घर का वातावरण बहुत कलुषित है। अपितु इसलिये कि तुम सुहागिन नारी होकर जहर खाने की बात करती हो। जहर वे खाते हैं जो पाप करते हैं; जहर वे खाते हैं जिनका मुख देखना लोग नफरत की आँखों भी नहीं पसन्द करते। जहर वे खाते हैं जिनके माथे पर कलंक का टीका होता है। जहर वे खाते है जिनके आगे पीछे कोई रोने वाला नहीं होता। यदि तुम्हें जहर ही खाना है तो मुझसे बताना ठीक नहीं था। एक ओर तो मैं विधवा की तरह जीवन व्यतीत कर रही हूँ। केवल इसीलिए जीना है कि तुम लोगों को आँख भर देखती रहूँ और दूसरी ओर तुम ऐसी बातें करती हो।

मैं वकील साहब को पत्र लिखती। लेकिन इस लिए पत्र नहीं लिख रही हूँ कि तुम्हारा कष्ट बढ़ जायगा। सुख में तो सभी बिता देते हैं। अच्छे लोगों के बीच में तो सभी जीवन काट देते हैं। सची औरत वह है जो पंक में भी कमला की भाँति मुस्कराती रहे। तुम्हारी ऐसी बातें सुन कर बबुआ जी का मन छोटा नहीं हो जाता होगा। क्या तुम चाहती हो कि उनके ढाढ़स का बांध भी टूट जाय और वे भी बिना तुमसे कहे कहीं

अपने जीवन की लीला समाप्त कर लें। घबड़ाओ नहीं। समस्त व्यवस्था हो जायगी। परीक्षा की घड़ियाँ हैं। धैर्य रखो। अवश्य उत्तीर्ण होगी। तुम्ही तो कहा करती थीं कि भाभी आदमी पर बिपत आती है तो चारों ओर से आती है। खैर अपनी बात भूलने की तुम्हारी पुरानी आदत है।

इधर बबुआ जी के प्रयत्न से काम बहुत बढ़ गया है। बारह तेरह नौकर भी उन्होंने रख लिये हैं। मुन्ने का प्रणाम।

तुम्हारी ही
अनुराधा

प्राणप्यारी भाभी,

प्रणाम!

कितने दिनों तक तुम लुक छिप कर इस तरह मेरी सहायता करती रहोगी। तुम्हारे पास कारूँ का खजाना थोड़े ही गड़ा है जो इस तरह मजदूरनी से पैसे भिजवाती रहती हो। मुझे इससे बड़ा दुख होता है। तन का एक एक तागा तुम गृहस्थी में लगा चुकी हो। अपने इमान को बन्धन में रख कर अब हम लोगों के लिये अपने परलोक को कम से कम गिरवी न रखो।

मैं अभागिन हूँ भाभी। कभी जीवन में चैन नहीं मिलने वाला है। मेरे कारण बाबू जी पर कर्जा हुआ। एक भाई को घर छोड़कर परिव्राजक बनना पड़ा। दूसरा भाई पटिया ढुलवा रहा है। और तुम नर्क का जीवन व्यतीत कर रही हो। माँ अधमरी पड़ी है। हो सके तो एक बार घर बुलवा लो। सबसे आखिरी भेंट अकवार ले लूँ। बस अब और नहीं लिखा जाता।

तुम्हारी ही
शान्ती

प्रिय बबुई,

आशीर्वाद।

तुम्हारी चिट्ठी मिली। पढ़ कर मन में बान लग गया। क्या यही सब सहने सुनने के लिये भगवान मुझे जिला रहा है। ससुराल से नैहर सुहागिन

नारी की लाश ही आनी चाहिए। यदि तुम इसी पर उतारू हो तो वही करो। मुझे तो विधाता ने कष्ट लिखा है, मैं पापिन हूँ। मरने वाली थोड़े ही हूँ। तुमने पिछले पत्र में यह भी लिखा था कि मैं अलग ही जाना चाहती हूँ और शायद तुम्हारा खाना भी अलग बन रहा है।

यह तुम ने अच्छा नहीं किया। तुम्हें तो सैकड़ों जूते खाकर भी उस घर में ही सन्तोष के साथ रहना चाहिये था। साँप जब पाले जा सकते हैं तो घर के लोगों को क्यों नहीं पाला जा सकता है? रही नौकरी की बात मैं नौकरी की सलाह अब नहीं दे सकती। यह मेरी नहीं चंदर की राय है। नौकरी की रोटी गुलामों की रोटी होती है। उसका कोई भरोसा भी नहीं है। मालिक की मरजी जब चाहे तब निकाल दे। लेकिन फिलहाल यहीं तीन महीने के लिये उनकी नौकरी लगाने का प्रयत्न बबुआजी ने किया है, सफल भी हो गये हैं। उन्हें भेज दो। आज ही की गाड़ी में।

तुम्हारी ही
अनुराधा

प्राणप्यारी भाभी,

प्रणाम!

वे तो चले गए यद्यपि अम्मा जी ने समस्त अवरोध न जाने के लिये उपस्थित कर दिए थे। लेकिन क्या यह अच्छा है कि वे ससुराल में रहकर नौकरी करें। यहाँ लोग हँसी उड़ाते हैं। मुझे सुना-सुना कर व्यंग्य कसते हैं। मैं तो ऊब गई हूँ। जो रुपया मनीआर्डर से भेजते हैं सबका सब अम्मा जी हड़प जाती हैं और मुझे केवल मजदूरनी की तरह खाना बनवा कर खाना देने लगी हैं। कहती हैं कि पचीसों हजार पढ़ाई पर लगा दिया है। अब सौ रुपल्ली कमाने लगे हैं तो बहू जी की शान ही नहीं मिलती। हो सके तो इस नर्क कुंड से मुझे भी बुला लो और उनसे कह दो कि रुपया न भेजा करें। काम खतम हो जाने पर एक साथ ही लेकर आएंगे क्योंकि नौकरी खतम होते ही हम लोग फिर अलग कर दिए जायँगे।

तुम्हारी ही
शान्ति

प्रिय बहुई,

आशीर्वाद !

तुम डरो मत। तुम्हारे उनको मैंने अपने घर नहीं टिकाया है। वे कालेज के होस्टल में ही रहते हैं। तुम्हारे माल पर मैं आँख नहीं लगा सकती। फिर ऐसी बातें क्यों लिखती हो? मुझे तुम्हारी इज्जत का ख्याल है। यहाँ टिकाने पर हमारी भी तो बेइज्जती है। तुम्हारे लिये अलग साइत भेज रही हूँ। मैंने अपनी बिमारी का बहाना कर लिया है। नहीं तो तुम्हारे घर वाले विदा नहीं करेंगे। घर से तुम एक समय ऐसा था बेगानों की तरह निकाल दी गई थी। अब कम से कम इतना तो है कि मजदूरनी के रूप में लोगों ने स्वीकार किया है। और यदि मेरी बात मानती रहोगी तो एक दिन घर भर तुम्हारी देवी की तरह पूजा करेगा। तुम गृह लक्ष्मी की भाँति पूजित होगी। सबकी सिर आँखों पर केवल तुम होगी। मजदूरनी इसलिये भेजती हूँ कि तुमको पत्र मिल जाया करे नहीं तो शायद मेरे पत्र भी तुम्हें प्राप्त न हो सकें। यह पत्र बबुआ जी के हाथ भेज रही हूँ ताकि तुम्हें वह साइत रखवा कर लिवा आने की व्यवस्था कर सकें।

तुम्हारी ही
अनुराधा

× × × +

अब शांती नइहर आकर रहने लगी। उसके पति को सामान्यतः अनुराधा नहीं चाहती थी कि वे मेरे घर पर आवें क्योंकि यहाँ इज्जत का प्रश्न था। तीन महीने शांति के पति के कालेज में समाप्त हो गये। किन्तु जिस अध्यापक ने छुट्टी ली थी उसने अपनी छुट्टी दो महीने के लिए और बढ़ा ली। फलतः दो महीने के लिए काम और बढ़ गया। लेकिन इस बीच जोर जबरदस्ती अनुराधा रुपए शांति के ससुराल भेजवाती रही। यद्यपि शांति इससे रुष्ट थी लेकिन भाभी का इतना अधिक स्नेह और भय उसे था कि वह उनसे इस सम्बन्ध में कुछ बोलती न थी।

इसी बीच एक दिन चन्दर प्रफुल्ल मन वहाँ पहुँचा जहाँ अनुराधा और शांती मुन्ने को वर्ण चित्रों से गा गा कर पढ़ा रही थी। वह पढ़ता क्या खिलवाड़ कर रहा था और इनका मनोरंजन भी हो रहा था।

चंदर ने गंभीरता पूर्वक अपनी भाभी को अलग बुलाया। "भाभी शहर में जो नया नगर बन रहा है उसमें मैंने टेंडर भरा था। सड़क का पूरा ट का मुझे इसलिये मिल गया कि इक्जीक्यूटिव इंजीनियर बाबू जी का शिष्य है और मुझे बहुत मानता है। मेरा टेंडर भी सबसे कम का है। पचीस तीस हजार रुपए साल भर में इसमें बच जायंगे। लेकिन परसों ही हमें सिक्योरिटी मनी डिपाजिट करनी है। पन्द्रह हजार रुपए! कहां से लाऊँ!! सोच नहीं पा रहा हूँ। राधाचरण जी से मांगना ठीक नहीं लगता है क्योंकि सबकी गृहस्थी है पता नहीं उनके पास रुपए हैं या नहीं।"

अनुराधा अत्यंत गंभीर हो गई। चंदर के चेहरे पर हवाई उड़ने लगी। बोला अच्छा भाभी जाने दो। नहीं लूँगा ठीका। छोड़ा।

"ऐसा नहीं हो सकता", अनुराधा ने कहा।

"फिर रुपए आयेंगे कहाँ से?"

"तुम कितने की व्यवस्था कर सकते हो।"

"लगभग पाँच हजार।"

"शेष की व्यवस्था परसों हो जायगी। अभी एक टैक्सी मंगाओ।"

"टैक्सी क्या होगी?"

नइहर जाऊँगी।

"राधाचरण जी तो हैं नहीं। और वहां बाबू जी से घर गृहस्थी से कोई मतलब नहीं है। फिर रुपए कैसे मिलेंगे?"

"मैं इस घर की मालकिन हूँ। ये रुपए कहाँ से मिलेंगे, कहाँ से आएँगे, इससे तुमसे क्या मतलब। तुम्हें परसो दस हजार रुपए मिल जायंगे।"

"क्या अकेली जाओगी भाभी?"

यह अकेला शब्द अनुराधा को बाण की तरह लग गया। किन्तु वह अपने को सम्हाल ले गई और बोली "हाँ, कोई डर तो नहीं साथ में मुन्ना है और आते समय वहां से किसी को ले लूँगी।"

"कहीं ऐसा न हो कि वहां से रुपये न मिले।"

"मैंने कह दिया न कि परसों सुबह तक जैसे भी हो दस हजार रुपए मिल जायंगे।"

बाद में तो रुपयों की जरूरत नहीं पड़ेगी।

उस समय मैं सम्हाल लूंगा। सब सामान उधार मिल जायगा।

चन्दर टैक्सी बुलाने चला गया। अनुराधा शांति के पास आई। बोली, "बबुई अब मैं यह नहीं चाहती कि बबुआ जी स्कूल की नौकरी करें। एक सौ बीस रुपये महीने में आज के जमाने में कैसे कटेगा?"

"तो क्या करूँ?"

"यह तो मैं जानती हूँ कि क्या करना है। पर अब वे चन्दर की साझेदारी में ठीके का काम करेंगे।"

"मैं कुछ नहीं जानती हूँ।"

"तो फिर कैसे होगा!"

"अपने देश में हर एक औरत लक्ष्मी होती है। भाभी! तुम्हारे रहते ही यह पूछना होगा कि यह कैसे होगा?"

"मेरी समझ में कुछ नहीं आया।"

"गहने तुम्हारे हैं न।"

"हां भाभी। उन्हें लेती आई हूं। वकील साहब ने दे दिया यद्यपि अम्मा जी नहीं ले आने देना चाहती थीं।"

"उन्हें मैं गिरवी रखना चाहती हूँ। उससे रोजगार होगा। कोई आपत्ति है।"

"मुझे तो आपत्ति नहीं। हाँ उनसे पूछ लूँ। नहीं...नहीं भाभी, गलती हो गई। मुझे किसी से नहीं पूछना है।"—कहते हुए शांति ने गले से ताली निकाल कर अनुराधा को सौंप दिया।

"यदि इसे बिचवा दूँ तो?"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

"यदि वापस न मिले तो?"

"मुझे नहीं चाहिए गहने, भाभी।"

"तुम्हारे पति नाराज होंगे तो?"

"वे इतने अच्छे हैं कि नाराज हो ही नहीं सकते।"

"तुम्हारे सास-ससुर ताना मारें तो?"

"बहुत सह चुकी हूँ भाभी। कोई नयी बात नहीं होगी। लेकिन भाभी तुम परीक्षा क्यों ले रही हो क्या मुझ पर विश्वास नहीं है?"

"तुम पर तो मेरा विश्वास है बबुई इसीलिए तुमसे मांग लिया। नहीं तो कभी भी न मांगती। इन रुपयों से तुम्हारे साझे में बबुआ जी व्यापार करेंगे। गहने तो शरीर के धूल हैं। भाग पलटा खायगा गहने फिर आ जाएंगे। लेकिन आज तो बबुआजी के इज्जत का सवाल उपस्थित हो गया है। भले ही उन्हें टीका न मिले लेकिन मेरे रहते कोई कैसे यह समझ ले कि चंदर के पास पंद्रह हजार नगद रुपए नहीं।"

शांती ने कहा, "तो भाभी गहने बिकवा दो। पांच-सात हजार तो मिल ही जायँगे। क्यों, क्या सोच रही हो?"

"नहीं उन्हें बुला कर तुम समझ लेना। मैं मिर्जापुर जा रही हूँ। रात तक लौट आऊँगी।"

"तो भाभी कई बार बुलाने पर जहाँ तुम नहीं गई वहाँ कर्जा मांगने जाओगी।"

" गली कहीं की। काम से जा रही हूँ न। वहाँ ठहरना थोड़े ही है, काम हो जायगा और आज ही लौट आऊँगी। अधिक से अधिक कल दोपहर तक। चंदर टैक्सी बुलाने गया है, माता जी पूछें तो कह देना विंध्याचल दर्शन करने गयी हैं। उनसे कुछ बताना नहीं।"

टैक्सी आई। मुन्ने को लेकर तत्काल अनुराधा उसपर बैठकर नइहर की ओर चली गई। नौकर साथ ले जाने का चंदर का प्रस्ताव उसने मुस्करा कर टाल दिया। यद्यपि चंदर ने कान में अपनी भाभी से कहा कि भाभी ड्राइवर ही पसंद है।

उसने जोर से कहा दत्त तेरे की। यह तुम्हारे घर की प्रथा होगी।

टैक्सी घर पहुँची। नौकर आश्चर्य में आ गए। बाबू जी माताजी के साथ एक रिस्तेदारी में गए थे। राधाचरण व्यापार के लिये बाहर गए थे। घर पर केवल अनुराधा की भाभी थीं। उसके भैया तो कई दिनों में आनेवाले थे। किन्तु उसके पिता जी आज निश्चय ही लौट आवेंगे ऐसा उसे घर में घुसने के पहले ही ज्ञात हो गया।

घर में जाते ही उसकी भाभी ने उसे साश्चर्य देखा और थोड़ी देर देखती रह गई। फिर पूछा, "अरे...बबुई तुम।"

"हाँ भाभी। मैं! क्या अब पहिचानती भी नहीं?"

"बैठो। जल-जलपान करो। नहाओ धोओ। तुम्हारा चेहरा सूखा क्यों है। तुम्हारे भैया नहीं हैं इसी लिए मुरझाई सी हो।"

"नहाने धोने का समय नहीं है।"

"क्या बात है? आखिर क्यों?"

"कैसे कहूँ, कोई भी तो नहीं है।"

"मैं तो हूँ।"

"बाबू जी कब आयेंगे?"

"तुम कहो न।"

अनुराधा जिसने जीवन में कभी किसी के सामने हाथ नहीं पसारा था लजवन्ती के पत्ते की भांति अपने में सिमट सिकुड़ गई।

उसकी भाभी ने कहा, "बोलो न बबुई। मैं तो हूँ। इस समय तो मैं ही मालकिन हूँ। तुमसे बड़ी भी हूँ। संकोच क्यो? सब कुशल तो है।"

"भाभी जी मुझे इसी टैक्सी से लौट जाना है।"

"क्यों? अभी आयी अभी जाना है। काम तो बताओ। और बिना बाबू जी के आये अब तुम नहीं जा सकती।"

"जाना ही होगा भाभी। बाबू जी आ जायँ तो मेरे बड़े भाग्य। दर्शन हो जायगा। क्या कहूँ" ?......कुछ कहते नहीं बनता।

"पिंगल मत पढ़ो। मुझे पराया न समझो। जैसे पहले बातें करती थी

उस तरह सीधे से बताओ कि क्या बात है ? तुम्हें तुम्हारे भैया की कसम। तुम जरूर किसी कष्ट में हो।"

"भाभी बहुत कष्ट में हूँ। पाँच हजार मुझे कर्ज चाहिए। और वह भी बिना किसी अमानत के। दे सकोगी ! बोलो !!"

"अमानत क्यों नहीं लायी।"

"कुछ है नहीं, इमान है। उस पर अगर विश्वास कर सको तो…।"

"तो तुम अपने को गिरवी रख दो। रुपया जहाँ कहो भिजवा दूं। तुम्हारे भैया जाने के पहले कह रहे थे कि अब मैं नई शादी करूँगा। तुम बुढ़िया हो गई हो। तो तुम्हीं रह जाओ न। मुस्कराते हुए उसकी भाभी ने कहा। अनुराधा कुछ बोल न पाई। अक्सर वह ऐसे अवसरों पर ईंट का जवाब पत्थर से दिया करती थी।"

"रुपए तो मिलेंगे लेकिन भोजन करने, नहाने निपटने के बाद।"

"नहीं भाभी। बड़ी जल्दी है।"

"बबुई तुम रुको। रुपया जहाँ कहो इसी टैक्सी से भिजवा देती हूँ।"

"तो रुक जाती हूँ भाभी। नहा धो लेती हूँ। जल्दी करो, वहाँ मेरा आसरा देखा जा रहा होगा।"

वह नहा धो कर तैयार हो गई। इधर उसकी भाभी अपने कार्य में व्यस्त थी। भाभी को न देखकर वह आश्चर्य चकित हो गई। सबसे ऊपर के कमरे से खन-खन की आवाज उसे सुन पड़ी। बिना रुके वह वहाँ चली गई। देखा भाभी जमीन खन रही हैं। और सामने चारपाई पर एक पारात में कुछ नोट और रुपए रखे हैं।

अनुराधा की आहट पाकर वह मौन हो गई। लेकिन तड़ाक बोल उठी, "बबुई भूल हो गई। तुम्हारे लिये खाना आदि न परोस सकी। इधर चली आई। देखो। दो ढाई हजार रुपए इस पारात में रखे हैं बाकी का प्रबन्ध कर रही हूँ। अम्मा जी ने यहीं पचास मोहरें गाड़ कर रखी हैं उन्हें निकाल रही हूँ।"

"ऐसा क्यों कर रही हो ? माँ बिगड़ेगी न।"

"घर की बहन और लड़की के लिए कोई कभी नहीं बिगड़ता। और मैं चोरी थोड़े ही कर रही हूँ। जमीन में गड़ने से अच्छा है कि यह काम आ जाय। लेकिन काम क्या है अब तो बताओ ?"

अनुराधा ने सब कुछ समझाकर बता दिया। भोजन के पश्चात् मोहर और रुपए लेकर चलने की वेला आई।

अनुराधा तैयार हुई। उसकी भाभी ने उसे रोक दिया। कहा इस तरह नहीं जा सकती हो। बेटी की बिदाई इस घर से ऐसे नहीं होती।

उसकी भाभी ने उसे फिर से स्नान कराया। मांथा गूंथा, अपने सिंदूर दान में से उसे सिंदूर लगाया। रखी हुई नयी बनारसी साड़ी पहनाई। उस पर से कामदार ओढ़नी ओढ़ाई। खोयछें में चावल और गुड़ रखा साथ ही मुहरें, नोट और रुपये।

"यह क्या भाभी ?"

"घर की रिवाज और प्रथा। अभी थोड़ी कसर है। वह भी पूरी हो जाती है।"

"वह क्या भाभी ?"

"जाते समय मालूम हो जायगा।"

अनुराधा अपने साथ एक रसीद लिखकर लेती गई थी। जिसे अपनी टेंट से निकाल कर भाभी को देने लगी। भाभी ने साश्चर्य उसे पढ़ा।

उस रसीद को पकड़ते हुए उसने कहा, "कि लक्ष्मी की पूजा में चढ़ाये गये प्रसाद का हिसाब ब्राह्मण नहीं करते। बनिया करते हैं बबुई जी। मुझे आज तक पूज्य ब्राह्मण की सेवा करने का अवसर नहीं मिला था। पूज्य ब्राह्मण की सेवा का अवसर देना तो दूर रहा तुम मुझे रीति-रिवाज का पालन भी नहीं करने देना चाहती।" इसी बीच कपड़े से भरी एक पेटी तब तक वहाँ नौकर रख गये। सब उसकी भाभी के नये धराऊं कपड़े! कमरे में पांच-सात कुंडे भी रखे गये।

अनुराधा ने पूछा, "यह सब क्या है भाभी ? मैं कपड़े वगैरह नहीं ले जाऊँगी। तंग मत करो।"

"मैं तुमसे बड़ी हूँ ऐसी बातें बड़ों से नहीं की जाती।"

अनुराधा ने अपनी भाभी के चरण पकड़ लिए और सिसकती हुई कहने लगी, "इस घर ने सदा मेरी इज्जत रखी। भगवान इस घर को एक घर से हजार घर करें।" उसका रोआं रोआं प्रफुल्ल था।

उसकी भाभी की आँखों में आंसू आ गये। उसने कहा, "बबुई चरण पकड़ कर नरक में मत भेजो। काश! आज मेरे पास कुछ होता।" कन्धे पर हाथ रख कर अनुराधा को वह टैक्सी तक बाहर ले आई। कई मिनट तक अनुराधा और भाभी भेंट अंकवार के प्रेम बन्धन में बँधी रही। उनके नयन सजल हो चुके थे। करुणा, विषाद और प्रेम के आँसू दोनों की आँखों से झर झर झर रहे थे। भाभी का गला भर आया। अनुराधा टैक्सी पर बैठी। मुन्ने के गले में उसे सोने की सिकड़ी दिखाई दी। किसने दी, कब दी, कहां दी किसी को मालूम नहीं। उसकी भाभी धार गिरा रही थी और ड्राइवर मोटर स्टार्ट कर रहा था। ड्राइवर के बगल में अब एक चपरासी था। सूनी मोटर सामान से लदी हुई पोर्टिको से बाहर निकली।

शाम होते-होते अनुराधा घर लौट आई। विन्ध्याचल वाली बात छिप न सकी। उसने नया बहाना किया और वह बहाना यह था कि भाभी की तबियत खराब हो गई थी कोई घर पर था नहीं। अब वह ठीक हैं।

ज्योंही वस्त्र आदि उतार कर अनुराधा बैठी शांती उसके सम्मुख पांच हजार सात सौ सत्ताइस रुपये कुछ आने लेकर खड़ी हो गई और पूछने लगी कि भाभी ये रुपये कहाँ रखूँ। एकान्त में बैठी अनुराधा ने अपने को सम्हालते हुए कहा--मेरे बक्स की यह ताली है। उसमें से मुहरें निकाल कर बबुआ जी को दे दो। इसे बाजार में बेंच लायें और बाकी रुपये अपने पास रखो परसों जरूरत पड़ेगी।

कासे कहूँ जियरा

की बात

एकान्त में केशर अपनी कोठरी में बैठे बैठे कुछ सोचा करता था। नौकरी वह गँवा चुका था। घर जाने के लिए उसका रास्ता बन्द हो चुका था। वह करे भी तो क्या? अज्ञात स्थान पर कोई कर ही क्या सकता है? सुखद कल्पना वह कर नहीं सकता था, दुख की धारा में और अधिक बहना नहीं चाहता था, गर्दन तक डूबा हुआ निकलने के लिए हाथ-पैर भी नहीं फटकारना चाहता था, क्योंकि वह अन्तिम हद तक थक गया था।

वह प्रयत्न करता था कि कमरे में रखे हुए मिट्टी के अर्धनारीश्वर का ध्यान मान कर शांति की उपलब्धि करे। पर वह मूर्ति भी उसे निष्प्राण लग रही थी। देवता की पूजा के पैसे काटकर उसने माटी की यह मूरत खरीदी थी। कोठरी से बाहर होने पर एक दिन बीता, दो दिन बीते, तीसरे दिन से वह घर से बाहर नहीं निकला। यह देखकर मकान मालिक का लड़का अकेले में उसके पास संध्या के समय आया। उसके कमरे में मिट्टी का दीपक उसके मन की ही भाँति काँपते हुए सुबुक-सुबुक कर जल रहा था।

"क्या आपकी तबियत खराब है?"

"अच्छी ही कब थी!"

"क्या हुआ है?"

"................"

"कुछ सुनूं भी तो।"

"यह ऐसी बीमारी नहीं जिसे बताया जा सके।"

मकान मालिक का लड़का केशर पर बहुत प्रसन्न रहा करता था। इसके मूल में केशर का सहज सिद्ध सुंदर स्वभाव तो था ही एक कारण और भी था, वह यह कि केसर उसे कभी-कभी पढ़ने के लिए अखबार मुफ्त दे दिया करता था साथ ही केसर से उसे कभी मकान के किराये का तकाजा नहीं करना पड़ता था। वह महीना पूरा होने से एक दिन पहले किराया अदा कर दिया करता था। केसर भी एक ऐसा प्राणी था जो इनसे कुछ बात कर लिया करता था। अन्यथा अपने मन की बातों को ही वह देखता, सुनता और समझता रहता था।

"कौन ऐसी बात है जो बताई नहीं जा सकती है? और अरे! तुम्हारी साइकिल क्या हुई? कमरे में तो नहीं है। क्या किये?"

"वह साइकिल कभी भी मेरी नहीं थी। जिसकी थी उसने ले लिया। अपने मालिक के पास वह चली गई। अब कभी मेरे पास नहीं आयेगी। गंभीरता-पूर्वक केशर ने कहा।"

"क्यों? ऐसा क्यों हुआ?"

"इसलिए कि जो लोग नौकर रखते हैं वह यह सोचते हैं कि कुछ रुपये देकर केवल व्यक्ति का जांगर ही नहीं उसका तन, मन, धन और इमान तथा गौरव भी वे खरीद लेना चाहते हैं। यही प्रश्न मेरे सम्मुख उपस्थित हो गया। बिना सफाई का अवसर दिये ही मुझे विलग कर दिया गया। सोचता हूँ कि ऐसे संसार में जहां न्याय, सत्य और धर्म के लिए कोई स्थान नहीं क्या रह गया है। यहां रहने से क्या लाभ।"

"बड़ा बुरा किया उसने। कोई दूसरी नौकरी आप खोजते।"

"बड़े भोले हो मित्र। क्या तुम्हें नहीं मालूम कि आज भगवान का दर्शन पाना सरल है, अपेक्षाकृत नौकरी पाने के। और इस दूर देश में जहां कोई भी अपना नहीं कौन मुझे पूछता है!"

"काम करने वाले कभी भी बेकार नहीं रहते। भले ही उनको कष्ट हो। अंगारों का पथ पार करना हो" उस लड़के ने कहा।

"हो सकता है। पर न जाने क्यों अपना अनुभव कुछ दूसरा ही है।"

थोड़ी देर दोनों मौन रहे। अपने अपने में डूबे। एकाएक लड़के ने कहा, "अच्छा तो कोठरी बंद कीजिये चलिये मेरे साथ।"

"कहीं भी जाने की तबियत नहीं करती।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि जो अनुभव जा जा कर प्राप्त कर चुका उससे और बढ़िया अनुभव अब शेष नहीं रह गया। क्या करूँगा कहीं जाकर।"

"तो क्या बेकार बैठोगे ? आखिर खर्च कैसे चलेगा ?"

"यही तो समस्या है। खर्च की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन जीवन को चलाना है, जीना है, रहना है, क्योंकि अनेकों का विश्वास अभी मेरे पर है। *शायद जीवित रहना हो। टिमटिमाते इस चिराग की* भांति।"

"इस चिराग को अपने लिये न सही परंतु दूसरों के लिये प्रज्वलित रखना है। प्रसन्न मन ऐसा करना ही चाहिये।"

"दुखी मन भी काश ! यह चिराग जलता रहता। और अरमान की आंधी में विश्वास को बुझने न देता। लेकिन काम मिलेगा तो कहां ? आज के युग में सब कुछ सम्भव है पर काम मिलना बिलकुल असम्भव। और यहां मेरा किसी से परिचय भी तो नहीं है। अखबार पढ़ने वालों को जरूर मैं जानता हूँ। किंतु अखबार भी तो वही बेचारे पढ़ते हैं जो गरीब और बेकार रहते हैं।"

"तुम घबड़ाओ नहीं। तुम्हें अंगल कम्पनी में मैं काम दिला दूँगा। इस समय वहां आदमियों की बड़ी जरूरत है। इतनी अधिक जरूरत है कि उन्होंने मुझसे ही कह दिया कि भाई १५ दिन के लिये ही सही सीजन भर मेरा काम सम्हाल दो। बड़ा आभारी रहूँगा। वे पुस्तक व्यवसायी हैं। स्कूल कालेज खुलने वाले हैं। कल सवेरे ६ बजे उनके घर मेरे साथ चलो।"

"मैं कल तैयार रहूँगा। अगर काम मिल गया तो यहाँ रह जाऊंगा अन्यथा यहां का दाना पानी बंद। यहाँ से जाकर ही चैन लूँगा।" यह कहते हुए केसर ने लम्बी सांस ली।

"धीरज रखो। कल ६ बजे तक के लिये।" यह कहकर वह अच्छा लड़का कहीं चला गया।

× × ×

केसर अभी प्रकाशन क्षेत्र में न उतरा था। उसके मालिक असामान्य व्यक्ति थे। वे ऐसे व्यक्ति थे जो विभिन्न संस्थाओं के पदाधिकारी रह चुके थे। और एक बार तो हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति होते-होते बच गये। उस समय उन्होंने स्वयं अपना विवरण प्रकाशित कराया था। राम जाने स्वयं लिख कर या किसी से लिखवा कर।

" मैं हिंदी का पुराना सेवक हूँ। वर्णमाला से लेकर रामायण तक का मैंने प्रकाशन किया है। बच्चों का साहित्य, प्रौढ़ों का साहित्य, जवानों का साहित्य सबका साहित्य मैंने प्रकाशित किया है। साथ ही नगर के लिये रंगीन साहित्य और देहात के लिये नन्दी भौजइया का भी मैंने प्रकाशन किया है। मेरे पास लेखकों के पत्रों का अपार संग्रह है जिसे यदि मैं सम्मेलन को दे दूँ तो सम्मेलन की महान सेवा होगी और वह हिंदी जगत की अविरल सम्पत्ति होगी। अतएव कृपा कर आप मुझे ही सम्मेलन का सभापति चुनें।" सुप्रसिद्ध साहित्यकार स्वर्गीय पं० बलदेव प्रसाद मिश्र से भी अपने नाम से लिखवा कर उस समय एक और भी परिचय पत्र भेजा था। वह इस प्रकार था—

"मैंने हिंदी का प्रचार बहुत किया है। अपनी सात सालियों को सवा साल दिनों में हिंदी की वर्णमाला पूर्ण रूप से पढ़ा दी है। मेरे यहाँ रोज फूल देने जो मालिन आती है, उसे भी मैंने पढ़ाया है, अब वह बड़े रसीले प्रेम-पत्र लिखती है। उसमें जो स्वाभाविकता होती है वह साहित्यिकों के लिखे पत्रों में मैंने नहीं देखी। उसके पत्र इस गुण के कारण हिंदी साहित्य की अमर सम्पत्ति होंगे। इतने ही से मैं विरत नहीं हूँ। आजकल अक्सर देहातों में जाता हूँ और वहाँ खेत-खलिहानों तक में स्त्रियों को घेरकर उन्हें शिक्षा देने का प्रयत्न करता हूं। इस प्रयत्न में कई जगह मैं तिरस्कृत और लांछित तक हो चुका हूँ, पर डटा हूँ। छाती

पर हाथ रखकर कहें आप लोग, आप में से कितने लोगों को अक्षर ज्ञान मैंने कराया है और इतना कष्ट तथा अपमान आदि सहकर।

मैंने स्वास्थ्य की परवाह न करके साहित्य-साधना की है। मैं इसी बीच साढ़े तिरसठ कोड़ी कहानियाँ लिख चुका हूँ। मुझे शोक है कि मैंने उन्हें लिखा, क्योंकि एक भी सम्पादक उन्हें समझ न सका और वे सधन्य-वाद वापस की मुहर लगा कर मेरे पास आयी हैं। मैं आलोचना लिखने में भी सिद्धहस्त हूँ। राधेश्याम रामायण पर मेरा आलोचनात्मक पोथा आपने पढ़ा होगा। मैं ग्रामीणों में शिक्षा प्रचार चाहता हूँ—जड़ पर कुठाराघात। इसीलिए मैंने बहुत-सी नौटंकियाँ लिखी हैं जिनमें साहि-त्यिकता कूट-कूट कर भरी हैं और इनसे विचार उन्नत होंगे ही।

कुछ और भी

मैं प्रकाशक भी हूँ। आपने बचपन में तोता मैना, सचाचार यार, शुक बहत्तरी आदि ग्रंथ-रत्न पढ़े होंगे। आपके पिता पितामहों ने भी पढ़े होंगे। हर पीढ़ी अपने बचपन में उन्हें पढ़ती है। मैं उक्त ग्रंथ-रत्नों तथा ऐसों का प्रकाशक हूँ। ईमान से कहिये, ये पुस्तकें जितनी बिकती हैं, उतनी हिंदी की कौन-सी पुस्तक बिकती है? और बिक्री का अर्थ है हिंदी का प्रचार। वही मैं कर रहा हूँ। अति उदार हूँ। तुलसीकृत रामायण बेचकर लोग लखपती हो गये, पढ़कर लोग पंडित हो गये, पर तुलसी का स्मारक क्या बना? मैंने अपने कई लेखकों के स्मारक उनके गाँवों में बनवा दिये हैं। उनका इतना मान हुआ है कि दूर दूर के धोबी, तेली आदि—वहाँ आकर पूजा करते हैं और उनकी मनोकामना सिद्ध होती है। चढ़ावा लेखकों के घर वालों को मिलता है।

जीवित साहित्यिकों का भी मैंने कम सम्मान नहीं किया है। जिसकी जब इच्छा हुई, मेरे यहाँ ठहरा है। हिंदी के साहित्यिकों में, भुखमरों की कमी नहीं है, यह तो आप जानते होंगे। हिंदी के कई लेखक और कवि अपने साथ ऐसे-ऐसे जीवों को लाया करते हैं, जिन्हें वे न अपने घर रख सकते हैं, न होटलों में। उनकी एकांत-साधना का मंदिर भी मेरी ही अतिथिशाला है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि ऐसे कृतघ्न

साहित्यिक अन्य भाषाओं में नहीं हैं। जाते वक्त सभी यह कहते हैं कि आपकी हिंदी-सेवा और साहित्यिक सेवा हम सुवर्णाक्षरों में लिखेंगे, पर आजतक उन्होंने उसे काले अक्षरों में भी नहीं लिखा, अन्यथा मुझे यह सब स्वयं न लिखना पड़ता। कुछ लेखकों के ऐसे-ऐसे रोगों में मैंने उनकी सेवा की है कि क्या कहूँ! पर इसकी ओर भी उन्होंने ध्यान न दिया। इसके लिये उन्हें किसी दिन पछताना होगा।"

प्रारम्भ में ऐसे मालिक के संरक्षण में केसर को स्कूलों में कन्वेसिंग का काम शुरू करना पड़ा और उसे ऐसे क्षेत्रों में भेज दिया गया जहाँ पर उसकी कभी किसी से कोई जान पहचान न थी। लेकिन केसर से वे पहले बता चुके थे कि यदि तुम सफल हो गये तो तुम्हें स्थायी नौकरी यहाँ मिल जायगी। स्थायी नौकरी को लालच ने उसे ऐसा परिश्रमी बना दिया था जिसका परिणाम यह हुआ कि उस क्षेत्र में नया होने पर भी सबसे कम खर्च में वह सफलतम लोगों में आगे रहा। परिणाम यह हुआ कि सेठजी ने स्वार्थवश उसे अपने यहाँ नौकरी दे दिया।

धीरे-धीरे उसकी सेवाओं ने अपना विश्वास जमा लिया। तीन महीने भी नहीं बीते होंगे कि सबसे महत्व का कार्य सेठ जी ने उसे योग्य व्यक्ति समझ कर उसके जिम्मे सौंप दिया। वह काम था लेखकों की रायल्टी का हिसाब-किताब बनाना तथा प्रेस की फाइलें रखना। अनेक किताबों की कापीराइट सेठ जी ने खरीदी थीं और कुछ लेखकों को वे रायल्टी देते थे। जिनको वह रायल्टी देते थे उनके प्रति उनका व्यवहार उसी प्रकार का हो जाता जैसा व्यवहार मँगनी के प्रति राहगीरों का हुआ करता है।

सेठ जी के दरबार में ऐसे लेखकों को कम से कम पचासों बार चक्कर लगाने पड़ते थे और बहाना बनाना पड़ता था कि बहन की तबीयत खराब है माँ के लिये दवा लानी है, पत्नी को पुत्र होने वाला है, किसी ने कुर्की करा दी है, किसी ने नीलामी भेज दी है। ऐसा करने पर भी सेठ जी हिसाब नहीं करते थे। अंदाज से पहले रुपया दे देते थे और ऐसा हिसाब बनवाते थे कि उस रुपये में दस पाँच उन्हीं पर लेखक का निकले। लेखक

का भरपाई हो जाय। साथ ही उस लेखक से वे विशेष प्रसन्न रहा करते जो सेठ जी की अनाप-सनाप व्यर्थ तारीफ किया करते।

केसर यद्यपि अपने काम से ही काम रखता था पर उससे अनेक बातें नहीं देखी गईं। एक दिन रामचन्द्र शर्मा उनके यहाँ आये उन्होंने कहा कि मेरे बीमा की पालिसी लैप्स कर रही है। मेरे हिसाब में से पचास रुपये मुझे दे दीजिये। या आप बीमा कम्पनी में परसों तक रुपये भिजवा दीजिये। सेठ जी ने उन्हें मीठी-मीठी बातों में फँसाकर सीधे 'हाँ' कर दिया। किंतु रुपया जमा नहीं हुआ। अंततोगत्वा जब पालिसी लैप्स होने की सूचना लेखक शर्मा को मिली तो वे बेचारे दुखी मन सेठ जी के पास आये। सेठजी ने उनके सामने केसर को नालायक ठहरा दिया और कहा कि मैंने तो इनसे कह दिया था। ये भूल गये। उनके सामने ही उन्होंने केसर को फटकार भी दिया। केसर को यह बात बहुत बुरी लगी। पर वह शांत रहा।

एक बार प्रतीत चरण वर्मा पधारे। उन्होंने सेठ जी से पांच सौ रुपये एडवांस लेकर तब अपनी किताब दी थी और ताव के साथ उनसे सौदा किया था। दो साल तक उनकी रायल्टी का हिसाब पहले से ही हीला-हवाली कर के सेठ जी टालते चले आ रहे थे और उनको यह आश्वा-सन दे रखे थे कि जब तुम्हारे बहन की शादी होगी तो सब का सब रुपया एक साथ मिल जायगा। शादी तीन दिन रह गयी और वे निरन्तर आश्वासन देते ही रहे शादी का दिन आ पहुँचा। और यहाँ तक कि प्रतीत चरण वर्मा से वे कह गये कि मैं थोड़ी देर में रुपया किसी तरह से दिला देता हूँ। अपने बाहर चले गये। अब उनको कौन पाता है। सेठजी के पास रुपया था। लेकिन वर्मा ने किताब देते समय सेठजी का जो सम्मान किया था असल में उसका बदला उन्हें लेना था। आने पर सेठ जी ने अपनी सफाई में पुनः केशर को पेश कर दिया। बेइज्जत केसर हुआ। काम सेठ जी का चला। फिर भी केशर खून का घूँट पीकर रह गया। मौन !

इन सब बातों से केशर को बड़ा आघात पहुँचता था। कभी कभी उसको रुपया एकत्र कर घर की दुरव्यवस्था सुधारने की कामना को भी ठेस पहुँचता था। सामान्यतः लेखकों की ऐसी-ऐसी विडम्बना की चोट को देख वह अपने घर के विषय में तरह-तरह की अशुभ कल्पनायें करने लगता था। उससे उसका मन बड़ा भारी हो जाया करता था।

रोज ही कुछ न कुछ ऐसा कारण और कार्य उसके सामने उपस्थित हो जाया करते थे और वह कल्पना करने लगता था कि उसके पिता, उसकी मां, उसका छोटा भाई, उसकी पत्नी, उसका हीरा जैसा बच्चा, किस स्थिति और किस हालत में होंगे। वह कभी सोचता था, सम्भव है भीख मांगते होंगे। कभी सोचता सबने आत्महत्या कर ली होगी। कभी सोचता चन्दर बोझ ढो रहा होगा, रिक्शा खींच रहा होगा। क्योंकि वह अपने जीते जी घर के लोगों को खाने बिना नहीं मरने देगा। चाहे जो भी हो, नाना प्रकार के कल्प विकल्प से आक्रान्त केशर जीवन नदी के किनारे का सूखा वृक्ष हो रहा था।

फिर भी वह सोचता था, शायद सेठ जी मान जायँ। रोज रुपया। आठ आना ही देते हैं। रुकी हुई तनख्वाह शायद एक साथ दे दें किंतु सेट जी के इन दुष्कार्यों को देख वह सिहर उठता था। उसके सिहरन के अनेक और भी कारण हो सकते थे।

एक दिन एक लेखक की निम्नलिखित चिट्ठी आई।

मान्यवर सेठ जी,

जीवन से तो लड़ता रहा हूँ। जीवन भर लड़ता रहा। लेकिन अभी तक जो लड़ाई लड़ी गई है वह शायद विधाता की दृष्टि से छोटी थी। इसलिए अब उसने जिन्दगी के सबसे बड़े हिस्से तपेदिक को मेरे दरवाजे पर रोक दिया।

यह राक्षसी वृत्ति का मायावी जानवर है। वेश बदल कर मेरे सीने में सालों से घुसा रहा। लेकिन कुछ पता ठिकाना न लगा। लेकिन अब इसने चारपाई पर लिटा कर छोड़ा। ईश्वर ने चाहा तो इससे भी बच जाऊँगा। लेकिन इसके लिये आप की मदद की जरूरत है। मेरी सभी

अच्छी किताबें आपके यहाँ से ही छपी हैं। सबकी कापीराइट भी मैंने अपने जीते समय आपके हाथ बेची है। आपने इन किताबों से क्या पैदा किया, कितना पैदा किया यह मैं नहीं जानता। लेकिन इन बुरे दिनों में आपके रुपयों से इस समय मेरा बन सकता है। अंतिम किताब जो इधर आप के यहां से छपी है उसमें ढाई सौ रुपया आपके हिसाब से मेरे निकलते हैं। जिसे पुस्तक छप जाने पर आपने भेजने का आश्वासन दिया था। किंतु बड़े दुख की बात है कि आज तक वह रुपया मुझे नहीं प्राप्त हुआ, जब की पुस्तक के प्रकाशित हुए तीन महीने व्यतीत हो चुके। उसकी कापी भी आपने मुझे अभी तक नहीं भेजा। संकट में मदद कीजिये। जीवन भर एहसानमंद रहूँगा। एक और किताब लेटे ही लेटे लिख डाली है। यदि उसकी सब रकम अग्रिम दे सकें तो भेज दूँ। उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

विनम्र,
रवीन्द्र

यह पत्र पढ़कर सेठ जी ने अपने आप केसर से कहा, "देखो भाई, रवीन्द्रजी जब तक जिन्दा रहे तब तक तो घर दौड़ते ही रहे। मरने के पहले भी कुछ बाकी नहीं उठाना चाहते।"

थोड़ी देर वे चुप रहे। केसर को उनकी अमानवीयता पर क्रोध आ गया। पर वह झल्लाया नहीं। मौन रहा।

सेठ जी बोले, "पत्र का जवाब मैं बोलता हूँ। तुम लिख दो। बुरे दिन में अगर कोई याद करे तो उसकी जरूर सहायता कर देनी चाहिये।"

प्रिय रवीन्द्र जी!

आपकी चिट्ठी पढ़ कर हृदय पर वज्र गिर गया। ऐसी स्थिति में आपने रुपया मांगा, जब कि मेरे हाथ बिलकुल खाली हैं। कहीं से भी इधर काम चला लीजिये। या मुझे ही कहीं से उधार दिला दीजिये। मैं आपका रुपया दे दूँगा। बड़ी तंगी है, नहीं तो ऐसा नहीं कहता।

रही उपन्यास की बात, सो इधर बाजार की ऐसी स्थिति है कि उपन्यासों की खपत बिलकुल रह ही नहीं गई है। आपके उपन्यास जहां साल भर में एक संस्करण बिक जाते थे, वहां उन्हें कोई पूछ तक नहीं रहा है। ऐसी स्थिति में भी मैं आपकी सहायता करना चाहता हूँ। और कहीं से भी प्रयत्न करके जैसे भी होगा करूँगा। यदि आप अपने उपन्यास पहले की अपेक्षा आधे दाम पर बेच दें। कोशिश कर रहा हूँ कि आपको आकर एक दिन देख जाऊँ।

तुम्हारा ही,

व्यवस्थापक

यह लिखते-लिखते केशर की आखों में खून आ गया। आज ही उसने सेट जी के पांच हजार के चेक जमा किये हैं। जिनमें से इन उपन्यासों की बिक्री का एक हजार रुपया तो रहा ही। वह सोचने लगा। कैसी दुनियां है। इसी बीच सेठ जी ने कहा कि पता तो जानते ही हो। लिफाफे में डाल कर तुरंत छोड़ दो। जाओ। ताकि बेचारे को जल्दी से जल्दी पत्र मिल जाय।

केसर अन्यमनस्क होता हुआ पुनः अपने घर की दुखद कल्पना का चित्र अपनी आंखों के सामने देखने लगा। रवीन्द्र जी का मुख उसके सम्मुख आ जाता था। जिसने कभी झुकना नहीं सीखा था। लोगों से मांगना नहीं देना सीखा था। जिसने लाखों रुपये अपने उपन्यासों पर इस मक्खीचूस बनिये को दिया था। वह आज पड़ा कराह रहा है। उसकी बेकसी पर दया दिखाने वाले सज्जन आज उसकी परिस्थिति से लाभ उठा कर और सस्ता सौदा पटा रहे हैं। एक तो वह अपने ही मर रहा है दूसरा उसकी मृत्यु से व्यापार कर रहा है। मृत्यु की यह पूजा कब तक चलती रहेगी। इसपर वह विचार तो नहीं कर रहा था। लेकिन वह सोच रहा था अपने जीने के लिये लोग दूसरे को मारना चाहते हैं। दूसरों के मरने से क्या ये जी जायंगे। यही सब सोचते सोचते वह पोस्ट आफिस तक गया। पत्र डाक डब्बे में डाल कर वह आफिस लौटा।

सेठ जी ने पूछा, "पत्र छोड़ दिया।"

उत्तर मिला, "हाँ।"

"इतने घबड़ाये क्यों हो ?"

"सेठजी क्या कहूँ ? मुँह से बात नहीं निकल रही है। बड़े संकट में हूँ। मेरी सहायता कीजिये।"

"क्या बात है भाई ?"

"पोस्ट आफिस में मेरे शहर का एक बाबू आया था। वह अभी घर से आया है। उसने बताया है कि मेरे पिताजी की तबियत बहुत ज्यादा खराब है। इतनी अधिक खराब है कि शायद ही बच सकें। मुझे छुट्टी चाहिये ताकि उन्हें देख लूँ और रुपये भी।"

"बड़े दुख की बात बताई। क्या हुआ है ?"

"यह तो नहीं मालूम हो सका।"

"कितने दिन में लौटोगे।"

"बाबूजी देखकर और रुपया देकर तुरंत लौट आऊँगा।"

"वहीं ठहर मत जाना, बीमारी तो लगी ही रहती है। दिन भर का काम संभाल लो फिर रात की गाड़ी से चले जाओ। एक हफ्ते में चले आना। अपना हिसाब भी बना लो। जो रुपये निकलेंगे वह मिल जायगा। ठीक।"

इसके पश्चात् वह सेठजी के काम से निवृत होकर अपना हिसाब बनाने लगा। हिसाब बना। उसने अपने हाथ से डबल ड्यूटी वगैरह जोड़कर ढाई सौ रुपये का हिसाब बनाया था। सेठजी ने उसे रुपये देते समय कहा अगर कोई उपन्यास वगैरह पढ़ना हो तो एकाध रास्ते के लिए लेते जाओ।

उसने कहा, "नहीं सेठजी कोई जरूरत नहीं है। अगर आप कहें तो रवीन्द्रबाबू की एकाध पुस्तकें लेता जाऊँ।"

उन्होंने कहा कि हाँ-हाँ खुशी से ले लो।

दूसरी गाड़ी से केशर आगरे पहुँचा। अपना सरोसामान अपने साथ लिये।

आगरा में रवीन्द्र जी का आवास था। वहाँ वह ढूँढते-ढूँढते सीधे रवीन्द्र जी के घर गया। रवीन्द्र जी केशर का परिचय जान बड़े ही प्रसन्न हुये। रवीन्द्र जी को ठीक हालत में देखकर वह परेशान हो गया। रवीन्द्र जी ने केसर से कहा, "क्यों मुझे देख कर घबड़ा गये हो?" वह कुछ मुस्कराया भी।

केशर ने कहा, "कोई बात नहीं। आप तो बीमार हैं।"

"सेठ जी ने रुपये...ये...!"

"......................"

"सेठ जी ने रुपए भेजे हैं क्या?"

"आपकी तबियत कैसी है?"

"मैं जानता हूँ सेठ जी रुपए नहीं भेज सकते। चिट्ठी भेजे होंगे।"

"चिट्ठी तो मैंने डाक से छोड़ दी।"

"वह मिल गई। कोई दूसरी चिट्ठी भी है क्या?"

"यदि आप बीमार हों तो मेरे पास रुपए हैं दे दूँ?"

"यदि बीमार न हूँ तो न दोगे।"

"दूंगा! जरूर दूँगा!"

"नहीं भाई! मेरे पास रुपए हैं मैं बीमार भी नहीं हूँ। तुम्हारे परोपकारी की अंतिम परीक्षा ले रहा था। जो कहते फिरते हैं कि मेरे कारण हजारों की जीविका चलती है। वे केवल कहते ही हैं। अब मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँच गया हूँ कि अब सेठ जी के यहाँ से किसी मूल्य पर कोई पुस्तक नहीं छपवानी है।"

"ऐसा क्यों?"

"इसलिये कि अब मरना नहीं चाहता हूँ। टी० बी० के कीटाणु से तो व्यक्ति बच सकता है पर ऐसे सेठों से नहीं।"

"कुछ अपना भी ख्याल ऐसा ही है। इसलिये मैंने सेठ जी की नौकरी छोड़ दी। आपको चिट्ठी मैंने ही लिखी थी। वही आपसे क्षमा माँगने चला आया। और आप को देखने की बड़ी इच्छा थी। क्योंकि यह सब कुछ मैंने सत्य समझ लिया था।"

रवीन्द्रजी ने कहा, "तुम थोड़ा आराम करो। चाय जलपान की व्यवस्था कर देता हूँ और भोजन भी यहीं करो। मैं थोड़ी देर में आ जाऊँगा। लेखकों की सहकारी समिति संगठित की गयी है। अब हम लोगों की किताबें वहीं से छपेंगी। क्या तुम वहाँ काम कर सकोगे। तुम्हारे जैसे ईमानदार आदमियों की ही हमें आवश्यकता है। क्योंकि मेरा ऐसा ख्याल है कि इस उद्योग के सभी सहायक यदि अपना एक परिवार बना लें तो इन पूँजीपतियों के छक्के हँसते-हँसते छुड़ा सकते हैं। अच्छा तो मैं चला। तुम यहीं रहो जल्दी आऊँगा।"

रवीन्द्र यह कह कर चला गया। उसके स्वागत की व्यवस्था वहाँ पर हुई। उनको आने में देर होने के कारण वहाँ पर रखी किताबें वह पढ़ने चला। उनमें 'बुद्धं शरणं गच्छामि' का यह अंश खुले हुए भाग्य की तरह उसके सम्मुख खुल गया और वह पढ़ने लगा—

"सिद्धार्थ प्रायः मृत्यु और जीवन के गहन विचारों पर सोचने लगे। तपसी को देख उनके हृदय में सन्यास लेने की प्रवृत्ति जाग्रत हो गयी थी। संसार उन्हें निःसार दिखाई पड़ा। वे घृणा की दृष्टि से सभी आकर्षण के साधनों को देख रहे थे। इसी समय एक धात्री ने अंतःपुर से आकर अत्यंत प्रसन्न हो उन्हें यह सुसमाचार सुनाया, "आर्य!" महालक्ष्मी के गर्भ से पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ है। धात्री का प्रणाम स्वीकृत हो।"

"तो यह एक और राहु उत्पन्न हुआ मुझे ग्रसने के लिये"—निःश्वास ले कुमार ने कहा।

महाराज के कानों में यह खबर पहुँची। उनके प्रसन्नता की सीमा न रही। अपने जीवन में वे पुत्र—दर्शन के लिये तरस रहे थे, कहाँ पौत्र की किलकारियाँ भाग्य में बदी हैं। आज वे फूले न समा रहे थे, उनका हृदय बासों उछल रहा था।

प्रसन्न हो उन्होंने कहा—"क्या सिद्धार्थ इस मंगल संदेश से अवगत है?;'

"हाँ महाराज"—महामात्य ने कहा, "उन्होंने कहा है यह राहु पैदा हुआ है।"

प्रसन्नता के आवेग में महाराज कुछ भी नहीं सुन रहे थे। उन्होंने निश्चिन्त होकर कहा—"तो मेरे पौत्र का नाम "राहुल कुमार" होगा।" बाजे बजे। तोरण वंदन से राजमहल सजाया गया। इतना बड़ा उत्साह कपिलवस्तु नगरी में सम्भवतः कभी भी न देखने को मिला था। नृत्य-भोज-भंग, राग-रंग सबका अपूर्व आयोजन किया गया। सब प्रसन्न थे। सिद्धार्थ भी संसार को दिखाने के लिए अपने मुख पर लोगों को देखकर हास्य की रेखा खींच ही लेते, सधे अभिनेता की भाँति।

आज वे नगर भ्रमण के लिये निकले। एक प्रवीण नवयौवन रमणी ने, जो "कृशा-गौतमी" नाम से विख्यात थी, बोधिसत्व की रूपमाधुरी से प्रभावित हो कहा, "आप का स्वरूप धन्य है। आपके इस शांतिदायक आनन का दर्शन कर पिता, माता, पत्नी सभी शांति का अनुभव कर अपने को धन्य समझते होंगे।"

सिद्धार्थ ने विचार किया—"शांति! शांति! चारों ओर शांति!! सभी अथाह माया रूपी सागर में छटपटा रहे हैं, पर लोग शांति का अनुभव करते हैं। उन्हें आत्म-तोष होता है। राग-द्वेष, यौवन आकर्षण ये सभी सांसारिक पाश हैं। जब तक इनसे मैं संपूर्ण संसार को मुक्त न करूँगा, आराम न करूँगा। मैं अवश्य ही निर्वाण की खोज करूँगा। चाहे जैसे भी संभव हो। आज ही मुझे दत्तचित्त हो इस कार्य को प्रारम्भ करना चाहिए। यह रमणी मेरी धर्म-गुरु है। इसकी दीक्षा से मैं निर्वाण पथ पर अग्रसर हूँगा। यह विचार कर सिद्धार्थ ने उस चपल नव-युवती को अपने कंठ का मुक्ताहार भेंट किया।

मंद तथा अधम बुद्धि रमणी ने सोचा,—"सिद्धार्थ मेरे मदमाते यौवन पर आकर्षित हो गये हैं। मैं उन्हें अवश्य ही अपना बनाऊंगी।" उस मंद बुद्धि को ज्ञात न था कि यह सिद्धार्थ उसे आज अपनी मार्ग प्रदर्शिका के रूप में देख रहा है। इसी कारण कहा गया है—"नारी तुच्छ बुद्धि वाली नागिन है!"

यह राहुल के जन्म के आठवें दिन की कहानी है। सिद्धार्थ अपने प्रासाद को लौटे। आज उनके आनन पर एक चिन्तन की गंभीरता दिखलाई पड़ रही थी। राग-रंग प्रारम्भ हुए। मदिरापान कराने वाली नर्तकियाँ मदमत्त हो मयूरी की भांति अपने कटिप्रदेश को कम्पित कर सिद्धार्थ के सम्मुख रास रचने लगीं। आज उन्हें कुछ भी न रुचा। निःसीम गगन के चमकते तारे अंगारों के शोलों की भांति उनके नेत्रों को जला रहे थे। यह सुहावनी रात्रि जिसका शृंगार नील निस्तब्ध गगन में निशाकर जाग कर कर रहा था, उन्हें केवल पानी के नष्ट होने वाले एक बुलबुले के सदृश्य अस्थायी दिखायी पड़ा। विभिन्न वाद्यों के सम्मिलित स्वर उन्हें आज तनिक भी आकर्षित न कर सके। वे कर्ण कटु प्रतीत हो रहे थे। सिद्धार्थ ने आज खाद्य सामग्रियों ओर दृष्टिपात भी न किया। न जाने क्यों, अपूर्व गंभीरता उन्होंने अपने मुख पर धारण कर रखा था। कुमार सिद्धार्थ आज शीघ्र ही अपने शयन कक्ष में प्रविष्ट हुए। कोमल शैय्या पर वे लेटे। वातावरण विकच कुसुमों की गंध से सुरभिमय था। उन्हें निद्रा देवी ने आ घेरा।

शीघ्र ही नींद से वे जग गये। पास की वाटिका चंदा रूपी चमकते कटोरे की धवल दुग्ध चांदनी का पान कर रही थी। सिद्धार्थ उठकर सोचने लगे, "मैं सांसारिक सुखों का आज परित्याग करूंगा। अपनी प्राण नंदिनी गोपा का साथ छोड़ूँगा। शीघ्रता करूं। संपूर्ण संसार आज इस रात्रि में सो रहा है। उसे ज्ञात नहीं, उसका बचपन बीतेगा, यौवन स्वप्निल आकांक्षाओं से पूरित होगा। जरा घेरेगी। अंत में कष्टों को झेलते हुए वह काल का आहार हो जायगा। आत्मा परमात्मा का उसे ज्ञान तक न होगा। अपनी क्षुद्र आकांक्षाओं की तृप्ति में वह मारा मारा फिरेगा। आध्यात्मिक उन्नति कदापि भी संभव नहीं। संसार का आत्म-ज्ञान विनष्ट हो चुका है। मैं आज जागरूक हो गया हूँ। कृशा-गौतमी ने मुझे आज शांति का अमर संदेश दिया है। वह धन्य है। वह मेरी सच्ची गुरू है। उसके आशीर्वाद से मेरी विजय निश्चित है। अर्द्ध-रात्रि बीत चली। शीघ्रता आवश्यक है। अथवा लोग जाग जाएगें।"

वे शयन कक्ष से निकल आमोद गृह में प्रविष्ट हुए। मद्धिम टिम-टिमाते सुवासित सुगन्धित प्रदीप में जलती हुई वर्तिका के प्रकाश में उन्होंने देखा अभी-अभी जिन नर्तकियों ने मुझे प्रसन्न करने के लिए न जाने कौन-कौन सा नट रास रचा था, उनकी लुभावनी मूर्ति, केवल मांस का लोथड़ा मात्र है। कोई रूप नहीं। कोई यौवन नहीं। साज-शृंगार के बल पर ये सबका मन जीत अपने पाँवों की पूजा करवाती हैं। प्रस्वेद से सिंचित इनका आनन········! जीभ से टपकती लार········! राक्षसी की भाँति निकले इनके दाँत······! क्रोधित सर्प की भाँति ये खर्राटे क्यों भर रही हैं? सुपुप्तावस्था में कुछ भी ध्यान किसी को नहीं। नारी की सबसे अमूल्य वस्तु उसकी लज्जा झनकते कंठहारों और मुक्ता माल पर विनिर्भित होती है। धिक्कार है संसार को। उनके अंग के वस्त्र निद्रा निमग्न होने के कारण अनेक लज्जा स्थल से हट गये थे। कुमार का हृदय दिखावट-बनावट की वास्तविकता का अंतर ज्ञात कर घृणा से भर गया। वे क्षण मात्र भी वहाँ नहीं रुक सके। जग सोया था। वे जागते हुए आगे बढ़ कर अपने प्रिय सारथी छंदक के कक्ष में पहुँचे।

छंदक आहट पा, उठ बैठा। इतनी रात गये कुमार को अपने कक्ष में प्रथम बार आया देख वह सोचने लगा, "क्या कारण है, क्यों कुमार आज इतनी रात्रि गये जाग रहे हैं?"

"छंदक! आज अश्वराज कंथक को अभी ले आओ, मुझे गृह त्याग करना है" कुमार ने आज्ञा दी।

छंदक आज्ञा पा तुरत अश्वगृह में चला गया।

सिद्धार्थ की माया न मानी। वे शाक्य सिंहासन की युवराज्ञी यशोधरा के कक्ष की ओर अभिमुख हुए। कक्ष में पहुँचते ही उनपर माया ने आक्रमण किया। उन्होंने देखा गोपा पुष्प सदृश्य कोमल सुगन्धित शय्या पर निद्रा निमग्न पड़ी है। आठ दिन का नन्हा पुत्र राहुल माता के वक्ष से सटा सो रहा है। शयनागार में दीपक प्रदीप्त हो रहा है। उस-पर पतंगे मंडरा रहे हैं। धीमी ज्योति फूट रही है। सिद्धार्थ ने सोचा,

"मैंने भी तो इस रूपवान जीवन संगिनी पर इन्हीं पतंगों की भाँति अपना सब कुछ निछावर करने का निश्चय कर लिया था। ये पतंगे इस प्रकाश में जल कर मिट जाते हैं। मैं भी गोपा के चमकते आनन पर निछावर हो रहा था। उसका और मेरा परिणय संस्कार हुआ। जीवन एक प्रेम के अनन्त रेशमी धागे में बाँध दिया गया। जीवन भर मुझे उसका साथ देना चाहिए। भारतीय नारी के शाश्वत प्रेम का प्रतीक मेरा सुत भी सोया है। क्या इसके प्रति मेरा कोई भी कर्त्तव्य नहीं।

यह नन्हा अबोध पुत्र। इसका रूप मेरे ही सदृश्य तो है। मेरे प्राण का यह जगमगाता नन्हा अंश है। इसका अरूण कमल सा कोमल शरीर, कातर लम्बे विशाल नेत्र, मन को बरबस आकर्षित कर लेते हैं। यह अबोध शिशु है। मेरा प्राण, मेरी आत्मा, पुत्र रत्न की माया! कहीं जाने का जी नहीं करता। तो विराग छोड़ूँ? संसार अपनों के लिये दुखी है। क्या यह मेरा सुत नहीं—सुपुत्र गोपा मेरी प्राणेश्वरी नहीं। अवश्य! अवश्य!! तो वैराग्य बेकार है। नहीं, नहीं...नही...!! यह ढोंग नहीं। सोये हुए जगत के लिए मैं ज्ञान का मार्ग ढूँढ़ने के लिये कटिबद्ध हूँ। डिगना विश्वासघात होगा।"

ऐसा सोच, अपने पुत्र के कपोलों का चुम्बन लेने के लिए कुमार सिद्धार्थ झुके। गोपा ने अपनी बाहों में पुत्र को कस लिया था। कहीं जग न जाय, पुनः अवरोध उत्पन्न होगा। ऐसा विचार कर सिद्धार्थ एकाकी अपने मार्ग पर चलता बना।

कौन जानता था, आज इस विजन नीरव रात्रि में गोपा की मांग का सिंदूर मिट रहा था। उसका प्राणपति, भारतीय नारी की सबसे सबल सम्पत्ति उससे आज छिनी जा रही थी। एकाकी पथ का पथिक सिद्धार्थ भावुक कलाकार की कल्पना से भी कोमल अपने शिशु को गोद में ले दुलार भी न सका। उसके गुलाबी होठों के चुम्बन के लिये वह तरसता ही चला गया। किसे ज्ञात था महाराज शुद्धोधन की सबसे बड़ी आशा और विश्वास की लता आज मुरझा गयी। कोई इससे अवगत न था कि महाप्रजावती जिसे अपने रक्त से भी अधिक महत्व देती थीं, उसी सुत ने

आज समस्त समाज, प्रजा, राजप्रासाद को तिनके के सदृश समझ, निःसार घोषित कर सबको लात से ठुकरा दिया।

पर इतिहास साक्षी है, युगों से चली आ रही बौद्ध साधना आज साक्षात खड़ी हुंकार कर रही है, सिद्धार्थ के जाने से गोपा की माँग का सिंदूर और भी प्रबुद्ध ज्योति में परिणित हो गया। संसार ने उसके उपदेशों से त्राण पाया। महाराज शुद्धोधन ने उसी भाग्यशाली परिव्राजक के पिता कहलाने का गौरव प्राप्त किया। महाप्रजावती श्रेष्ठ माता के रूप में तीनों लोक में याद की जायँगी। साधना का परिणाम युगों तक जन-जीवन में ज्योति बिखेरता रहेगा।

इतना पढ़ने के बाद जेब से पेन्सिल निकाल कर उसने एक पत्र लिखा।

रवीन्द्र जी,

स्वागत और कृपा के लिये धन्यवाद। नौकरी तो मुझे करनी थी और शायद फिर करनी पड़े। लेकिन मैं जा रहा हूँ। बहुत दूर जा रहा हूँ। यह भी नहीं कह सकता कि मेरी प्रतीक्षा करियेगा। क्योंकि किसी की रोजी मारी जायगी और आपका काम पिछड़ जायगा। आपने संघर्ष की जो नयी दिशा स्थापित की है उससे मुझे प्रेरणा मिली है। जीवनाशक कीटाणुओं के बीच जीने का जो आपने तरीका अपनाया है उससे मुझे जीवन के लिये नई चेतना मिली है। सहयोग की नई कामना मन में खिल उठी है। मैं हारा ही सही, उनके बीच रहने की अधिक कामना है जो हारे हैं किन्तु आह···जो मेरी अविकल प्रतीक्षा करते हैं वे। आशा ही नहीं विश्वास है कि एक दिन आऊंगा। और अवश्य आऊंगा। यदि खाली रहा तो काम करूंगा भी।

कृपा बनाए रहियेगा।

सदा आपका ही—
केसर

× × ×

आप भगवान हैं, अवतार हैं, संसार आपकी पूजा करता है। पर मुझे क्यों अशांति दे रहे हैं?

काली रात में एक अबला को और एक अबोध शिशु को अपने भाग्य भरोसे जीवन भर के लिये तड़पने को छोड़ कर अपनी शान्ति के लिए आप घर द्वार छोड़ सकते हैं, क्योंकि आप महान हैं। किन्तु मैंने जागते हुए घर बार छोड़ दिया। आपके महल खजानों से अपरम्पार मणि माणिक भरे पड़े थे। आप सम्राट थे। किन्तु मेरे घर में तो आंखों के कोश में दुख के अपरम्पार मोती भरे हैं और मेरा पुत्र मां की आंचल की छाया के आसरे कहीं मारा मारा इधर उधर फिर रहा होगा। जब की मेरा अबोध भाई तड़प रहा होगा, मेरा पिता झुकी हुई कमर से घर की गिरती दीवाल पर चांड़ लगाये खड़ा होगा और मेरी मां सम्भवतः मणिकर्णिका घाट पर चन्दे के मिले पैसे की लकड़ी से जला दी गई होगी और मैं कर्म यज्ञ करके भी अशांत, आक्रान्त। तुम बड़े आदमी थे। जीवन भर बड़े आदमी रहे किन्तु मैं गरीब ब्राह्मण की जाति भिक्षा पर जाने वाला। यह सब तुम्हारे गुण है और वही सब मेरा अवगुण। मैं सोचता हूँ मुझे इन पापों से बचाओ। एक साथ रह सह कर दुख झेलने की शक्ति दो।

कष्ट से मैं नहीं घबड़ाता लेकिन जिनका कष्ट छुड़ाने चला था उनका कष्ट बराबर बढ़ता ही गया। मैं अयोग्य और निकम्मा हूँ।

सुनो, दिन भर पंछी अलग अलग रहते हैं। किन्तु रात में कंकड़ तिनका जो कुछ भी मिलता है ला कर एक नीड़ में बसेरा करते हैं और मैंने जान बूझ कर उस नीड़ के कण कण को ऐसा बना दिया जिसमें दुख के बरसात की रोज वर्षा होती है। जिनमें जेठ की दुपहरी का सूरज रोज आग बरसाता है। जिसमें दुख के आंसू बाढ़ और ज्वाला नियमित रूप से सुलगाते हैं और परिस्थिति के तूफान न जाने नीड़ के स्नेह के तिनकों को उड़ाकर रोज कहाँ-कहाँ बिखरा देते हैं।

तो क्या मैं भी शांति के लिये बिरागी बनूं। अनुराग को बिना स्नेह की जलती हुई बत्तीकी भाँति जलाकर अपने स्वार्थ के लिए बिभूति लेपित करूँ। नहीं, नहीं, यह नहीं होगा। मैं गृहस्थ हूँ। संन्यासी नहीं। मैंने अभी हार नहीं मानी है। हारूँगा भी नहीं। मैं तो उन्हें देखना चाहता हूँ। जो बिना शक्ति के आज अकेले अलग-अलग निरुपाय इधर-उधर जीवन के

लिए मृत्यु से लड़ रहे होंगे। भगवान शक्ति दे उन्हें एक सूत्र में बाँध सकूँ।

इसी तरह की भाव-भंगिमा उसके मन में आती और चली जाती। वह किसी दुखी को देख लेता तो उससे अपने घर के किसी प्राणी का साम्य मिलाता और उसकी वर्तमान अवस्था की तुलना उससे करता।

वह अर्द्ध पागल तो हो गया था किन्तु स्नेह की चेतना उसके मन में थी। जो उसे रह रह कर रास्ता दिखाती चली जाती थी और उस राह पर वह उसी प्रकार चलता चला जा रहा था जिस प्रकार चुम्बक किसी पिन को खींचे लिए चला जा रहा हो।

थोड़ी देर भी अनुराधा चैन से नहीं बैठ पाई होगी कि आवाज आई, "केसर! केसर!!"

पगली की भाँति अनुराधा लपक कर आगे बढ़ी। घर में कोई आदमी नहीं था। उसने दीवाल की आड़ से छिप कर पूछा, "आप कहाँ से आए हैं?"

"मैं गोरखपुर का हूँ और केसर जहाँ काम करता था वहाँ का मैनेजर हूँ। केसर नहीं है क्या?"

"वे बाहर गए हैं। कई दिन बाद लौटेंगे।"

"पंडित जी हैं।"

"वे तो दर्शन पूजन करने गंगा जी गए हैं। थोड़ी देर में लौटेंगे।"

"तो मैं नीचे बैठ जाता हूँ। उनसे मिल कर ही जाना है। नहीं··· नहीं मैं दो घण्टे बाद ही घूम कर आता हूँ। बहुत जरूरी काम है उनसे मिलना है।"

तबतक शांति भी वहाँ पहुँच गई। उसने कहा कि यदि हमारे लायक कोई काम हो तो कहें जलपान आदि कीजिए।

भर्राए हुए स्वर में मैनेजर ने कहा, "नहीं बेटी। जलपान आदि नहीं करना है। केसर तो अच्छी तरह है न?"

अनुराधा ने शांति की कान में धीरे से कहने के लिए कहा, "हाँ, हाँ कह दो बहुत अच्छी तरह हैं। आप बैठ जाइए न। कुशल मंगल तो है न। बिना जलपान किए मत जाइए।"

"नहीं बेटी। जलपान नहीं करूँगा और यह तो घर है। मैं माँग कर जलपान कर लेता। केसर से कोई दुराव थोड़े ही है। बड़ा अच्छा लड़का है। सुशील, मेहनती और ईमानदार। मैं थोड़ी देर में आऊँगा। जरूर आऊँगा।"

वे तो चले गए। अनुराधा को उनके शब्द लग गए और वह सोचने लगी कि कितने बड़े ईमानदार हैं वे। जाते समय किसी से कहा तक नहीं।

समय बीतता गया। दुख की साधना सुख के फूल खिलाने लगी। उस घर में वसन्त की शोभा तो आई। किन्तु केसर के अभाव में बसन्त श्री की सुषमा न आ पाई। शांति भी अब अलग मकान लेकर अपने पति के साथ यहीं रहने लगी थी और हर महीने बीमा के किश्त के अपने ससुर को रुपए भेज देती थी। उसके पति की नौकरी तो समाप्त हो चुकी थी। किन्तु वह बेकार न था। अब वह ंदर का पार्टनर था। उनकी चार दूकानें चलती थीं। एक पर तो वही पुराना व्यवसाय, दूसरे पर मकान बनाने के सामान, तीसरे पर लोहा लक्कड़ और चौथे पर ठीकेदार साहब का दफ्तर था। खजान्ची अनुराधा थी। एक-एक पैसे को वह अण्डे की तरह सेती थी। अपने मामले में वह मक्खीचूस कंजूस थी। किन्तु चंदर, बाबू जी और माता जी को अधिक से अधिक सुख देना उसके जीवन का सबसे बड़ा उपक्रम था।

"भाभी मैंने बाँध का ठीका ले लिया है। टेंडर के लिए साठ हजार चाहिए। प्रबन्ध हो सकेंगे।"

अनुराधा ने ताली निकालते हुए कहा, "पचहत्तर हजार रुपए रखे हैं। चिंता की कोई बात नहीं है। शांति के घर टेलीफोन करके पूछ लो कि क्या राय है?"

"उन्होंने ही तो इस टेंडर के भरने की बात कही है। मैं सोचता हूँ बाजार के तीस चालीस हजार रुपए बाकी हैं। सबका अदा करके तब रिस्क लेता।"

"तुम गलत सोचते हो। जूआ तो खेलने नहीं जा रहे हो। व्यवसाय करने जा रहे हो। और टीके के रुपए आ जायेंगे उन्हें उनमें से दे दिया जायगा।"

"हां यह तो ठीक है। मैं यह चाहता हूँ कि बाबू जी के लिए जो तुम मंदिर और बगीचा बनवा रही हो वह पहले पूरा हो जाता। और अब तो मुन्ना भी तो स्कूल जायगा। सोच रहा हूँ उसके लिए एक गाड़ी खरीद देता।"

"भैया, दुख के दिन अभी नहीं बीते हैं। विलास नहीं व्यवसाय से दुख दर्द दूर होगा। और मुन्ना को तुम रईस बनाना चाहते हो उसे मजदूर रहने दो। मजदूर बनाओ ताकि विपत्ति के समय भी वह भूखों न मरे। अपने पसीने की कमाई से जी खा सके।

"भाभी एक बात और पूछनी थी। यदि कहो तो हिंदुस्तान के प्रत्येक अखबार में भैया के संबंध में छपवा दूं। वे जहाँ भी हों चले आवें। और उन्हें घर पहुँचाने वाले को एक हजार रुपया पुरस्कार दिया जाय। सब रह कर ही क्या करेगा जब हमारा निर्माता ही हमारे बीच नहीं है।"

"बस यही बचा रह गया क्या? दुनियां समझ जाय कि तुम्हारे भैया भाग गए हैं। भगोड़े हैं। उनके चरित्र पर कलंक का टीका ही लगाना चाहते हो। यदि मेरे सतीत्व में ज्योति है तो वे एक दिन जरूर आएँगे। उनका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता।" कहते-कहते अनुराधा के आँखों में आंसू आ गए। पर उसे वह पलकों के कोर में छिपाये रही। ऐसे अवसरों पर चंदर धीरे से सरक जाया करता था क्योंकि वह भी एकांत में अकेले बैठ नयनों से नीर चुआता था।

चंदर तो चला गया। किन्तु उसी समय कृष्णकान्त और उनकी स्त्री वहाँ आ धमकीं।

"बेटी चंदर की शादी के लिये पचासों आदमी फिर गए और गोरख-पुर वाले मैनेजर साहब अपनी भतीजी के लिए बहुत अधिक जोर दबाव डाल रहे हैं। उनकी पचीसों चिट्ठियां आ चुकीं। चन्दर भी तो अब सयाना हो गया है। उसकी शादी हो जानी चाहिए।"

"हाँ बाबू जी। आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं।"

"लेकिन वह जो कहता है कि बिना भैया के आए शादी नहीं हो सकती।"

"यह क्या बात है ? मैं बबुआ जी से कहूँगी। मुझे सूना घर काटने दौड़ता है। घर में मनसायन हो जायगा। बबुआ जी मेरी बात जरूर मानेंगे।"

"तो शादी कहाँ ठीक की जाय ? बहुत से लोग बहुत रुपया दे रहे हैं। लड़कियाँ भी काफी पढ़ी लिखी हैं। लेकिन गोरखपुर वाले खानदानी हैं। मेरी भी शादी करना चाहते थे किन्तु......।"

"हां...हां, मेरी भी राय है कि गोरखपुर ही शादी हो और उनसे माँगा कुछ भी न जाय। चाहे जो इच्छा हो वे दें।"

"तो बेटी चन्दर को राजी कराओ न। और एक बात तुमसे भी। मुन्ना का इस वर्ष निश्चय ही मुण्डन संस्कार हो जाना चाहिए नहीं तो पाप लगेगा। तुम बराबर इस बात को टाल जाती हो। लेकिन पका आम हूँ न जाने कब डाल से चू पड़ूँ। मन की अभिलाषा अधूरी रह जायगी इसे भी पूरी हो जाने दो बेटी। अनुरोध न टालो तुम्हारा ससुर तुमसे आग्रह की मधूकरी मांग रहा है।"

"बाबू जी ! यदि आप चाहते हैं तो अवश्य करें, चौक पर आप और माता जी बैठिएगा या यदि कुछ दिन और रुक सकें तो बबुआ जी की शादी हो जाने दीजिये। बबुआ जी और मेरी छोटकी देवरानी पियरी पहिर कर चौक पर बैठेंगी।

कृष्णकान्त अपने को वहां नहीं रोक पाये। अनुराधा भी नहीं रुक सकी। मुण्डन की बात गत तीन वर्षों से चली आ रही थी, और अनु-

राधा उसे टालती रही इसलिए कि एक न एक दिन वे जरूर आएंगे। जरूर आएंगे। इसी विश्वास पर वह टिकी थी।

"बबुआ जी आप से तो ऐसी आशा नहीं कि आप बाबू जी की बात टाल जाएंगे और बुढ़ौती में उन्हें दुख देंगे।"

"क्या किया मैंने भाभी?"

"जो तुम्हें नहीं करना चाहिये था।"

"........................"

"सुना......तुमने शादी करने से इनकार कर दिया।"

"हां भाभी। बिना भैया के आये शादी नहीं होगी।"

"क्यों? बाबू जी और माँ के सुख से भैया की उपस्थिति अधिक आवश्यक है।"

"हां भाभी। भैया मेरे प्राण हैं। मेरे निर्माता हैं।"

"पागल तो नहीं हो गये हो। पैसा देखकर बौरा तो नहीं गए हो। ऐसे आदमी पर विश्वास करते हो जिस का पता तक नहीं है। जो उनके कष्टों को भूल गये जिन्होंने मर खप कर उन्हें पाला पोसा और बड़ा किया। इस योग्य बनाया कि तुम बात करने लायक हुए हो।"

"तुम्हीं बताओ भाभी कैसे मैं शादी कर सकता हूँ।"

"जैसे हो करो। या कह दो कि तुम कोई नहीं हो। तुम्हारा इस घर से कोई वास्ता नहीं है। मेरा तुम्हारे पर कोई अधिकार नहीं है।"

"समझने की कोशिश करो भाभी। तुम भूल रही हो।"

"क्या समझूँ? मैं अभागिन जो हूं। ठीक ही है जब तक मैं इस घर में हूं, कैसे कोई शुभ काम हो सकता है।"

"तुम गलत समझ रही हो भाभी। अगर शादी हुई तो संतोष की जगह आंसू की बारात निकलेगी। मेरे मन की नहीं काया की शादी होगी। केवल एक भैया के बिना क्या तुम इस बरसात में उभ चुभ होकर भींगना चाहोगी। भैया के आछत हमारे शादी का ताग-पाट दूसरा कौन डौलेगा?"

"जब से होश सम्हाला है तब से क्या किया है। हां, लेकिन सोचती हूं कि मेरा अकेलापन शायद कट जाय। बबुआ जी, मेरे लिए, केवल मेरे लिये ही तुम शादी की स्वीकृति दे दो।"

भर्राए हुए स्वर में चन्दर ने कहा, "यदि तुम्ही चाहती हो तो जहाँ चाहे, जिससे चाहे, जिस दिन भी हो शादी ठीक कर लो। लेकिन सचमुच तुम्हें सुख नहीं मिलेगा। मुझे भी सुख नहीं मिलेगा। क्योंकि मैं भीतर ही भीतर गीले कोयले की भांति सुलग रहा हूँ।"

"बाबू जी को तो सुख मिलेगा। और मुझे भी जितना सुख मिलेगा उसकी तुम कल्पना नहीं कर सकते। अम्मा जी पुलकित हो जायगीं।"

"लेकिन भाभी एक बात मेरी भी तो मानो। मुन्ने का मुंडन भी हो जाना चाहिए।"

"शादी के बाद।"

"नहीं। तिलक के दिन ही, सवेरे।"

"शादी के बाद करने में कोई बुराई है क्या ?"

"ऐसी तो बात नहीं है। लेकिन मैं चाहता हूँ जैसे तुम मेरी शादी कराना चाहती हो उसी तरह मैं भी अपने मन बहलाने के लिए, बाबू जी को सन्तोष देने के लिए मुन्ने का मुण्डन कराना चाहता हूँ। ताकि मेरे घर पर इतनी भीड़ जमा हो जाय जिसे चीर कर दुख आ ही न सके। मेरी बात मान लो भाभी। तुम्हें मेरी कसम।"

"अच्छा। तुम प्रसन्न रहो, इसी में मैं निहाल हूँ।"—लम्बी साँस लेते हुए अनुराधा ने कहा।

उस समय चंदर और अनुराधा दोनों की आँखों से अविरल अनगिनत मोती लाख न चाहने पर भी गिरते ही रहे सुख के या दुख के राम जानें।

लेके डोलिया कहार

यह पंडित कृष्णकान्त का मकान है। गली भर के प्रत्येक मकान पर बिजली के लट्टू लाल हरी पीली आभा से युक्त सर्वत्र दीवालों पर लटक रहे हैं। रातमें इनके प्रकाश से दिन उगेगा। फाटक बने हैं:—बनारसी साड़ी, बन्दनवार तथा हरी पत्तियों से सजाये गए, फूलों से बसन्त की भाँति लदे हुए। साफ वस्त्र पहन लोग कृष्णकान्त के घर की ओर आ रहे हैं। सड़क पर मोटरों की कतार लगी है। दरवाजे पर, फाटक पर शहनाई बज रही है। सभी यह कहते हैं पंडित जी के बड़े भाग्य हैं। घर का चप्पा चप्पा रिश्तेदारों से भरा है। नए परिचितों से जगह बच नहीं पाई है। फिर भी कोई जाना नहीं चाहता है। नए लोग केशर को नहीं जानते थे। किन्तु पुराने यदि घर के किसी प्राणी से पूछते कि केशर नहीं दिखाई पड़ रहे हैं तो यही कहा जाता कि गाड़ी छूट गयी होगी आते ही होंगे। अनुराधा ऊपर औरतों के समूह में कभी इधर कभी उधर बिजली की फिरहरी की भाँति चमक रही थी। किन्तु उसके वस्त्र सादे थे। उसने सफेद सिल्क की सादी साड़ी पहन रखी थी। वह अंधाधुन खर्च कर रहीं थी पर अपने लिये हंसिनी की भाँति नयन सरोवर के मोती ही बचा रखें थी। लेकिन वह उस दिन यह चाहती थी कि आज बबुआ जी का तिलक है, पुत्र का मुंडन संस्कार है, कोई यह न समझ पाये कि आज वह कितनी दुखी है। चंदर बाहर लोगों के बीच मलीन मन प्रसन्नता का अभिनय कर रहा था। लोगों का स्वागत सत्कार कर रहा था और कृष्णकान्त जी मसनद लगाए बैठे मन ही मन भगवान से स्तुति कर रहे थे कि भगवान केशर को भेज दो ताकि जीवन के अंतिम अरमान तो पूरे हों।

धीरे धीरे चौक पर बैठने की वेला आ पहुँची। पूजन का समय आरंभ हो गया। अनुराधा ने चंदर को बुलाकर कहा, "बाबू जी से कह दो कि अम्मा जी के साथ चौक पर बैठ जांय। मेरी तबीयत ठीक नहीं है। ऊपरी काम धाम भी देखना है।"

"मैं जानता था भाभी तुम यही कहोगी। लेकिन पंडित जी का कहना है कि तुम्हीं पूजा पर बैठोगी। भैया की गाड़ी छूट गई है तो कोई बात नहीं। विधान है। संस्कार माँ और बाप को ही करना होगा।"

"मुझे मजबूर मत करो, बबुआ जी।"

तब तक कृष्णकान्त जी खड़ाऊँ पहने आँख में आँसू भरे वहाँ पहुँच गए। जाते ही उन्होंने कहना आरम्भ किया, "बेटी तुमने जीवन भर इस घर की प्रतिष्ठा रखी है। अब मेरे चलते चलाते ऐसा मत करो कि मेरी आत्मा को कष्ट हो।"

"लेकिन बाबू जी वे तो नहीं हैं। फिर अकेले······।"

"बेटी शास्त्र में उसका विधान है। तुम चलो न। हाँ अच्छे वस्त्र पहन लो। और हाँ, भूल गया, राधाचरण चउक के जो कपड़े ले आये हैं, वही तुमको पहनने होंगे और मुन्ने को भी।"

"क्या इन कपड़ों में संस्कार की प्रतिष्ठा नहीं हो सकेगी, बाबूजी।"

"नहीं बेटी। विधान का बंधन वे तोड़ते हैं जो असमर्थ हुआ करते हैं और तुम तो साक्षात लक्ष्मी हो, कमला हो, देवी हो; बंधनों में बंध कर स्वतंत्र। तब तक कार्यरत शांति भी वहाँ आ गई। बोली, "भाभी! जल्दी चलो घर में। चऊक पर बैठने के लिये देर हो रही है। कपड़े पहनाऊँ।" और पकड़ कर वह एकान्त कोठरी में उसे ले गई।

आँगन में भीड़ लगी है। किनखाब के वस्त्र पहने मुन्ने की अंगुली पकड़े हुए बनारसी साड़ी में सिमटी सिकुड़ी अनुराधा आँगन में आई। लाख ओट करने पर भी झिलमिल साड़ी से झांकता हुआ उसका चेहरा छाया चित्र सा झलक रहा था। मंडप झाड़ फनूस तथा आइनों की चमक से जगमग जगमग जगमगा रहा था। अनुराधा और मुन्ने का प्रतिबिम्ब मुकुर में आकाश में तारों के बीच चमकते चन्द्र सा लक्षित हो रहा था। उसकी अंगूठी के हीरे की नग की आभा कितनों की आँखों में चमक उत्पन्न कर रही थी पर··· । यद्यपि वह जमीन की ओर देख रही थी तो भी सामने रजत कलश पर जलते हुए दीपक को उसने देखा। एक ओर तो वह आसन पर बैठ रही है। दूसरी ओर वह देख रही थी कि उसके मन के आशा का दीप अब बुझ रहा है। अब वे कभी नहीं आएँगे। मेरा सतीत्व झूठा था। मेरा दर्प केवल झूठा तोष मात्र था। लेकिन लोक लाज की मारी बेचारी टस से मस नहीं हुई।

तब तक ज्योतिषी जी ने कहा, "बेटी हाथ बाहर निकालो, गठबंधन के लिए संकल्प लो।" ऊपर से घर में रखे केसर के एक चित्र की खूँटी से नारा बांध, नारे की डोर गांठ जोड़ने के लिए चंदर नीचे लटका रहा था। इसे घूँघट के पट के ओट से अनुराधा ने लखा। यह वही चित्र था, जिसे सबकी आँख बचा नयनों के गंगाजल से वह नित स्नान कराया करती थी। दो तीन मिनट तक पूजा चलती रही। चंदर अपने को वहाँ रोक नहीं पाया। वह बाहर चला गया सड़क की ओर। उसका गला भर आया था, साहस बटोर कर वह सब कुछ सोचता सहता देखता रहा।

इधर लोग आपस में बात कर रहे थे कि देखो गाड़ी लेट हो गई। रंग में भंग हो गया। लेकिन तिलक के समय तक केशर आ ही जायगा। चाहे जैसे भी आये। किसी बहुत जरूरी काम ने उसे रोक रखा होगा।

उसी समय जीवन का एक सर्वहारा गली के नुक्कड़ पर आकर खड़ा हो गया। उसने मोटरों की भीड़ और रास्ते की सजावट देखकर यह कल्पना कर ली कि सम्भवतः मेरे घर का कोई भी प्राणी न मिले और सोच रहा था जो सामान घर वालों के लिये ले आया हूँ उसे चल कर गंगा के किनारे दान कर दूँ और मूड़ मुड़ा कर संन्यासी हो जाऊँ। उसके लिये इस संसार में अब रखा ही क्या था? वह आया भी था विचित्र वेश में। उसने चेहरे पर गमछा लपेट लिया था ताकि लोग उसे पहचान न सकें। चंदर ने उसे देख लिया। देखते ही दौड़कर चरण पकड़ लिया। भरी हुई आँखों से आँसू लाख प्रयत्न करने पर भी न रुक सके केशर के चरण चंदर के आँख के आँसू की बूंदों से छनछना रहे थे। केशर भी अपने को न रोक पाया। पर चन्दर घर की ओर।

पहली गाँठ भी पंडित जी न लगा सके थे कि चंदर ने लपक कर नारा भाभी के आँचल से अलग झटक दिया और चिल्लाने लगा, "भैया आ गए। भैया आ गये..." वह मदमत्त पागल बन गया। अनुराधा भी चौंक से उठ गई। और लपकी हुई ऊपर चली गई। पंडित लोग भौचक्के? केशर को घेरे हुए लोग पूछ रहे थे कि किस गाड़ी से आए। गाड़ी छूट गई क्या, वह किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहा था। कृष्णकान्त

जी को यह मालूम होते ही उनकी झुकी कमर सीधी हो गई। उनकी रगों में नया उत्साह आ गया। वे भी चौतरे से उतरने लगे कि केशर भी आ पहुँचा। उसने बाबू जी के चरण स्पर्श किए। ऊपर से किसी ने दो अंगुली से घूँघट उठा कर देखा कि परदेशी द्वार पर खड़ा है और इधर मकान पर लगा माइक चिल्ला चिल्ला कर मधुर स्वर में गा रहा था।

लेके डोलिया कहार,

आये सजना हमार;

जारी······जारी दुलहनियाँ......जा ऽ...जा ऽ...

कृष्णकांत जी ने आशीर्वाद नहीं दिया। कहा, "जल्दी जाओ। चौक पर बैठो। पूजा की वेला समाप्त हो रही है। इतनी देर कर दी। कुछ समझना चाहिए था।"

"बाबू जी गलती हो गई।" काँपते हुए केशर ने कहा।

लोग कानाफूसी कर रहे थे कि कितना लायक लड़का है। केशर आँगन में बैठा है। अनुराधा भी सीधे न बैठ कर अब कुछ तिरछी उसके बगल में बैठी है। कृष्णकान्त जी अब बाहर नहीं आँगन में पंडितों से कह रहे हैं कि जल्दी करिये, जल्दी पूजा खतम कराइए। चंदर के तिलक का सारा प्रबंध केशर को देखना है। और यह शहनाई धीरे धीरे क्यों बज रही है और जोर से बजाओ। औरतें गा क्यों नहीं रहीं हैं? गाओ और जोर से गाओ। न गाना आता हो तो मैं राग कढ़ाता हूँ। गाओ और ढोलक बजाओ। किन्तु उनकी आँख भर आयी थी। और लोगों ने देखा एक बुढ़िया भी शांति के कंधे के सहारे धीरे-धीरे केशर की ओर चली आ रही है। केशर लपक कर चरण छूता है। केशर के साथ गाँठ बँधे रहने के कारण अनुराधा मंडप में ही धक्के खा जाती है। लोगों ने देखा या नहीं किन्तु उस समय अनुराधा का एक हाथ केशर के पाँव पर था और उसके पैर पर राजहंसिन के नयन के मोती के कण भी चुए टप-टप; एक श्रद्धा का दूसरा विश्वास का! आने पर इस घर में आज पहली बार भरी मजलिस में केशर की आँख लोगों के सामने उठी। इधर कृष्णकान्त जी ब्राह्मणों पर नोट लुटा रहे थे जैसे बीते हुए समय को भूल